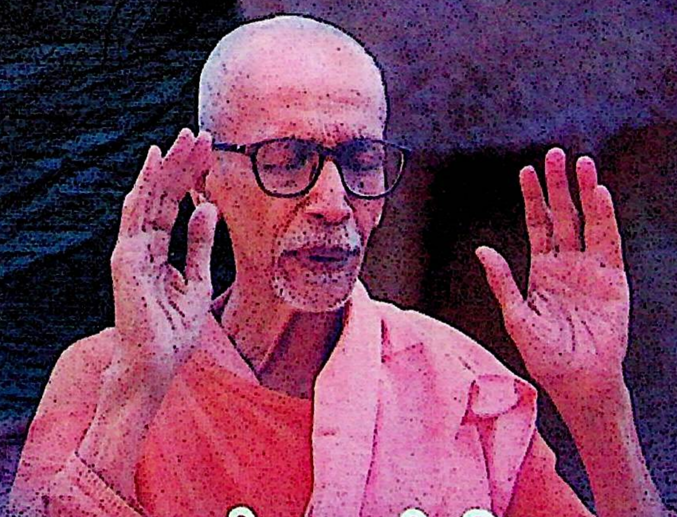
जागिए! अपने दिव्यत्व को पहचानिए!



श्री स्वामी चिदानन्द सरस्वती

ईश्वर हमें आज भी सदा की
भाँति पुकार रहे हैं।
यदि हमारे पास देखने के लिए
आँखें और सुनने के लिए कान हैं
तो हम देख सकते हैं कि,
भगवान् हमें हमारे परम लक्ष्य की
प्राप्ति के लिए जो हमारा जन्म
सिद्ध अधिकार है प्रतिदिन
पुकार रहे हैं!
आध्यात्मिक जीवन
की माँग के लिए
हमें अपना समय ऊर्जा तथा
जीवन, इस महान् लक्ष्य की
प्राप्ति हेतु लगाना चाहिए।
तभी हम बुद्धिमान् हैं।
तब हमें ईश्वर का अनुग्रह
प्राप्त करने से,
कोई नहीं रोक सकेगा।
इसके लिए हमें बुद्धिमानी से जीवन
व्यतीत करना होगा, बुद्धिमानी पूर्वक
कार्य करने होंगे।
तभी हमारा अधिकार हमें प्राप्त होगा।

—स्वामी चिदानन्द

जागिए!
अपने दिव्यत्व को पहचानिए!

जागिए! अपने दिव्यत्व को पहचानिए!

"AWAKE! REALISE YOUR DIVINITY!"

का हिन्दी अनुवाद

श्री स्वामी चिदानन्द सरस्वती



अनुवादिका

श्रीमती आशा गुप्ता, आस्ट्रेलिया

प्रकाशक

दिव्य जीवन संघ

पत्रालय : शिवानन्दनगर—२४९१९२

जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तरांचल (हिमालय), भारत

मूल्य २००५ रु. १००/-

प्रथम हिन्दी संस्करण—२००५ ई.
(५०० प्रतियाँ)

© दि डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

HC 44

श्रीमती आशा गुप्ता (आस्ट्रेलिया) द्वारा दिव्य जीवन संघ के हितार्थ की गयी उत्कृष्ट सेवाओं के उपलक्ष्य में प्रकाशित ।

'दि डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए स्वामी विमलानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर—२४९१९२, जि. टिहरी-गढ़वाल, उत्तरांचल, पिन २४९ १९२' में मुद्रित।

प्रकाशकीय

अद्वैत दिव्य सत्ता की विविध अभिव्यक्तियों की आराधना भारत में वर्ष-भर पवित्र दिनों में होती रहती है। इस ग्रन्थ में दिव्य जीवन संघ के अध्यक्ष परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज द्वारा पवित्र दिनों तथा विशिष्ट अवसरों पर दिये गये विभिन्न प्रवचनों का संकलन है। भारत में, ऋषिकेश में, शिवानन्द आश्रम के यशस्वी प्रवर्तक परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के पवित्र समाधि मन्दिर में प्रात:कालीन ध्यान के समय ये प्रवचन दिये गये थे। श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज द्वारा दिये गये प्रात:कालीन ध्यान-काल के प्रवचन पूर्ण रूप से साधना पर आधारित हैं तथा सभी भक्तों के लिए पथ-प्रदर्शक हैं। अत्यन्त सरलता से समझाये गये ये प्रवचन शाश्वत जीवन की जिज्ञासा करने वाले साधकों के लिए वस्तुत: प्रेरणाप्रद हैं।

'Ponder These Truths' (हिन्दी—'मननीय सत्य') और 'A Call to Liberation' नाम के बहुप्रशंसित अन्य दूसरे दो ग्रन्थों को मुद्रित किया जा चुका है। १९८८ से १९८९ तक की अवधि में दिये गये प्रवचनों को इस पुस्तक में मुद्रित किया जा रहा है। ऊपर वर्णित दोनों ग्रन्थों में दिये गये प्रवचनों की भाँति इसमें भी इसी प्रकार के सभी धर्मों के साधकों के लिए प्रेरक, अत्यन्त लाभकारी, शक्तिशाली सन्देशों का प्रसार किया गया है। जीवन के लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति की ललक को पुनर्जीवित करने के लिए स्वामी जी ने इन विंशिष्ट अवसरों का उपयोग अपने भक्तों के लाभ के लिए किया है।

इसके अतिरिक्त इन अनेकों प्रवचनों से श्रोताओं में सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि विकसित होने की प्रेरणा इन अवसरों से प्राप्त होती है।

—दिव्य जीवन संघ

अनुवादकीय

यह गुरु-भगवान् की कृपा का ही फल है कि इस पुस्तक को मैं हिन्दी में अनूदित कर सकी। मेरी उतनी क्षमता नहीं थी कि मैं इतना बड़ा काम कर पाती।

संयोग ही था कि जनवरी २००१ में गुरु-भगवान् की चरण-रज प्राप्त करने का अवसर केरल में आनन्द आश्रम में मिला। तब मैंने गुरु जी के सामने उनकी किसी पुस्तक का अनुवाद करने की इच्छा प्रकट की थी। दयामय स्वामी जी ने तुरन्त कहा— "Ponder These Truths का अनुवाद तो कोई कर रहा है। आप Awake! Realise Your Divinity! का अनुवाद कर सकती हैं।"

पुस्तक में दिये गये सन्देश बड़े शक्तिशाली हैं। यह पुस्तक हमारे कालजयी साहित्य—रामायण, गीता, कुरान, बाईबिल आदि से कम महत्त्व की नहीं है। इसका कलेवर नित्यपाठ करने के योग्य है। मैं अपने-आपको धन्य मानती हूँ कि मुझे इतनी अच्छी पुस्तक का अनुवाद करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। निश्चित रूप से इसके कारण मेरी आध्यात्मिक उन्नति भी हुई।

परम पूज्य श्री स्वामी युगलप्रियानन्द माता जी की मैं बड़ी आभारी हूँ जिन्होंने हर प्रकार से मेरी सहायता की है। मेरी त्रुटियों को दूर करने में जिन्होंने मेरी असीम सहायता की है उनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

आदरणीय श्री स्वामी देवभक्तानन्द जी की मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने बड़े प्रसन्न भाव से पुस्त को इतनी जल्दी छपवा कर सहायता की है।

शान्ति की मूर्ति परम पूज्य श्री स्वामी विमलानन्द जी महाराज को मैं आभार क्या प्रकट कर सकती हूँ उनके प्रति मैं नमित हूँ। उन्होंने कार्य में गति दिलवा कर पुस्तक के मुद्रण कराने के निर्देश दिये।

३१-७-०५

आशा गुप्ता
आस्ट्रेलिया सिडनी

भूमिका

ओ मानव! सूर्योदय से ले कर सूर्यास्त तक तुम्हारे जीवन का एक दिन समाप्त हो गया । इस प्रकार से तुम्हारी जीवनावधि का कितना ही समय बीतता जा रहा है। इस अल्प काल में ही तुम्हें वह सब करना है जो जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए उठो! जागो! अब देर मत करो। ऊपर उठ कर कुछ करो। आध्यात्मिक पथ पर सक्रिय हो जाओ।

जागो, अपनी आँखें खोलो। ईश्वर की इस रचना में उसे अपने समक्ष देखो। वह सर्वोच्च मानव से ले कर छोटे-से-छोटे कृमि में समान रूप से गतिशील है। इसी रूप में ईश्वर की सेवा और आराधना के लिए जिओ। सभी प्राणियों में बसने वाली दिव्यता की पूजा ही तुम्हारा जीवन हो।

गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज तुम्हें दिव्यता के लिए जागरूक करते रहते थे कि तुम समस्त प्रकाशों के प्रकाश की शाश्वत प्रदीप्त किरण के समान ईश्वर के बालक हो। इसलिए पवित्रता, सत्य, दया, निष्काम सेवा से, ईश्वर के प्रति प्रेम, नित्य ईश्वर की प्राप्ति के लिए ध्यान करके अपने जीवन को दिव्य बनाओ। दिव्य जीवन के इस उत्कृष्ट कार्य में तुम्हें सफलता प्राप्त हो!

अनुक्रमणिका

जागिए!
अपने दिव्यत्व को पहचानिए!

१

अपने हृदय का द्वार खुला रखो

उन सभी ब्रह्मविद्या-प्राप्त गुरुओं तथा महात्माओं को प्रणाम और दण्डवत् करता हूँ जो प्राचीनकाल से एवं सृष्टि के आरम्भ से ही भारत की पावन भूमि को अपने आशीर्वाद और अपनी दैवी उपस्थिति से, अब तक के युग को पवित्र करते आ रहे हैं तथा जहाँ-कहीं उन्होंने अपने चरण रखे, उसे पवित्र किया है!

इसलिए सन्तों, मनीषियों, ऋषियों, प्रदीप्त आत्मज्ञ गुरुओं तथा सिद्ध महापुरुषों का चिन्तन करो। प्रातः-सायं अहर्निश उनका ध्यान करो। उन्हें अपने हृदय में रखो, अपनी दृष्टि में रखो। वे हमारे मुक्ति-पथ के लिए प्रकाश-स्तम्भ हैं। उनके बिना यह संसार एक घोर मरुस्थल होता; काँटों से भरा बीहड़ जंगल, विषैले वृक्ष, विषैले जीव-जन्तुओं से भरा होता। आज बाह्य सतह में जो संसार है, उनके बिना सब वही होता। आज समाज में हिंसा, घृणा, संघर्ष, विरोध, स्वार्थ फैला हुआ है, उससे हट कर, अन्तर्निहित एक आध्यात्मिकता का अमर संसार, एक पवित्रता का प्रकाशित संसार तथा दिव्य साम्राज्य का विस्तार है। वह दिव्य प्रकाशित संसार यहीं पर है।

उसी संसार में रहो। इस बाहरी जगत् में नहीं, जहाँ का कर्णकटु कोलाहल बलपूर्वक तुम्हारी चेतना को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। अस्वीकार कर दो उसे। उस शैतान को पहचानने से इनकार कर दो; क्योंकि उससे हट कर एक महान् सत्य का अस्तित्व है। जो तुम्हें दिख रहा है, वह वास्तविकता नहीं है। जिसे नहीं देख पा रहे हो, वही सत्य है। बाह्य दृश्य-जगत् सत्य नहीं है। सत्य तो अन्तर्निहित है। बाहर उस प्रकाशित सत्य की छाया मात्र है, धुँधली आकृति है। वह सत्य शाश्वत है, अपरिवर्तनशील है। उसी सत्य पर ध्यान केन्द्रित करो तथा

ऋषियों-मुनियों द्वारा मानवता के लिए प्रशस्त आदर्श सेतु को पार करके लक्ष्य को प्राप्त करो।

मानवता का भविष्य इन महान् व्यक्तियों के उत्कृष्ट, श्रेष्ठ, आदर्श जीवन की मानव द्वारा स्मृति पर निर्भर है। जब तक मानव मन में इन उदात्त और देदीप्यमान उदाहरणों का पोषण करेगा, तब तक उनका पथ प्रकाशित रहेगा। उन्हें अन्धकार में रहना नहीं पड़ेगा। यही सत्य है। निश्चित रूप से यही सत्य है। वास्तव में यही सत्य है।

अपनी इच्छानुसार तुम अपने रहने का चुनाव कर सकते हो। यदि तुम प्रकाश का सामना नहीं कर सकते, इसका अर्थ है तुम्हें अन्धकार में रहना रुचिकर है। किन्तु प्रकाश की ओर आँखें खुली रखने पर तुम्हारा मन प्रकाश से भर उठेगा। तब तुम प्रकाश में ही चलोगे, प्रकाश में ही जिओगे। इससे तुम्हें अन्धकार में टटोलना नहीं पड़ेगा, ठोकर नहीं लगेगी, भटकना नहीं पड़ेगा। आदर्शों और लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से समझ कर उनकी ओर धीमी गति से तुम निश्चित रूप से प्रगति करते चले जाओगे।

तुम्हारे समक्ष वर्तमान देदीप्यमान पथ पर तुम दृढ़ता के साथ आगे बढ़ सकते हो जो तुम्हारे अपने ही विश्वास से प्रकाशित, तुम्हारी अपनी ही दृष्टि से प्रकाशित, तुम्हारी अपनी जागृति से प्रकाशित और ज्योतिर्मय पथ है जो ज्ञान कराता है कि अदृश्य के पीछे दृश्य है, अँधेरे के पीछे प्रकाश है, बादलों के पीछे सूर्यालोक है, परदे की पीछे सौन्दर्यों का सौन्दर्य है, नित्य विद्यमान आलोक, आलोक जो तुम्हारे कायिक मन्दिर में विराजित है। इसी शरीर के मन्दिर में प्रकाश निहित है।

अपने ध्यान को उसी पर केन्द्रित करो। दृढ़ता के साथ उसे हृदय में धारण करना है। अपने विचारों को उसी पर केन्द्रित करना है। बिना दर्शन के मनुष्य नष्ट हो जाता है। सूक्ष्म दृष्टि से मानव को कोई हानि नहीं पहुँचती। जो मनुष्य अपने सामने कोई लक्ष्य और दृष्टि रख कर चलता है, उसे कभी कोई हानि नहीं पहुँचती, **'न हि कल्याणकृत कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति'**—ओ मेरे पुत्र ! अच्छे कार्य करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती। **'कौन्तेय प्रतिजानीहि न**

मे भक्तः प्रणश्यति'—'हे अर्जुन! निश्चित रूप से जान लो कि मेरे भक्त की कभी हानि नहीं होती।'

ये उक्तियाँ नि:सार नहीं हैं। ये सत्य की अभिव्यक्तियाँ हैं। ये शाश्वत वचनों (प्रतिज्ञाओं) के घोष हैं। हमें समझना चाहिए कि संसार में चाहे चारों ओर अँधेरा छाया हो, पर हम प्रकाश में ही रहते हैं। परत: और पीछे (beyond and behind) सदा परिवर्तनशील, दृष्टिगोचर असत्य जगत् के पीछे एक अदृश्य, शाश्वत, अपरिवर्तनशील सत्य है। इस तथ्य को समझते हुए हमें उस सत्य में जीना चाहिए जिस कारण से हमें इस धरती पर भेज़ा गया है, उसके लिए इन बाहरी घटनाओं पर विजय पा कर, सारी बाधाओं पर विजय पा कर हमें सर्वोच्च सत्य की प्राप्ति करनी चाहिए। यही सच्चा पथ है।

हमें यहाँ केवल काल-चक्र में घूमने के लिए नहीं भेजा गया है, केवल अँधेरे में भटकने के लिए, या इधर-उधर घूमने के लिए, ठोकर खा कर गिरने, रोने या विलाप करने के लिए नहीं भेजा गया है। प्रत्युत हमें कुछ पाने के लिए भेजा गया है। हमें कुछ उपलब्ध करने, साधना के लिए भेजा गया है। जब तक हम उसे पा नहीं लेते, तब तक जीवन-नैया के चप्पू को विराम नहीं देना है।

मानव-जाति की महिमा इसी में है। इस काल का यही गौरव है। मानव-स्मृति के अन्तर्गत, मानव-जाति के इतिहास में अन्य किसी पीढ़ी, किसी शताब्दी तथा अन्य समयों की अपेक्षा केवल इसी समय में ही सबसे अधिक प्रकाश, बुद्धिमत्ता, ज्ञान, अन्तर्दृष्टि, दिव्य दर्शन का विकास मानव-जाति में हुआ है।

बीसवीं शताब्दी का यह अन्तिम दशक और इक्कीसवीं शताब्दी का पहला दशक मानव-विकास का गौरवशाली समय है। यथार्थत: वैसे ही जैसे मध्याह्न और अर्धरात्रि-काल के १५ मिनट पहले और १५ मिनट बाद के सन्धि-काल के क्षणों को 'आध्यात्मिक क्षण' कह सकते हैं। साथ ही उषा-काल से दो घण्टे पूर्व और आधा घण्टा पश्चात् का मध्यकाल समय बड़ा गौरवशाली होता है। उसी प्रकार बीसवीं और इक्कीसवीं शताब्दी के दशक के दोनों ओर के सन्धि-काल का समय सर्वोच्च गौरवशाली और मांगलिक है। आध्यात्मिक विकास की असीम सम्भावनाओं के साथ यह प्रभावशाली है।

यह पीढ़ी तथा आप सब सर्वोच्च रूप से धन्य हैं। आप, जो इस काल में रह रहे हैं, इतने कृत-कृत्य हैं जिसकी आपने कभी कल्पना भी नहीं की होगी।

महान् सम्भावनाओं और आनन्दपूर्ण ज्वलन्त और पुनर्जागृत आध्यात्मिकता की सभी सकारात्मक शक्तियाँ शाश्वत काल से ब्रह्मज्ञानी गुरु जनों की महान् शक्ति और असीम आध्यात्मिक सहायता से इस काल में अवतरित हो रही हैं। वे नित्य हैं। काल से परे हैं। सदा विद्यमान हैं। **'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'**—जो ब्रह्म को जानता है, वह निश्चित रूप से ब्रह्म ही हो जाता है। उन्हें नित्यसिद्ध कहते हैं। वे सदा रहते हैं। दत्तात्रेय, दक्षिणामूर्ति, व्यास और वसिष्ठ सबका ब्रह्माकार हो गया है। वे सदा वर्तमान आध्यात्मिक केन्द्र, आध्यात्मिक शक्तियाँ, नित्य-वर्तमान प्रकाश-केन्द्र हैं, वे केवल हमारी पुकार की प्रतीक्षा कहते हैं कि कब हमारा ध्यान उनकी ओर जाता है। वे कृपा, आध्यात्मिक शक्ति, ऊर्जा और सत्त्व के केन्द्र हैं।

इसलिए इस महान् सत्य को पहचानने के लिए और उस काल का सबसे अच्छा लाभ उठाने के लिए, इसके यों ही बेकार चले जाने पर विलाप करने की अपेक्षा हमें बुद्धि से काम लेना चाहिए। 'न्यू टेस्टामेन्ट' में मरिया पर मूर्ख तथा अविवेकी होने के दृष्टान्त को स्मरण करो। स्मरण करो कि यह वह समय है, जब ईश्वर स्वयं मानव-मन के द्वार को खटखटा रहे हैं। यह वह समय है, जब ईश्वर स्वयं पुकार रहे हैं : **'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'**—उठो, जागो, विवेकी बन कर प्रकाशित हो जाओ।

वे तुम्हें अरविन्द, रमण महर्षि, रामदास, साईं बाबा, शिवानन्द के माध्यम से पुकार सकते हैं। वे रामकृष्ण, विवेकानन्द, रामतीर्थ, नित्यानन्द और मुक्तानन्द के माध्यम से तुम्हें पुकार सकते हैं। वे वेंकटेशानन्द, कृष्णानन्द, चिदानन्द के भी माध्यम से पुकार सकते हैं। वे तुम्हें किसी भी माध्यम से पुकार सकते हैं। वे तुम्हारी अन्तर्दृष्टि, तुम्हारे दैनिक जीवन में घटने वाली तुच्छ घटनाओं तथा स्वप्न के माध्यम से तुम्हें पुकार सकते हैं। उनके पास पुकारने के लिए युक्तियों का कोई अभाव नहीं है। वे भोले-भाले बच्चे के मुख से भी पुकार सकते हैं। उनके पुकारने का कोई अन्त नहीं है। वे कहीं से भी पुकारें, इसका कोई अन्त नहीं, कोई बाधा नहीं।

हमें ग्रहणशीलता की ऐसी दृष्टि विकसित करनी चाहिए जिससे हम उनकी उस पुकार पर सावधानी से ध्यान दे कर उन्हें उनकी आँखों से देखने दें तथा उनके कानों से उन्हें सुनने दें। हमें जागृति लानी है। जिस प्रकार अन्य महान् व्यक्तियों ने इस पुकार के प्रति प्रतिक्रिया की है, उसी प्रकार हमें भी उस निष्कलंक, विवेकी की पुकार को सावधानी से ग्रहण करना है। यदि तुम उसकी पुकार पर ध्यान दो तो उसकी आँखें हैं, उसे देखने दो; उसके कान हैं, उसे सुनने दो। हमें अपनी दृष्टि और ग्रहणशीलता का विकास करना है।

जिस सर्वोच्च गौरवशाली युग में तुम रह रहे हो, उसकी पहचान कराने के लिए तुम्हारे सामने उसके अनेकों संकेत दिये गये हैं। इन सारे सत्यों को पहचान कर हमें उनका चिन्तन करना है। उन्हें तुम्हारे सामने गम्भीरता से रखा गया है। तुम्हारे पास ऐसा कोई अवसर यह कहने को नहीं होना चाहिए कि तुम कह सको—आशीर्वाद का प्रवाह तुम्हारी ओर हुआ, तुम्हारे ऊपर आशीर्वाद की वर्षा हुई और तुम प्राप्त न कर सके। श्री आनन्दमयी माँ कहा करती थीं—"वर्षा होने पर यदि बर्तन उल्टा रखा होगा, तो उसमें पानी की एक बूँद भी नहीं आ सकती। तुम्हारी समझदारी पर निर्भर करता है कि तुम अपना घड़ा किस प्रकार से रखते हो। तुम्हें सदा उसे ऊपर की ओर से खुला रखना है।"

इसलिए सदा अपने हृदय के द्वार को खुला रखो। उसे खटखटाने की जरूरत न पड़े। किसी और को खुलवाने के लिए कहने से पहले उसे खुला रखो। तीन प्रकार से कृतार्थ हो जाओगे। वैसे भी—माँगो, मिलेगा; खटखटाओ, तुम्हारे लिए (द्वार) खुलेगा; इच्छा करो, पूर्ण होगी। यदि तुम पहले से ही अपने हृदय-द्वार को खुला रख कर उन्हें खोजते रहे हो, तब तुम निश्चित रूप से इन तीनों प्रकार के लाभ का सौभाग्य प्राप्त कर सकोगे। निश्चित रूप से तुम महान् विवेकी हो जाओगे।

गुरुदेव शिवानन्द जी बीसवीं शताब्दी के विश्वजनीन, मानवता के द्वारा आध्यात्मिक ऊँचाइयों को छूने के लिए उद्‌बोधक थे। तुम विवेकी बन कर उनके आध्यात्मिक आशीर्वाद-प्राप्त बालक हो जाओगे। अपने-आपको धन्य मानो। अपने जीवन को पूर्ण महिमामय बना कर उसे परमानन्द से भर दो।

२

निष्ठा और सत्यवादिता से कुछ भी असम्भव नहीं

आगामी नूतन वर्ष तुम्हारे लिए ३६५ पाद का आरोहण (सोपान) बन कर आये जो तुम्हें उत्तरोत्तर प्रगतिपथ पर ले जाने वाला हो। ईश्वर करे, तुम इन ऊँचाइयों को पार करके दिव्य चेतना में, ईश्वरीय चेतना में, दिव्य जागृति में प्रवेश करो जो परम निःस्वार्थ सेवा और त्याग के द्वारा विकास, संस्कृति, आध्यात्मिकता और संयत जीवन की ऊँचाइयों को छूने वाला हो। तुम्हारे लिए प्रत्येक दिन उत्तरोत्तर आगे बढ़ने का एक स्वर्ण अवसर हो तथा इस वर्ष के आने वाले दिसम्बर के अन्त तक, ३१ दिसम्बर तक तुम्हारा जो स्तर है, उससे कहीं अधिक ऊँचे हो जाओ।

महान् दैवी सौभाग्य की ओर आगे बढ़ते जाने की भावना से, नव-वर्ष में दृढ़ता के साथ, स्थिर गति से, तुम आगे बढ़ते चले जाओ। जैसा बनना चाहोगे, वैसा होगा। सर्वोत्तम शक्ति का निवास तुम्हारे अन्तर में है। दृढ़ संकल्पवान्, सच्चे साधक और आकांक्षी (जिज्ञासु) के लिए कुछ भी पाना कठिन नहीं है। जो दृढ़प्रतिज्ञ, अध्यवसायी, धैर्यवान् तथा सबसे ऊपर सत्यवादी है, उसके लिए जीवन में सब-कुछ सम्भव हो जाता है। अपने अन्दर अविचलित, धीमा गति से, स्थिर, थोड़ा पर निरन्तर, सन्तुलित और सचेत प्रयास तथा विश्वास से तुम ऊपर-ही-ऊपर उठते चले जाओगे। दृढ़ता के साथ स्थिर गति से धैर्यपूर्वक प्रयास करो, तुम पूर्णता की सबसे ऊँची चोटी पर पहुँच जाओगे। यही मूल सिद्धान्त है।

स्वयं पर विश्वास रखो। निष्ठा के बल पर ही जान सकते हो कि श्रद्धा और सात्त्विकता के लिए, सच्ची इच्छा और जिज्ञासा के लिए, प्राप्ति और उपलब्धि के लिए कुछ भी असम्भव नहीं। तुम्हारा जीवन उसे पाने के लिए ही है। यही तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है, जिसे तुम अपना कह सकते हो।

३

ईश्वर-साक्षात्कार हेतु केवल एकाग्रता की आकांक्षा

सन्तों-महात्माओं ने अपने आत्मानुशासन, पवित्रता, गहरी आकांक्षा, अध्यवसाय, दृढ़निश्चय से जिसका अनुभव किया है, उस उपनिषद् के ब्रह्म, श्रद्धास्पद महान् सत्य के प्रति हमारी श्रद्धांजलि! उस महान् सत्य को पाने के अधिकारी वे ही हैं, जो उस सत्य को अन्य सारे मूल्यों से अधिक मान्यता देते हैं, जो उसे सर्वोच्च महत्त्व का मान कर उसे जीवन में सर्वोच्च स्थान पर रखते हैं, उसे अपने जीवन का केन्द्र-बिन्दु बनाते हैं।

यदि मूल्यांकन के आधार पर कोई, उस महान् सत्य को, दूसरे नम्बर पर रखता है, तो उसे बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यदि अनेकों मूल्यों में से वह पहले नम्बर पर नहीं होगा , यदि किसी के जीवन के सारे कार्यक्रमों में यह केन्द्र-बिन्दु पर नहीं रहता, तो उसे बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। अन्य अल्प लक्ष्यों से हट कर यदि किसी के जीवन का लक्ष्य उस महान् सत्य को प्राप्त करना है, तो अवश्य ही उसे सच्चा साधक माना जायेगा। एकाग्रता, अनन्यता, अव्यभिचारिणी शब्दों का प्रयोग जिज्ञासा और भक्ति के सम्बन्ध में होता है।

गुरुदेव ने साधना-काल में एक आदर्श साधक के रूप में उच्चकोटि का अन्वेषक बन कर उन सभी प्रमाण-चिह्नों क़ो हर सम्भव ढंग से अपने ऊपर चरितार्थ कर लिया था। ईश्वर-प्राप्ति के आदर्श पर पूर्ण रूप से समर्पित हो कर साधना के लिए एकाग्र भाव की भक्ति के महान् संघर्ष के लिए समग्र चिन्तन एक ओर रख कर, उसमें पूरी तरह से लीन हो कर, उसे ही अपना लक्ष्य मान कर, अपने पूर्ण मन से, हृदय से अपना मन-मस्तिष्क लगा कर इसके प्राप्त्यर्थ संघर्ष किया। दिन-रात वे इसी महान् प्राप्ति में लगे रहे। इसीलिए वे उसे प्राप्त कर पाये। सारे महान् व्यक्तियों ने अपने आभ्यन्तर आध्यात्मिक जीवन और संघर्ष में इसी पूर्ण समर्पण को प्रकट किया।

हमें उनसे ऐसा सीख कर, प्राप्त करके उसमें लीन हो जाना है। हमें गम्भीरता के साथ, मन लगा कर, सच्चाई के साथ, धीरे-धीरे ऐसी अवस्था आने तक कोशिश करनी चाहिए जहाँ ईश्वर के विचार से हट कर और कुछ न हो, ऐसी स्थिति उत्पन्न करना जिसमें ईश्वर के विचार के अतिरिक्त और कुछ न हो, जहाँ वे ही जीवन की सर्वप्रमुख वस्तु हो जायें। सभी महान् व्यक्तियों के जीवन में निश्चित रूप से यही एक सामान्य तथ्य रहा है।

माँगने योग्य वस्तु केवल यही है। हम ईश्वर की आराधना करते हैं। उसे प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं जिससे वह हमारा जीवन सुखद, समृद्ध, सफल, उल्लसित और दीर्घ बनाये। बहुत कम, कोई-कोई ही उनसे भक्ति का वरदान माँगते हैं, केवल भक्ति और कुछ नहीं। उनके प्रति एकाग्र भाव से भक्ति और केवल भक्ति की आकांक्षा और कुछ नहीं। हर कोई सृष्टिकर्ता द्वारा निर्मित वस्तुएँ तो पाना चाहता है, पर सृष्टिकर्ता को पाना नहीं चाहता। विरल ही उसको पाना चाहते हैं, केवल उसको, सृष्टिकर्ता को ही।

"ओ स्वामी! मैं तुम्हारी बनायी वस्तुएँ नहीं, केवल मात्र तुम्हें पाना चाहता हूँ।" जो इस प्रकार सारी वस्तुओं के प्रति विमुख होते हैं तथा अपने जीवन में उन्हें कोई महत्त्व नहीं देते, अपना मन जगत् के कारण और आधार, प्रभु के चरणों में लगाते हैं, वे उन्हें प्राप्त कर लेते हैं : "**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते**"—जो मेरी शरण में आते हैं, वे ही इस भ्रान्ति को पार कर सकते हैं।

यह संसार पदार्थों से भरा पड़ा है। तुम्हें उस परम सत्ता से वही माँगना चाहिए जो उन पदार्थों से परे है, वह स्वयं ही पदार्थ भी हैं। यदि तुम निम्न स्तर की वस्तु की माँग करोगे, तो तुम्हें वैसी ही वस्तु प्राप्त होगी। तुम्हारी कामनानुसार ही वे शीघ्र ही तुम्हें उसे उपलब्ध कराते हैं। वे कल्प-वृक्ष हैं। इसलिए हमें बड़ी सावधानी से ईश्वर से कुछ माँगना चाहिए।

"हे स्वामी! मेरे मन से सारी इच्छाओं का हरण कर दीजिए। मेरे मन में आपके अतिरिक्त और कुछ पाने की लालसा शेष न रहे।" इसी प्रकार की माँग सर्वोच्च सत्ता से करनी चाहिए। तुलसीदास जी कहते हैं—"मेरे मन में अन्य

कोई इच्छा नहीं है; बस, ओ स्वामी! आप ही की चाह है मुझे।'' सारे महान् गुरुओं ने अपने जीवन के उदाहरणों से हमें इसी प्रकार की शिक्षा दी है। इसलिए गुरु तथा ईश्वर के चरणों में बस एक ही प्रार्थना करनी चाहिए—पूर्ण सत्य को पाने की आकांक्षा, केवल यही एक लालसा। ''अमरत्व की प्राप्ति केवल तभी हो सकती है, जब अन्य सारी वस्तुओं को छोड़ कर केवल महान् सत्य को पाने की लालसा हो।''

इसलिए नव-वर्ष में हमें ईश्वर से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि वे हमें ऐसा आशीर्वाद दें जिससे हमारी आन्तरिक स्थिति में सुधार हो कर सारी कामनाओं—चाहे अस्थायी हों या स्थायी, उनसे हमें मुक्ति मिल जाये। हमारे मन से सांसारिक वस्तुओं का लोप हो जाये। हमें उनसे ऐसे आशीर्वाद की कामना करनी चाहिए कि हमारी भूख-प्यास, इच्छा-तृष्णा तथा केवल महान् सत्य के लिए हो; क्योंकि वही प्राप्त करने योग्य है। उसे पा कर सब-कुछ प्राप्त हो जाता है। उन्हें पा कर मनुष्य ऊपर उठ जाता है और इच्छा-मुक्त हो जाता है।

ईश्वर करे, आप सब उसी की जिज्ञासा करें, उसी को माँगें, आतुरता के साथ उसी की कामना करें तथा उसी के लिए प्रार्थना करें! ईश्वर की कृपा से आपको यह सब इसी जीवन में प्राप्त हो जाये तथा आप सदा के लिए धन्य हो जायें!

४

आध्यात्मिकता की पूर्णता

अपनी अधूरी साधना में पूर्णता लाने के लिए तुम्हें वेदान्त के साथ-साथ ध्यान, पूजा और योग द्वारा मानव-समाज में अपने-आपको निरन्तर एक आदर्श मानव बनाने के प्रयास में लगे रहना चाहिए। हम इस व्यावहारिक तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते कि हम एक मनुष्य, एक साधक, एक भक्त, एक ऐसे आध्यात्मिक साधक हैं जो मोक्ष की अभिलाषा रखते हैं तथा मानव-चेतना से ऊपर उठ कर दैवी चेतना में जाने के लिए संघर्ष करते हैं।

इस तथ्य से तुम इनकार नहीं कर सकते कि तुम एक सामाजिक प्राणी हो। इसलिए इस सत्य को यथासम्भव पूर्णता के निकट लाओ। ईश्वर की रचना का एक अंग होने के कारण सभी के साथ तुम्हें अपने सम्बन्धी के समान रहना चाहिए। साधना करके तुम्हें अपनी प्रकृति को परिष्कृत करने की आवश्यकता है जिससे तुम एक सभ्य सुसंस्कृत नागरिक बन सको। अपने अहं को त्याग कर एक ऐसा सच्चा मानव बन सको जिसमें बुद्धिमानी, मित्रता और दयालुता हो। तुममें ऐसा करने की शक्ति है। तुम्हारी आध्यात्मिकता तभी पूर्ण होगी।

"मेरे कर्मों का क्या होगा, स्वामी जी ! उनके अनुसार मुझे कर्म करने की स्वतन्त्रता नहीं है।" उन्हें मत सुनो। तुम्हें कर्म करने की पूरी स्वतन्त्रता है। तुम एक स्वतन्त्र कर्ता हो। तुम्हारे सारे अनुभवों को तुम्हारे भावी कर्म संचालित करेंगे। इस जीवनावधि में होने वाले तुम्हारे सारे अनुभवों—सुख-दुःख, हानि-लाभ, हर्ष-विषाद, सफलता-असफलता, मान-अपमान, तृप्ति-असन्तोष सभी को संचालित करेंगे। केवल कर्म द्वारा प्रशासित अनुभवों में से तुम्हें गुजरना पड़ेगा।

यदि तुम अपने अन्दर से अपना संचालन ईश्वर की भक्ति, विश्वास और आध्यात्मिक आकांक्षाओं के द्वारा पर्याप्त साधना-शक्ति और सहनशीलता के

साथ करते हो, तो यह अनुभव भी तुम्हें प्रभावित किये बिना तुम्हें छोड़ कर चले जायेंगे। इस नयी व्यवस्था में स्थापित होने के कारण यह तुम्हें अप्रभावित छोड़ कर चले जायेंगे। तुमने अपने मन में संकल्प किया है—''जीवन में कुछ भी होने दो, हर परिस्थिति में मुझे अपने मन की शान्ति भंग नहीं करनी है। सुख-दुःख मेरे लिए एक-समान हैं, हानि-लाभ मेरे लिए एक-समान हैं, मान-अपमान मेरे लिए एक-समान हैं। मैं इनसे अपने मन की शान्ति भंग होने की अनुमति नहीं दे सकता। मैं इन सबसे परे हूँ—इन विरोधी द्वन्द्वों से परे हूँ।''

नव-वर्ष में अपने मन की संरचना इस प्रकार से करो कि तुम कर्मों पर हँस सको—''कर्मों की कैसी भी परिस्थिति आने दो, कुछ भी अवश्यम्भावी घटने दो। बस, मुझे सहना है। तब यह तुम्हारे लिए महत्त्वहीन हो जायेगा।'' ऐसी बुद्धिमत्ता का विकास तुम्हें करना है। कर्म के द्वारा प्रशासित अनुभवों में से गुजरना पड़ता है। इस धरती पर रह कर ईश्वर ने तुम्हें कर्म करने की जो स्वतन्त्रता प्रदान की है, उसे कर्म अल्प नहीं कर सकता। यह भूलोक पुरुषार्थ का लोक है। यह कर्मभूमि है,

पुरुषार्ष की भूमि है। कर्म करो, कर्म करते रहो।

श्रीकृष्ण गीता-गान करते समय अर्जुन से सतत यही कहते रहे—''कर्म करो, कर्म करो।'' और श्रीकृष्ण कोई सामान्य गुरु नहीं थे। वे जानते थे कि वे क्या कह रहे हैं। उस महान् व्यक्ति ने कहा—''जीवन्त वर्तमान में कर्म करो। हृदय भीतर, ईश्वर ऊपर।'' इस प्रकार तुम मनसा, वाचा, कर्मणा कर्म करने के लिए स्वतन्त्र हो।

तुम अपनी आत्मा के कर्णधार हो। तुम अपने भाग्यविधाता हो। तुम अपने कार्यक्षेत्र के स्वामी हो। कर्म की विपरीत अवधारणा मत करो। तुम अपने आपसे पूछो—''मैं क्या कर सकता हूँ?'' तुम सब-कुछ कर सकते हो। स्पष्ट अवबोध करो। मन बनाओ और जीवन ऐसा बनाओ कि एक सौन्दर्य झलक उठे।

५

आध्यात्मिक जीवन का सार—ईश्वर-सान्निध्य

सन्निधि आध्यात्मिक जीवन का सार है। जो तुम्हारे आधार, अवलम्ब और लक्ष्य हैं, उस सर्वोच्च सत्ता के तुम जितने निकट होते जाओगे, उतना ही प्रकृति क़ी महान् सार्वभौमिक लीला के बाह्य आकर्षण के प्रति प्रतिरोध क़ी योग्यता तुम्हारे भीतर अधिक होती जायेगी। जब माया की शक्ति के कारण हर पदार्थ तुम्हें अपनी ओर आकर्षित करता है। जब वह हर प्रकार से आकृष्ट करके, मोहित करके, तुम्हें भटका कर तुम्हारे लक्ष्य से दूर ले जाता है, तब ऐसी स्थिति में ईश्वर के साथ तुम्हारा जितना अधिक सामीप्य होगा, उतना ही माया के शक्तिशाली आकर्षण से तुम सुरक्षित रहोगे। "**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते**—जो केवल मेरी शरण में आते हैं, वे इस भ्रान्ति से पार हो जाते हैं।" इस प्रकार से ईश्वर ने पदार्थों के शक्तिशाली आकर्षण से अतिक्रमण का हमें मार्ग दिखा दिया है।

इस शक्तिशाली माया का उद्‌गम क्या है? किस कारण से माया को इतनी शक्ति प्राप्त हो गयी? इसकी पूछताछ करना वृथा है; क्योंकि तुम यह तो जानते हो कि माया की शक्ति है। माया की शक्ति के विषय में जानने का प्रयास करना मूर्खता है; क्योंकि इससे कुछ लाभ नहीं। तुम यह अनुभव करते हो, तुम इसे जानते हो। यह भटकाती है, विमुख करती है, प्रेरित करती है और अन्ततः अपना दास बना लेती है, तुम इसका अनुभव कर रहे हो। जब तुम इसे जानते हो, इसका अनुभव कर रहे हो, तब यह प्रश्न करना कि माया का उद्‌गम क्या है और यह कहाँ से आयी, यह सब मूर्खता है। यह शक्ति आयी कहाँ से, यह जानने की अपेक्षा तुम्हें व्यावहारिक रूप से उसके लिए कुछ अधिक करना चाहिए।

माया पर विजय कैसे पायी जाये, यह सबसे मुख्य प्रश्न है। यह कहाँ से आयी, यह जान कर क्या लाभ है? विद्युत् में झटका देने की शक्ति कहाँ से आयी और यदि निश्चित सीमा से अधिक शक्ति की हो गयी, तो व्यक्ति के लिए मृत्युकारक भी हो सकती है। इसके कारण को जानने से तुम्हें कौन-सा लाभ मिलेगा? वह शक्ति उसमें निहित है। इसे जान लेने का बस इतना ही लाभ है कि तुम सावधान रहो और विद्युत्-धारा से मरने से बचो।

हानिकार विषय से अपना सम्बन्ध स्थापित करके उससे बचाव की युक्ति को ही व्यावहारिक ज्ञान कहते हैं। उसमें कब, कहाँ, कैसे और क्यों सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। किसी पदार्थ के साथ खेल के परिणाम को देख लेना ही पर्याप्त है। जब तुमने अपने साथ तथा दूसरों के साथ उसके परिणाम का अनुभव कर लिया है, उसे देख लिया है, तो एक विवेकी कुशाग्र बुद्धि मनुष्य के लिए इतना ज्ञान ही पर्याप्त है। मूर्ख के लिए इतना पर्याप्त नहीं है। इसीलिए कभी न समाप्त होने वाले जन्म-मरण के चक्र में बारम्बार मूर्ख ही आते रहते हैं। विवेकी मनुष्य के लिए इतना जान लेना पर्याप्त है कि किससे सावधानी से, समझदारी से, बुद्धिमानी से बचना है तथा किसकी सन्निधि प्राप्त करनी है।

इसीलिए गुरुदेव 'आसक्ति और अनासक्ति' के विषय में कहा करते थे। संसार के बाह्य पदार्थों के प्रति अनासक्ति तथा ईश्वर के प्रति आसक्ति उत्पन्न करनी है। 'तोड़ो और जोड़ो' (Datach, attach) का अभ्यास करना है। ईश्वर के साथ जुड़ने पर ही उनसे योग होता है। जब तक उनके निकट नहीं जाओगे, तब तक उनसे तुम्हारा सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। उपनिषद् में महान् सत्य के अति-निकट ले जाने की शक्ति है। उपासना का अर्थ है—देवता के निकट रहना, अपने-आपको देवता के समीप बैठाना। धीरे-धीरे एक-एक चरण आगे बढ़ कर अपने-आपको ईश्वर की ओर खींचना ही आध्यात्मिक आरोहण का सार है।

उनके साथ पूर्ण रूप से जुड़ जाओ। तुम्हारा शरीर कार्य करते-करते उनकी आराधना करता रहे, तब शरीर के साथ उनसे जुड़ कर तुम उनके समीप हो जाओगे। कर्म करते हुए भी अपने मन से उन्हें स्मरण करते रह कर तुम उनके

समीप पहुँच जाओगे। विवेक के साथ सार को ग्रहण करते हुए नाम-रूप को छोड़ कर उनकी उपस्थिति को देखने का प्रयास करो। इस प्रकार अपनी तार्किक दृष्टि से, अपनी विवेकशील बुद्धि से उनके समीप रहो; अपने प्रेम, श्रद्धा, भक्ति और मित्रता से ईश्वर के निकट रहो; अपने भाव, विचार और मन से उनसे निकट का सम्बन्ध स्थापित करो। यथासम्भव उनके निकट आने का प्रयास करो। इसी में सर्वोच्च आनन्द, मोक्ष निहित है।

इसे अभी करो (Do it now)। प्रसन्न हो जाओ कि ईश्वर ने तुम्हें एक नव-वर्ष दिया है। एक कोरी पुस्तक, जिसमें तुम जो चाहो वह लिख सकते हो। तुम उसमें स्वर्ण अक्षरों से लिख सकते हो। क्या तुम इसे सब प्रकार से धुँधला और काला कर दोगे? स्वर्ण अक्षरों से भर कर अपने श्रेष्ठ मित्र और शुभचिन्तक बन जाओ। बुद्धिमान् बनो। सच्चे योगी और सच्चे भक्त बन जाओ। इस प्रकार अपने-आपको ईश्वर के समीप रखो। ऐसा ही हो !

६

भक्ति—प्रभु को प्रिय

शाश्वत सत्य के प्रति श्रद्धा के साथ नमन! वे जो अनादि, अनन्त, असीम, अपरिवर्तनशील, शाश्वत, सर्वव्याप्त, अन्तर्यामी,अन्तर्निहित सत्य हैं, वे ही जगत् के स्रोत, आधार, संसार के परम पालनकर्ता, असीम और सर्वव्यापक हैं; इसीलिए वे सर्वत्र विद्यमान हैं। तुम्हारे भीतर निवास करते हैं; इसलिए तुमसे भी अधिक तुम्हारे निकट हैं। वह सत्ता जिसमें तुम रहते हो, चलते-फिरते हो और अपने-आपको जीवित रख पाते हो, वे तुम्हारे शरीर-मन्दिर में, हृदयस्थ हैं। इसीलिए तुम्हारी प्रत्येक क्रिया दैवी क्रिया ही है।

मन की इस आन्तरिक वेदी पर इस वर्ष तुम अपने शरीर-मन्दिर में सच्चाई, सत्य भाव, निष्कपटता, स्वमिभक्ति, समर्पण, निष्कपट मन, स्पष्टवादिता, सरलता के पुष्पों को चढ़ा कर ईश्वर की पूजा करो। जीवन की सारी कुटिलता, छल-कपट, दुरंगी-चाल से रहित हो कर पूजा करो। पवित्रता, दयाभाव और सरलता के पुष्प चढ़ा कर पूजा करो। इन्द्रियों को संयमित करके जीवन में आत्म-संयम के पुष्प चढ़ा कर पूजा करो।

यह ऐसे पुष्प हैं जो तुम्हारे शरीर-मन्दिर में स्थित, मन के परम पावन गर्भ-गृह में निवसित सत्ता को अतिप्रिय हैं। उन्हें अपनी पूजा के लिए बहुमूल्य पदार्थ नहीं चाहिए। वे अगणित लोकों के अधिपति हैं। वे सबके स्वामी हैं। तुम उन्हें दे ही क्या सकते हो? ऐसा कुछ है ही नहीं जो उनका न हो।

पर तुम्हारा अहंकार तुम्हारा अपना है, मन तुम्हारी सम्पत्ति है, तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिए है। यदि अपने मन, अपने अहं को अपने जीवन-पुष्प के रूप में उनके चरणों में अर्पित करते हो, तब निश्चित रूप से उनकी कृपा का संचार तुम्हारें भीतर होगा। जब तुम उन्हें सच्चाई, क्षमा, सरलता, निष्कपटता

के पुष्प अर्पित करोगे, जहाँ कुटिलता, कपट, द्विविध भाव, मानवीय चतुराई नहीं होगी, तभी उन्हें अच्छा लगेगा। तुम उन्हें उसी से प्रसन्न कर सकते हो।

यह सारे अवगुण आध्यात्मिक आदर्शों की दृष्टि से सन्त और बुद्धिमान् व्यक्ति के लिए तिरस्कार योग्य हैं। ये सारे साधन केवल कुटिल, धूर्त, बेईमान और प्रवंचकों के लिए हैं। जिन्होंने अपने जीवन का उच्च आदर्श ईश्वर को माना है, इन दुर्गुणों को अपना कर वे संन्यासी, साधक और ईश्वर के भक्त नहीं बन सकते। इन घृणित साधनों से आध्यात्मिक व्यक्ति की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

यदि आत्म-विश्लेषण, आत्म-परीक्षण और प्रार्थना द्वारा इन अवगुणों को दूर नहीं किया जाता, तो ये तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन में बाधा बनेंगे। इस पथ पर आगे बढ़ने से रुक जाओ। यदि तुम दिव्यता प्राप्ति की प्रगति का प्रयास नहीं करते, तो अपना आध्यात्मिक जीवन दस, बीस क्या पचास साल तक भी करने पर तुम वहीं-के-वहीं रहोगे। अपूर्ण सांसारिकता की ओर बढ़ते हुए तुम्हारे चरण अपनी मानवीय दुर्बलताओं और अवगुणों के कारण डगमगा गये हैं। रास्ता भटक जाना ही आध्यात्मिक जीवन की दुःखद घटना है।

हमारी वैदिक जीवन-पद्धति के आधार पर हमारी पूरी दिनचर्या धर्म के आधार पर चलती है। तुम जो-कुछ भी हो, जिस परिस्थिति में भी हो, तुम्हें एक निश्चित धर्म का पालन करना होगा। तुम्हारी वास्तविक पहचान देवत्व की है, वह ज्ञान तुम्हें गुरु ने ही दिया है। तुम जो हो, उसके अनुरूप तुम्हें व्यवहार करना चाहिए। अपनी वास्तविक पहचान को अपने जीवन में प्रकट करने के लिए तुम्हें दिव्य जीवन व्यतीत करना होगा; दिव्य चिन्तन, वचन और व्यवहार करना होगा। यही तुम्हारा धर्म है। तुम्हारी बाह्याभिव्यक्ति अन्तरभिव्यक्ति से भिन्न न हो।

यदि जानते हो कि तुम परमात्मा के अंश हो, तुम दिव्य हो, दिव्यता तुम्हारी पहचान है, तो तुम्हारा धर्म बन जाता है कि तुम जो-कुछ हो; उसे प्रकट करो। इसके विरुद्ध चलना सत्य से दूर जाना है।

अपने गुरु की शिक्षाओं के प्रति श्रद्धावान् होना ही सच्चाई है। गुरु की शिक्षाओं से दूर भागना ही मिथ्यावाद है। अपनी पवित्रता प्रतिज्ञाओं के प्रति निष्ठा ही सत्यता है। जीवन में इन प्रतिज्ञाओं की अवहेलना न करते हुए रहना ही मिथ्यावाद है

हमारे जीवन में आन्तरिक तथा बाह्य रूप से सत्य व्याप्त रहता है। इसलिए सत्य के सर्वव्याप्त होने के सिद्धान्त को अपने जीवन में आन्तरिक और बाह्य रूप से व्यष्टि और समष्टि में, विषय और विषयी में गहराई से चिन्तन करके देखो। कोटि-कोटि सूर्यों के प्रकाश से प्रकाशित हो कर तुम्हारे हृदय में निवास करने वाली उस महान् सत्ता की पूजा सत्य के पुष्प से करो। यही सर्वोच्च आराधना है। यही आगामी वर्ष में तुम्हारा कर्तव्य भी है।

७

अपने मन–मस्तिष्क में दिव्यता लाओ

"प्रत्येक दिन एक नव-जीवन है। हर सुबह एक नित्य चमत्कार है। जीवन वही है जिसमें तुम आनन्द का अनुभव करते हो। सृष्टि ईश्वर के प्रकाश और आनन्द से परिपूर्ण है।"—जेट्रुड स्टेइन (Gertrude Stein)। इसीलिए ईश्वर की समस्त सृष्टि में उनके प्रकाश के दर्शन करते हुए हम ईश्वर के प्रकाश के प्रति जागृत और उनकी दिव्य उपस्थिति में अपना जीवन बितायें।

हमें केवल एक ही विषय पर चिन्तन करना चाहिए कि नव-वर्ष हमारे लिए दिव्यत्व का वर्ष होना चाहिए। हम सामान्य मानव से कुछ अधिक हैं, इसी जागरूकता के साथ हमें रहना चाहिए। हम वास्तव में दिव्य हैं। हमारा मानवीय रूप अस्थायी है। हमारा निज स्वरूप, हमारी वास्तविकता इसी तथ्य में निहित है।

हम दिव्यता के प्रकाशित केन्द्र हैं, इसलिए हमारे जीवन में इस देवत्व की गतिशील अभिव्यक्ति विचारों, शब्दों और कर्म में दिव्यता के रूप में होनी चाहिए। हमारी क्रियाओं और गतिविधियों में देवत्व की अभिव्यक्ति हो, हमें ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहिए। हमारा जीवन तभी प्रामाणिक और विशुद्ध सत्य के रूप में होगा। अन्यथा वह अनियमित रहेगा। यदि हम अन्दर से दैवी पर बाहर से आसुरी, साधनाहीन, घृणित जीवन व्यतीत करते हैं, तो वह दिव्यता के विपरीत होगा। वह जीवन असत्य है। झूठ है। विरोधाभास है।

अब जब हम गत वर्ष को विदा करने की वेला में हैं तथा नव-वर्ष के प्रवेश-द्वार पर चरण रखने वाले हैं, तब हमें इस सत्य का चिन्तन करना चाहिए कि हम दिव्य हैं। इसीलिए हमें हर पहलू से जीवन में दिव्य होना चाहिए। वर्ष के बारह मास, मास का प्रत्येक दिन, दिन के चौबीस घण्टे हम इसी दिव्यता में जियें। सबको आनन्द देने के लिए हम जीवन को सुन्दर बना दें। हमें ईश्वर के

बालक बन कर जीवन यापन करना है। यही सच्चा धर्म है। हम जो हैं, वही बने रहें। हम ईश्वर के बच्चे हैं, हम दिव्यत्व से चमक उठें।

इसीलिए मैं एक संकल्प-सूक्ति तुम्हें सौंपता हूँ : सदा अपने मन-मस्तिष्क में ईश्वरत्व का भाव रखो, वर्ष-भर यही तुम्हारे जीवन का मूल सिद्धान्त होना चाहिए। इससे तुम्हारा भला तो होगा ही और सभी का भी कल्याण होगा।

८

प्रार्थना का विषयपरक आयाम

हम शीघ्र ही महाशिवरात्रि पर भगवान् शिव शंकर की पावन वार्षिक पूजा करने वाले हैं। परम्परा से हम भगवान् शंकर को संहारक मान कर उनके सम्मान में कुछ बोलें। परम परमेश्वर के तीन रूप हैं : ब्रह्मा—सृष्टिकर्ता, विष्णु—पालनकर्ता, शिव—संहारकर्ता। वे कहते हैं—सृष्टि, स्थिति और विनाशकर्ता में सामान्यतया इसे 'विनाशकर्ता' के रूप में प्रयोग नहीं करता। मैं इसे लयकर्ता कहता हूँ। पुराणों में उन्हें नाशकर्ता या विनाशकर्ता नहीं, बल्कि लयकर्ता कहा गया है। लय का अर्थ है—अपनी पूर्व-स्थिति में पुनः शान्त हो जाना। सृष्टि का अर्थ है—विविध नाम और रूप में प्रकट हो कर एक से अनेक हो जाना। स्थिति का अर्थ है—परिरक्षण, काल की परिधि में निरन्तरता। अपनी मूल, अप्रकट, अनाम, अरूप, एकीकृत स्थिति में पुन: विलय हो जाना ही 'लय' है।

पर लयकर्ता की धारणा के सर्वथा विपरीत बहुत बड़ी संख्या में विशेषकर उत्तर भारत में भगवान् शंकर वरदानदाता हैं। देवाधिदेव होते हुए भी, सबसे महान् होते हुए भी महादेव शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले हैं। वे बड़े रारल, कुछ भी देने के लिए तत्पर रहने वाले और रक्षक भी हैं। उन्होंने मार्कण्डेय की प्राणरक्षा की। उनके भक्त, उस छोटे-से बालक को जब यम देवता लेने के लिए आये, तो उसे छूने की हिम्मत भी नहीं हुई। शंकर भगवान् ने उसकी मृत्यु से रक्षा की। इस प्रकार वे यहाँ लयकर्ता नहीं, बल्कि संरक्षक और उद्धारक अधिक हैं। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं, जब उन्होंने रक्षा करके अनुग्रह प्रदान किया है।

उन्हें प्रसन्न करने के लिए कुछ अधिक नहीं करना पड़ता। बस थोड़ा-सा जल चढ़ा दो, बिल्व-पत्र समर्पित कर दो और एक बार उनके नाम का उच्चारण कर दो। बस, इतना ही पर्याप्त है। उन्हें आशुतोष भी कहते हैं। ऐसी ही एक

उपाधि से वे जाने जाते हैं, जिसे आशुतोष कहते हैं, जिसका अर्थ है बहुत आसानी से वे प्रसन्न हो जाते हैं—आशुतोष महादेव।

पर उत्तर भारत के अनेकों भक्त उन्हें सबसे प्रीतिकर और प्रचलित नाम 'भोला' से पुकारते हैं। भोला का अर्थ है—सरल स्वभाव का, जिसके मन में विचारों, भावों और क्रिया में जटिलता नहीं है। उनके पास न कोई जटिलता है न कुटिलता और न चालाकी है। वे सरल हृदय के हैं। वे उन्हें 'भोलानाथ' कहते हैं, वे उन्हें भोला शम्भु कहते हैं। वे जो देखते हैं, उसी पर विश्वास कर लेते हैं। वे उससे अधिक कुछ नहीं देखते। यदि कोई व्यक्ति अपने मन की अनुचित भावना से उनसे वरदान माँग लेता है, तब भी वह उसके अनुचित भाव को नहीं देखते।

यदि कोई व्यक्ति कड़ी तपस्या करता है अथवा उनके नाम का जप कर लेता है, तो वे उसके भाव और परिणाम की चिन्ता किये बिना कुछ भी दे देते हैं। उन्हें कोई भी सन्तुष्ट कर सकता है। उनका नाम ले कर, प्रार्थना और तपस्या से उन्हें प्रसन्न कर सकता है। वे स्वयं पूछते हैं—"क्या चाहिए तुम्हें?" रावण ने घोर तपस्या की। बस, उसी से हम जान सकते हैं कि भगवान् शंकर किस सीमा तक सरल हैं तथा कितनी आसानी से प्रसन्न हो कर कुछ भी देने के लिए उद्यत रहते हैं। उन्होंने अपनी अर्धांगिनी देवी पार्वती को उसे दे दिया।

यदि आप सब कल से ही एक अनुष्ठान शुरू करके महाशिवरात्रि तक उसे समाप्त कर लें, तो निश्चित रूप से यह आपके लिए लाभकारी सिद्ध हो सकता है। मानव-जाति के कल्याणार्थ इसे समर्पित करके प्रतिदिन **'ॐ नमः शिवाय'** की ग्यारह माला पूरी कर लें। यदि ग्यारह नहीं, तो कम-से-कम पाँच ही कर लें, एक-एक अक्षर के लिए एक माला; क्योंकि पंचाक्षरी मन्त्र है यह। यह बहुत सरल है। सहज रूप से पाँच मिनट में पूर्ण कर सकते हैं। इसे पुरश्चरण नहीं, अनुष्ठान कहते हैं। जप-अनुष्ठान मानव-कल्याणार्थ और विश्व-शान्ति के लिए कर सकते हैं।

अब हम भारत की उस प्राचीन परम्परा पर विचार करेंगे जिसमें विशेष रूप से भारत के धार्मिक क्षेत्रों में हम दूसरों के लिए प्रार्थना करते हैं, विश्व के

लिए, मानव-कल्याण के लिए, सारे प्राणियों के लिए, धरती पर शान्ति-स्थापना के लिए प्रार्थना करते हैं। यह प्रार्थना केवल मानव-समुदाय के लिए ही नहीं, बल्कि प्रत्येक जीवधारी के लिए तथा जिसका भी इस विश्व में अस्तित्व है, उसके लिए करते हैं। शान्ति के लिए प्रार्थना करना, शान्ति की इच्छा करना, शान्ति की शुभकामना करना तथा सारे विश्व के अस्तित्व में जो-कुछ है, उसके लिए अपने शान्ति के विचार भेजना। सभी पंचभूतों—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश के लिए, घास, वनस्पति, पेड़, पौधे, वृक्ष के लिए शान्ति की कामना। देवताओं, देवदूतों, सारे देवताओं से ले कर ब्रह्मा-पर्यन्त (सब देव शान्त हो) **विश्वेदेवा शान्तिः; ब्रह्म शान्तिः, शान्ति एव शान्तिः**—शान्ति के लिए भी शान्ति। यह भारत की प्राचीन परम्परा रही है। सारे वेदमन्त्रों के लिए भी शान्ति की कामना।

''लोकास्समस्ताः सुखिनो भवन्तु''—इस संसार के सारे प्राणी सुखी रहें। **''सर्वेषां स्वस्तिर्भवतु''** —सारे प्राणी समृद्ध हों, उनका कल्याण हो। **''सर्वेषां शान्तिर्भवतु''**—सारे प्राणियों को शान्ति प्राप्त हो। **''सर्वेषां पूर्णं भवतु''** —सारे प्राणियों को सब-कुछ बहुलता से मिले, सभी पूर्णता के साथ रहें। **''सर्वेषां मंगलं भवतु''**— सारे सौभाग्यशाली हों, उनका कल्याण हो। **''सर्वे भवन्तु सुखिनः''**—सभी प्रसन्न रहें। **''सर्वे सन्तु निरामयाः''**—सभी रोग, कष्ट, हानि से मुक्त हों। **''सर्वे भद्राणि पश्यन्तुः''**—सभी सौभाग्यशाली सुखकारी हों, हम सबको आनन्दमय देखें, कहीं कोई भय की स्थिति में न हो। **'भद्रा'**—सौभाग्यशाली, आशीर्वाद, सौम्य, शुभकारी। **''मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्''**— किसी के भाग्य में दुःख की रेखा न पड़े। इस प्रकार की हमारी प्राचीन परम्परा रही है। शुभचिन्तक होने की कामना, शान्ति की कामना, सुख-शान्ति, समृद्धि, रोग-कष्ट से मुक्ति, पूर्णता, आनन्द, सभी के लिए मंगल की कामना करना।

इस प्रकार की प्रार्थना की कामना इसलिए नहीं कि विश्व को यह सब पाने की आवश्यकता है। इस प्रार्थना के स्वगत (विषयीपरक) आयाम भी हैं, उन्हें भी ध्यान में रखना चाहिए। जो प्रार्थना करता है, उसके ऊपर इस प्रक्रिया का

बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। हमें इस बात के लिए जागरूक होना चाहिए कि हमारे पूर्वजों ने हमसे क्या अपेक्षा की है। हम दूसरों के लिए जो चाहते थे, उसके लिए प्रार्थना, विचार करते थे, उन परिस्थितियों को उत्पन्न करने के लिए हमें निरन्तर इस प्रक्रिया के लिए अपना जीवन गतिशील और सक्रिय रखना है, इस धरती पर जिनका अस्तित्व है उन सारे जीवों, मानवों तथा सारे संसार में सबके किए शुभकामना करना, उनके लिए सकारात्मक, रचनात्मक, निर्माणात्मक, उनकी भलाई, उनके सहायक होने के लिए अच्छा सोचना, उनके कल्याण के लिए, उनके सौभाग्य के लिए प्रार्थना करना। इन परिस्थितियों को लाने के लिए यदि हम प्रार्थना को उचित रूप से क्रियान्वित नहीं करते, तो सब निरर्थक है।

यदि हम दूसरों के लिए शान्ति की कामना करते हैं तथा उसी समय हम दूसरों को हानि पहुँचा कर उनकी शान्ति भंग करने में सक्रिय रहते हैं, तब हम जीवित झूठ के समान हैं। हम अपने मुख से जिन प्रार्थनाओं का उच्चारण करते हैं, उसके विपरीत भयानक रूप से ठहरते हैं। हम कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। जिसके लिए हम प्रार्थना करते हैं, यदि उसके विरुद्ध कुछ करने में हम सफल हो जाते हैं। उससे एक गम्भीर स्थिति उत्पंन्न हो जाती है, एक अकमनीय स्थिति। हर दिन हम कहते हैं : ''**मा कश्चिद् दु:खभाग्भवेत्**''—किसी को भी दु:ख न मिले। इसलिए हमें निरन्तर जागृत, सचेत और सावधान रहना चाहिए कि हम किसी को मन, वचन तथा कर्म से दु:ख और कष्ट तो नहीं पहुँचा रहे हैं।

''जहाँ-कहीं दु:ख है, मुझे वहाँ आनन्द लाने दो''—सेंट फ्रांसिस की ऐसी उदार प्रार्थना है। जब हम प्रार्थना करते हैं—''किसी के भी भाग्य में दु:ख न आने पाये'', तब हमें सेंट फ्रांसिस की इस सरल प्रार्थना के अनुरूप कार्य करना चाहिए। ''ओ स्वामी! जहाँ-कहीं दु:ख है, मुझे वहाँ सुख लाने दो। दूसरे के जीवन में खुशियाँ लाने के लिए मुझे साधन बना दो, दूसरों के दु:ख दूर करने का मुझे साधन बना दो।'' इसका स्वत:सिद्ध अर्थ यही है कि यदि हम दूसरों को सुख पहुँचाना चाहते हैं, आनन्द देना चाहते हैं, तब हमें निश्चित रूप से

प्रसन्नता लाने के लिए कुछ सकारात्मक करना चाहिए। इसके लिए हमें साथ में कुछ करते रहना चाहिए जिससे दूसरों के दुःख दूर हो सकें, उनके कष्ट कम हो सकें, व्यक्तियों के दुःख में कमी आये। सेंट फ्रांसिस की इस सरल प्रार्थना की इस पंक्ति के पीछे यही भाव छिपा है।

इससे हट कर इस प्रार्थना से हमें यह संकेत मिलता है कि हमें किस प्रकार के काम करके कैसा जीवन व्यतीत करना चाहिए। हमारे महान् पूर्वजों ने हमारे सामने हमारे जीवन के लिए कौन-से आदर्श स्थापित किये हैं और हमें उनका पालन कैसे करना चाहिए ? इसका और एक दूसरा पक्ष भी है। दूसरों के विषय में उनकी प्रसन्नता, कल्याण और शान्ति के लिए निरन्तर इस प्रकार के सकारात्मक चिन्तन से हमारे स्वभाव में भी परिवर्तन आ जाता है। धीरे-धीरे हमारा उस प्रकार का कार्य करने का, इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने का स्वभाव हो जाता है। हम दूसरों के लिए सद्‌भाव का केन्द्र बन जाते हैं तथा उनके लिए दया, करुणा के केन्द्र बन जाते हैं एवं शान्ति का केन्द्र बन जाते हैं। इस प्रकार प्रार्थनाओं के निरन्तर उच्चारण से, सतत उन पर विचार करने से, निरन्तर उन भावों को अपने मन में रखने से उसके प्रभाव के कारण हमारे स्वभाव में परिवर्तन आ जाता है। उस ओर झुकाव के कारण धीरे-धीरे हमारे भीतर सबके प्रति सद्‌भाव-वृत्ति उत्पन्न हो जाती है। किसी के प्रति बुरी भावना नहीं रहती। सबके प्रति दया और करुणा के भाव उत्पन्न हो जाते हैं तथा सभी की प्रसन्नता, शान्ति, सुविधा, सान्त्वना के लिए प्रार्थना करना ही जीवन का उद्देश्य हो जाता है।

निरन्तर प्रार्थना का ऐसा प्रभाव तभी पड़ता है, जब हम यन्त्रवत् नहीं प्रत्युत भावना से भर कर प्रार्थना करते हैं। यदि हम नित्य नियमानुसार यन्त्रवत् मन्त्रों का पाठ केवल दिखावे के लिए ही करते रहते हैं, तब निश्चित रूप से हम पवित्रीकरण, उन्नयन, रूपान्तरण के प्रभाव की प्रक्रिया से वंचित रह जायेंगे। उससे हमारा कोई हित नहीं होगा और न कोई लाभ ही होगा। हम जब कभी भी प्रार्थना करें, उस समय हम पूरी गम्भीरता के साथ, भावपूर्ण, अर्थपूर्ण ढंग से

करें, तभी हममें वह प्रार्थना परिवर्तन की शक्ति प्रदान कर सकती है तथा उससे महान् पवित्रीकरण और उन्नयन की शक्ति प्राप्त हो सकेगी।

प्रार्थना करने वाले को यही फल प्राप्त होता है । इसका यही अचूक प्रभाव होगा कि हम जो-जो प्रार्थना कर रहे हैं, वह सारी विशेषताएँ हमारे भीतर आ जायेंगी। इसे ही प्रार्थना का स्वगत (Subjective) आयाम कहते हैं—प्रत्येक प्रार्थना करने वाले के ऊपर उसका उसी प्रकार का प्रभाव पड़ता है। निरन्तर मित्रता की भावना, दया की भावना, करुणा की भावना, सद्भावना हमें मानव-समुदाय शुभचिन्तक बना देती हैं। वह एक ऐसा व्यक्ति बन जाता है जो प्रेम, दया, सद्विचारों, सदिच्छा, प्रेम तथा सबकी शान्ति के लिए प्रार्थना करने वाला हो।

हमारे जीवन का उद्देश्य तभी पूरा होता है। उसी से हम ऐसा केन्द्र बन जाते हैं जिससे हमारे चारों ओर प्रकाश की किरणें विकीर्ण होती रहती हैं। उसे दैवी सम्पद कहते हैं। करुणा, दया, शान्ति, प्रकाश और आनन्द सब ईश्वरीय गुण हैं और हम उनके इस संसार में स्वयं को उन गुणों की अभिव्यक्ति का एक साधन बना लेते हैं। इससे बढ़ कर और क्या वरदान चाहिए? इससे बढ़ कर और कौन-सी सुविधा कोई पा सकता है? इससे बढ़ कर जीवन में कोई और क्या सन्तोष पा सकता है। ऐसा सन्तोष कि मैंने जीवन व्यर्थ ही नहीं गँवा दिया है। मैंने अपने-आपको ईश्वर का सच्चा बालक बनाने का पूर्ण प्रयास किया है। जिन्हें मैं पिता, माता, मित्र, सम्बन्धी और स्वामी—सब-कुछ मानता हूँ, उनके गुणों की अभिव्यक्ति का स्वयं को केन्द्र बना लिया है। ऐसा ही जीवन वास्तव में जीने योग्य है।

इस प्रकार हमें यह समझ लेना चाहिए कि जो प्रार्थना करता है, उसके लिए इस प्रार्थना के अगणित लाभ हैं। इस प्रकार की प्रार्थना तुम्हारा रूपान्तरण करके तुम्हें दिव्य बना दे। ईश्वर तुम्हारा कल्याणा करे!

९

विवेक से भक्ति की सफलता

सार्वभौम सत्ता को सादर नमन, जो दिव्य स्वरूप में यहाँ विद्यमान है! आप सदा हमारे मित्र बन कर हमें अपनी उपस्थिति के प्रति जागरूक रखें, जिससे हम आपके प्रकाश में विचरण कर सकें! वह प्रकाश हमारे भीतर विवेक के रूप में प्रकाशित हो कर, हमारे अज्ञान को ज्ञान में परिणत करके, अज्ञान-अन्धकार का नाश कर दे! ईश्वर करे, हम ज्ञान के प्रकाश में विचरण करें! ईश्वर करे, हम उस पथ पर चल कर विवेक के प्रकाश में जियें, क्योंकि वही श्रेय पथ है!

परम पूज्य प्रिय गुरुदेव आप दिव्य हिमालय और गंगा की गोद में, पावन उत्तराखण्ड में वेदान्त के ज्ञान से प्रकाशित हुए हम सभी को महान् प्रकाश का पथ दिखा कर हमें यह प्रार्थना प्रदान करो: **"तमसो मा ज्योतिर्गमय"**—अज्ञान के अन्धकार से ऊपर उठ कर ज्ञान के प्रकाश की ओर बढ़ें। हमें उस ज्ञान और विवेक का आशीर्वाद दीजिए, वह हमें शान्ति और सौभाग्य की ओर ले जाये। हमें ज्ञात है कि आपने ज्ञान-यज्ञ हेतु जीवन यापन किया, आध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार, उपनिषदों के ज्ञान के प्रसार के लिए अपना जीवन यापन किया है जो मानवता के लिए सर्वोच्च सम्पदा के रूप में चमक रहा है। भूमण्डल का मानव-परिवार इस अमूल्य वैदिक ज्ञान से समृद्ध हो गया है जो मानवोपलब्धि का मुकुट और गौरव है।

"सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म।" सर्वोच्च सत्य ही सत्य है, यही विवेक है—यही सत्य है, यही ज्ञान है और यही सत्य है कि वह असीम और अपरिमित है, इसीलिए वह पूर्ण है। सारी आपेक्षिकता से परे है, इसीलिए वह अनन्त है। अन्तहीन। वही ज्ञान है, इसीलिए अपार है। पूर्ण ज्ञान होने के कारण कैवल्य ज्ञान है। यह ज्ञान का अमृत है : **"कैवल्य ज्ञानममृतम्"**—पूर्ण अमृत ज्ञान।

एक साधक, एक आध्यात्मिक अनुसन्धानकर्ता, एक योगी को जिज्ञासु कहते हैं। जिज्ञासु वह है जो सदा ज्ञान और विवेक की खोज में रहता है। जिज्ञासु शब्द 'ज्ञ' धातु से आया है, जिसका अर्थ है जानना। जिसे ज्ञान की प्यास है, जो ज्ञान और विवेक प्राप्त करने की खोज में है, वह है जिज्ञासु। इस प्रकार साधक के लिए, जिज्ञासु के लिए सच्चे अन्वेषक बनने की आवश्यकता है।

जीवन का सवोच्च लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति है। सद्योमुक्ति है अचिरेणमुक्ति और क्रममुक्ति में धीरे-धीरे क्रमश: मुक्ति प्राप्त होती है। चाहे सद्य:मुक्ति हो अथवा क्रंममुक्ति मानवता का सर्वोच्च मोक्ष प्राप्त करना है। श्रुति कहती है : **''ऋते ज्ञानं न मुक्तिः''**—बिना ज्ञान के मुक्ति असम्भव है। बिना ज्ञान अथवा विवेक के मुक्ति नहीं मिलती, स्वतन्त्रता नहीं मिलती। यह एक निश्चित कथन है, एक स्पष्ट घोषणा है। इसलिए जिज्ञासु होना अनिवार्य है।

विवेक कल्याणप्रद है। विवेक ही उत्कृष्ट, महानतम कल्याणकारण है। भक्ति और प्रेम भी सर्वोच्च लाभकारी हैं। इनसे भी मुक्ति मिल सकती है। यदि भक्ति मूर्खतापूर्ण हो, यदि अविवेक और अज्ञान के साथ भक्ति हो, तब ऐसी भक्ति से मनुष्य कष्टों को निमन्त्रण देता है। इस प्रकार का कष्ट सभी महान् साधकों, भक्तों और महान् सन्तों के जीवन में घटित हो चुका है। उन्हें मूर्खता में फँस कर व्याकुल होना पड़ा है। तब निराशाजनक स्थिति में ईश्वर की प्रार्थना करके उन्होंने विलाप किया है। असहाय और दीन हो कर सहायता के लिए अश्रु बहाये—''सब खो गया, ओ स्वामी! कृपया सहायता कीजिए। आप असहायों के सहायक हैं। मैंने यह मूर्खता की है। आओ, मेरी रक्षा करो।''

इस प्रकार जब वे अज्ञानी थे, उन्हें ईश्वर की ओर उन्मुख हो कर उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करनी पड़ी है। इस प्रकार के अनुभव सभी आध्यात्मिक साधकों के जीवन में दिखायी देते हैं। वह अलग बात है किं वे कितनी गहराई के साथ अपनी भक्ति में सच्चे थे और कितने निष्कपट थे। यदि वे मूर्खता में प्रवेश करते हैं, तब उनका भक्तिभाव होते हुए भी वे कष्ट पाते हैं। ईश्वर के महान् भक्तों के जीवन में यह स्पष्ट रूप से दिखायी देता है । जब वे ज्ञानशून्य हो जाते हैं, जब उनकी बुद्धि काम नहीं करती, जब वह अहंकारी हो

जाते हैं, तब वे इच्छाओं के चक्र में ऐसे फँस जाते हैं कि उन्हें विलाप करना पड़ता है।

इसलिए जब भक्ति बहुत अच्छी तरह से चल रही हो, उस समय यदि भक्त के जीवन में मूर्खता का अंकुर फूट जाये, उससे सारी अच्छाई का नाश हो जाता है। इसीलिए भक्ति सदा विवेक के सहारे चलनी चाहिए। एक प्रार्थना है—"हे ईश्वर! हमें ऐसी शान्ति प्रदान कीजिए कि जब जीवन में कुछ बदला नहीं जा सकता, उसे हम प्रसन्नता से स्वीकार कर लें। जो परिवर्तित किया जाना चाहिए, उसे परिवर्तित करने का साहस प्रदान कीजिए तथा दोनों के भेद को समझने की बुद्धि दीजिए।"

"**हे प्रभो आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए**—ओ आनन्द देने वाले प्रभु हमें ज्ञान दीजिए।" जिस प्रार्थना का आप सब प्रतिदिन गायन करते हैं, उसी की यह पहली पंक्ति है। जब सभी व्यक्ति आनन्द और सुख पाने की खोज में हैं और वे ईश्वर को सम्बोधन करके उनसे कहते हैं कि वे महान् आनन्ददाता हैं, किसलिए वह उसके तुरन्त बाद ज्ञान भी प्राप्त करने की आकांक्षा करते हैं? इस पर चिन्तन करना आवश्यक हो जाता है। इसका अभिप्राय है कि जब कोई आनन्द की प्राप्ति करना चाहता है और जब आप आनन्द देने वाले ईश्वर को सम्बोधन करते हैं, उस समय आपको ज्ञात है कि यदि आप मूर्खता के पथ पर चले जायेंगे, तब आप अपने-आप उस सुख-शान्ति से वंचित हो जायेंगे। इस वास्तविकता के होते हुए भी वह आपको आनन्द देने के लिए सदा तत्पर रहते हैं।

"**हे आनन्ददाता हमें ज्ञान दीजिए।**" किसका ज्ञान? उसे दूर करने के लिए जो हमारे लिए उचित नहीं है, जो दिव्य नहीं है, जो धार्मिक नहीं है उसका ज्ञान। उन सारे तत्त्वों को हमारे अन्दर से दूर कर दीजिए जो ज्ञान और विवेक-प्राप्ति के पथ के बाधक हों, उसका ज्ञान दीजिए। "**शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए। लीजिए हमको शरण में हम सदाचारी बनें। ब्रह्मचारी धर्मरक्षक सत्यव्रतधारी बनें**"—ऐसा ज्ञान हमें दीजिए जिससे हम आपके समक्ष स्वयं को समर्पित कर सकें, आपको अपना अहंकार समर्पित कर

सकें, और अच्छे चरित्रवान् बन कर सत्य के पथ पर चलें, धार्मिक और आध्यात्मिक पथ पर स्थित हो जायें। जो जीवन का ऐसा सर्वोच्च आदर्श है जिसे समक्ष रख कर हम ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति कर सकते हैं। हम उस ज्ञान की रक्षा करें, सावधानीपूर्वक उसकी सुरक्षा करें; क्योंकि हम यह जानते हैं कि वही निश्चित रूप से आनन्द और शान्ति प्रदान करने वाला है। ईश्वर करे, हममें ऐसा ज्ञान और विवेक आ जाये कि हम सत्यव्रत का पालन करें।

इस प्रार्थना में इसी प्रकार के ज्ञान की प्रार्थना की गयी है। जहाँ ज्ञान होता है, वहीं आनन्द होता है, वहीं शान्ति भी होती है। ज्ञान के अभाव में व्यक्ति दुःखी हो जाता है। मूर्खता शोक का कारण बनती है। ज्ञान के अभाव में अर्जुन जब शोक करने लगा, तब श्रीकृष्ण ने कहा—"ज्ञानवान् दुःखी नहीं होते। ज्ञानवान् सभी को समान रूप से देखते हैं। जागृत व्यक्ति वही है जो बुद्धिमान् है, जो सदा ज्ञान के प्रति जागरूक रहता है, विवेक के लिए जागरूक रहता है, वह ऐसी वस्तुओं की ओर नहीं दौड़ता जो दुःख का कारण हों। वह अस्थायी और छोटी-छोटी बातों में आनन्दित नहीं होता। अपूर्ण वस्तुएँ जो समय दिक्काल के कारण सीमित हैं, उन पर निर्भर नहीं होता। इसीलिए वही समझदार है जो यह जानता है कि शान्ति और आनन्द की प्राप्ति कहाँ से हो सकती है। वह पग-पग पर ज्ञान की खोज करता है।"

इसीलिए अन्वेषक और साधक के जीवन के इस केन्द्रीय तथ्य को विवेक से पहचान लेना चाहिए। जब कि दोनों के लिए ही भक्ति आवश्यक और लाभदायक है। बुद्धिमानी ही भक्ति को अनुभवों के द्वारा फलप्रद बनाती है। यदि भक्ति के साथ-साथ ज्ञान और बुद्धिमानी का सहारा ले कर उसके साथ जीवन यापन किया जाये, तभी भक्ति के साथ शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होती है। श्री रामकृष्ण जी कहते थे—"एक भक्त को मूर्ख नहीं होना चाहिए। विवेक सर्वश्रेष्ठ है। यही भक्ति को हितकारी बनाता है।"

इसीलिए अन्वेषक, आकांक्षी, आध्यात्मिक साधक जिज्ञासु भी हैं। वे सदा ज्ञान और बुद्धि की खोज में लीन रहते हैं। ज्ञान तुम्हारा महान् मित्र है। बुद्धिमत्ता तुम्हारी अमूल्य जीवन-सहचरी है। ज्ञान और बुद्धि सत्संग से और

जीवन में सद्विचार से, सही विवेक, उपयुक्त परिप्रश्न व निरीक्षण से आती है। हमारे चारों ओर के जीवन का निरीक्षण करके दूसरों की मूर्खता से भी हम विवेक की शिक्षा ग्रहण करते हैं। एक सच्चा साधक पग-पग पर शिक्षा ग्रहण करता है। उसी से वह अपने ज्ञान को आगे बढ़ा कर अपनी समझदारी का विस्तार करता है। इस प्रकार बुद्धिमानी से रह कर, ज्ञान के प्रकाश पर चल कर उसे निश्चय हो जाता है कि आनन्द और शान्ति के लिए उसकी प्यास व्यर्थ नहीं है; क्योंकि वह पूर्णत्व से सुशोभित है।

इसलिए इस सत्य पर अच्छी तरह से चिन्तन करो कि बुद्धिमानी तुम्हारी मित्र है, ज्ञान सर्वोच्च कल्याणकारी है तथा ब्रह्म ही ज्ञान है—"**सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म।**" बार-बार श्रीमद्भगवद्गीता इस सार-तत्त्व को दोहराती है कि यदि तुम वास्तविक शान्ति और आनन्द पाना चाहते हो, यदि तुम अपनी साधना सफल बनाना चाहते हो, तब उसे बुद्धिमानी के साथ प्राप्त करो। अपनी मूर्खता को दूर करके समझदारी के पथ पर चलो। इसी में तुम्हारी सबसे बड़ी भलाई है, यही तुम्हारी सबसे महान् सहायक है, यह तुम्हारी सच्ची साथिन है जो सही दिशा में तुम्हारा मार्गदर्शन करती है—ज्ञान और विवेक।

शुष्क बुद्धिमत्ता नहीं, व्यर्थ का तर्क नहीं, अधिक तर्क से भेद-विभेद और खण्डन-मण्डन ही होता है। ऐसी बुद्धि नहीं चाहिए। यह तो उच्च विषय है, उच्च दशा है जिसके विषय में हम चर्चा कर रहे हैं। केवल शुष्क बुद्धिमानी और ज्ञान से जीवन भारस्वरूप हो जाता है। वह बन्धनकारक है। यह अहं को बढ़ाने वाला है, इसलिए एक विवेकी, जिज्ञासु इससे सावधानी से बच निकलता है। इसे वे झूठा वेदान्त कहते हैं। इसका अस्तित्व मस्तिष्क की उपज मात्र है। यह वास्तविक नहीं है। विवेकपूर्ण उच्च बुद्धिमानी नहीं है। अहं से सम्बद्ध यह निम्न ज्ञान है।

आध्यात्मिक ज्ञान और बुद्धि तथा शुष्क ज्ञान जो निष्फल, विभेदक, खण्डित करने वाला तथा तर्कबुद्धिपरक है, उसमें कैसे भेद किया जाये, इसका ज्ञान तुम्हें होना चाहिए। अहंकार की जननी सारी तर्कबुद्धिपरकता अज्ञान है। जिसकी ऐसी भावना है कि वह सब-कुछ जानता है, वह अपने-आपमें अज्ञानी

है। ऐसी आध्यात्मिकता ज्ञान के विपरीत है; क्योंकि वह तुम्हें स्वतन्त्र नहीं कर सकती, मुक्त नहीं कर सकती। यह तुम्हें अहंकार से बाँध कर अवनत करती है। अहंकार में फँस कर तुम बन्धन में पड़ते हो और तुम्हारा पतन होता है।

इसलिए निम्न स्तर का यह शुष्क ज्ञान रजस् से उत्पन्न हुआ है, सत्त्व से नहीं—तुम्हें दोनों के अन्तर को समझ कर सावधानी से जानना चाहिए कि उच्च आध्यात्मिक ज्ञान सदा सात्त्विक है, उसमें विनय है, पूरी समझदारी के बाद भी वह कुछ नहीं जानता। ऐसा व्यक्ति ही केवल ज्ञान और समझदारी के पथ पर तभी चल सकता है, जब सर्वोच्च सत्ता का आशीर्वाद उसे प्राप्त होगा। इसलिए वास्तविक बुद्धिमान् कभी अहंकार के वश में नहीं होता। यही बुद्धिमानी का प्रमाण है।

एक विद्वान् ने कहा है—"मैं जो-कुछ जानता हूँ, वह तो केवल समुद्र के किनारे की रेत के कुछ कण-भर हैं; पर वह जो मैं नहीं जानता, वह विशाल सागर के समान है।" इसलिए बुद्धिमान् बनो। ज्ञान के प्रकाश में चलो। अपनी विनय की रक्षा करो। यह जानते हुए कि सारा ज्ञान जो हमसे महान् है, उन सर्वोच्च सत्ता के माध्यम से ही हमें प्राप्त होता है। बुद्धिमानी से रह कर शान्ति की खोज करो। ज्ञान के प्रकाश में चल कर आनन्द और आशीर्वाद प्राप्त करो। वह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

ईश्वर करे, बुद्धिमानी सदा तुम्हारा साथ दे। ईश्वर करे, इसी प्रकार ज्ञान के साथ-साथ भक्ति तुम्हारी साधना में सदा तुम्हारा साथ दे। ज्ञान ही तुम्हारा सर्वोच्च भला करने वाला है। और बुद्धिमत्ता से निश्चित रूप से तुम जिसकी खोज में हो, तुम्हें उस आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। उस शान्ति की खोज सब मनुष्य कर रहे हैं। इसलिए अपने जीवन में विवेक और ज्ञान के महत्त्व को समझ कर धन्य हो जाओ।

१०

अहंकार—एक मूर्खता

ज्ञानस्वरूप परम तत्त्व के प्राप्त्यर्थ हम ज्ञानवान् बनने की अभिलाषा और बुद्धिमान् बनने की आवश्यकता की सम्भावना पर विचार कर रहे हैं। गुरु ही हमें ज्ञान-सम्पन्न बना कर प्रकाशित करने का कार्य करते हैं। मानव-जाति के लिए गुरुदेव का अन्तिम और परम सन्देश था—"जब व्यक्ति अपने-आपको ईश्वर में लीन कर देता है, तभी सुख-शान्ति मिलती है।" परम तत्त्व में विलीन होने से पहले उन्होंने यही अन्तिम वाक्य लिखा था।

इसलिए व्यक्ति का सर्वोच्च सौभाग्य और विवेक का लक्ष्य उसके अपने विलय और अहं को समाप्त करने में ही है। अहंकार ही सबसे बड़ी मूर्खता है। सबसे बड़ी महानता त्याग में और सबसे बड़ी हानि अहंकार में है। प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रश्न के उत्तर की पुनरावृत्ति करनी चाहिए—"मैं कब मुक्त होऊँगा? 'अहं' को कब समाप्त करूँगा?" मैं तभी मुक्त होऊँगा, जब मेरा अस्तित्व नहीं रहेगा।

अगणित धर्मग्रन्थों में प्रकाश और अन्धकार, दैवी और आसुरी शक्ति के मध्य के शाश्वत नाटक में अनेकों आसुरी-वृत्ति के मनुष्यों—जैसे रावण, महिषासुर, हिरण्यकशिपु आदि—को बड़े विकट अहंकारी के रूप में चित्रित किया गया है। वे सभी बड़े दम्भी थे, आसुरी दम्भी थे। उन्होंने ईश्वर का खण्डन किया। यहाँ तक कि उन्होंने ईश्वर को चुनौती भी दी। उनके सामने थोड़ा-सा भी दैवी प्रसंग आने पर वे कुपित हो जाते थे। सभी पुराण, महाभारत, रामायण ने इस रहस्यमय तथ्य को उद्घाटित किया है कि असुर बड़े विकट अहंकार के परिचायक रहे हैं।

महान् चैतन्य महाप्रभु ने एक विवेकी शिक्षक होने के कारण अहंकार से ऊपर उठने तथा उसके परित्याग की आवश्यकता पर बल दिया जो विनय के

द्वारा पाया जा सकता है। ईश्वर का वास सभी प्राणियों में समान रूप से है, ऐसा समझ कर सभी प्राणियों के प्रति श्रद्धा की भावना से अहंकारहीनता आती है। इसलिए उनके प्रति सेवा-भावना, सम्मान की भावना, पूज्य भावना रख कर ही उनमें ईश्वर के दर्शन से अहंकारहीनता आती है।

आध्यात्मिक जीवन और ईश्वर की आराधना के लिए अहंकार को मिटाने, नम्रता, धैर्य, क्षमा, सहिष्णुता आदि गुणों का सार उनके प्रसिद्ध श्लोक में इस प्रकार है—"**तृणादपि सुनिचेन तरोरपि सहिष्णुना, अमानिना मानदेन कीर्तनीया: सदा हरि:**" (घास के समान विनीत, वृक्षों से भी अधिक सहनशील, अहंभाव से शून्य, दूसरों के प्रति आदर भाव रखने के लिए व्यक्ति को हरि की महिमा का गान करना चाहिए)।

ये सभी एक ही तथ्य की ओर संकेत करते हैं—अहंकार क़रना मूर्खता है, समझदारी इसी में है कि अहं का त्याग करके उससे छुटकारा पा लें। "मैं कब मुक्त होऊँगा? 'मैं' का अस्तित्व कब समाप्त हो जायेगा। उसके बाद क्या 'मैं' मुक्त होऊँगा, जब अहं नहीं रहेगा।" इस प्रकार रहस्यवादियों और ऋषियों ने आध्यात्मिक जीवन के इस महान् सत्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि यह अहं ही अपने पूरे पहलुओं से, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, तात्त्विक जीवन के हर क्षेत्र में व्यष्टि आत्मा तथा समष्टि आत्मा के मध्य में बाधा डालता है। यह सबसे अलग रह कर व्यक्तिवादी भावना को जगाता है। सन्तों का कहना है कि यही अहं ईश्वर और मनुष्य के बीच, मानव और देवता के बीच, व्यष्टि आत्मा और समष्टि आत्मा के बीच बाधक है। यही रहस्यमय तत्त्व व्यक्ति के अन्दर यह भाव भर देता है कि 'मैं ही सारे विश्व का केन्द्र-बिन्दु हूँ, सारी वस्तुएँ मेरे लिए ही बनी हैं, मैं ही सबसे महत्त्वपूर्ण हूँ।'

इस अहं का पोषण करने के लिए, इसे सहारा देने के लिए, इसके लिए झगड़ने के लिए, इसे प्रकट करने के लिए, इसकी कामना के लिए, इसे प्रमाणित करने के लिए, इसकी अभिव्यक्ति के लिए व्यक्ति इसे हर क्षण सर्वोच्च अपेक्षा, आवश्यकता और स्थान देता है। इसलिए अहंकारी व्यक्ति के जीवन यापन के लिए अहंकार ही उसका मुख्य मौलिक मूल्य बन कर उसकी मनोवृत्ति

को प्रत्येक वस्तु के लिए उसी के अनुरूप बना देता है। उसके जीवन का दृष्टिकोण और आधार सब अहंकारमय हो जाता है। एक तरफ 'मैं' और दूसरी तरफ सारा संसार। सबसे हट कर 'मैं' ही मुख्य हो जाता है।

अहं से उत्पन्न, अहं पर आधारित, अहं से प्रेरित, अहं से उत्तेजित—यही व्यक्तिवादी चेतना है। इसे स्थायी बनाये रखने के लिए हम सदा तत्पर रहते हैं। हम उसका पोषण करते हैं। हम उसकी रक्षा करते हैं। जब तक व्यक्ति जागृत नहीं है, तब तक वह समझता है कि अहंकार जीवन का मुख्य विषय है। यही मूर्खता है। यह समझदारी नहीं है।

मेरा अहं मेरे और ईश्वर के मध्य, बन्धन और मोक्ष के मध्य बाधा है, इसका ज्ञान ही बुद्धिमत्ता है। अहंकार एक आवरण है; एक देहात्म बुद्धि, अहंकृति, आवरण है। ध्यान और ज्ञान के द्वारा वियोग को, इस मिथ्या आवरण को हटाना होगा। वेदान्त भी यही कहता है—मल, विक्षेप, आवरण—व्यक्ति के स्वभाव की मौलिक अपवित्रता, चंचलता, मन की दोलायमान स्थिति तथा आवरण पृथक् अहंभाव के रूप में अज्ञान का आवरण।

बन्धन में सत्य क्या है, मानवीय दशा में निहित वास्तविकता क्या है, इस 'क्या' का ज्ञान करना ही बुद्धिमत्ता है। फिर वे क्यों यह कहते हैं—''अज्ञान परम सुख है, तो बुद्धिमान् होना मूर्खता होता।'' हाँ! यदि अज्ञान सौभाग्यशाली होता, तो विवेकशील न होने में ही विवेक था। परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे अनुभव, हमारे कटु अनुभव तो यही हैं कि अज्ञान के कारण ही अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। अविद्या, अज्ञान ही अनन्त कष्ट और बन्धन, जन्म-मरण के चक्र में फँसने औरं तापत्रय का स्रोत हैं (मूल कारक हैं)।

बुद्ध भगवान् ने जो चार महान् सत्य प्रतिपादित किये थे, उनमें से पहला था कष्ट और दुःख का अस्तित्व । इसलिए हम देखते हैं कि व्यक्ति पृथ्वी पर जो-कुछ देखता है और जिसका अनुभव करता है, वह आनन्द नहीं है, वह उसके विपरीत और कुछ है। महान् जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं कि इस समग्र पृथ्वी पर जीवन दुःख और पीड़ा का सागर है : **''जन्म दुःखं जरा दुःखं जाया दुःखं पुनः पुनः; संसार सागरं दुःखं तस्मात् जाग्रत**

जाग्रत''(बार-बार जन्म दुःख, वृद्धावस्था का दुःख, पत्नी से दुःख तथा संसार-सागर में दुःख का अस्तित्व है, इसलिए जागो, जागो)।

संसार-सागर दुःखमय है, दुःखालय (दुःख का घर है)। इसलिए निश्चित रूप से यदि अज्ञान सौभाग्य होता, तो अवश्य ही बुद्धिमान् होना मूर्खता होता। वास्तव में हम यह देखते हैं कि अज्ञान के कारण ही बहुप्रजनन के दुःख, कष्ट, विषाद, उलझनें और मानवीय झगड़े, संघर्ष, दोष-दर्शन, असंगति उत्पन्न होती हैं। ये सब अहंकार की मूर्खता से ही उपजते हैं। इसलिए यदि किसी को परस्पर मेल-मिलाप से एक परिवार के रूप में, एक आध्यात्मिक परिवार के रूप में रहना है, तो समझदारी लाने की आवश्यकता है। इसलिए अहंकार को एक-दूसरे के बीच झगड़े और संघर्ष का कारण मत बनने दो।

सभी बराबर वालों में सदा एक प्रतिस्पर्धा की भावना होती है। सभी एक-दूसरे से कुछ और अच्छा पाने की लालसा रखते हैं। एक-दूसरे के प्रति असहन शक्ति, ईर्ष्या-द्वेष होते हैं। अहंकार के वश में होना मूर्खता है; इसलिए यह दुःख का कारण तथा सभी समस्याओं का मूल भी है। साधक और अन्वेषक होने के नाते, आध्यात्मिक जीवन में होने के नाते, योग के पथ में योगी होने के नाते हर किसी को इस सत्य के प्रति सजग होना चाहिए कि मेरी मुख्य समस्या मेरा अहंकार है।

अतः अपने देशवासियों के प्रति, अपने आध्यात्मिक जीवन-साथियों के प्रति मुझे सहनशक्ति और मित्रता के भाव का विकास करना चाहिए। उनके प्रति शत्रुता का भाव नहीं, मित्रता के भाव का विकास करना हैं। अपने अहंकार का नाश करके प्रसन्न होना चाहिए। मित्रता, करुणा, प्रेम के साथ करुणा, बुद्ध भगवान् के महान् आदेश थे और योग के प्रणेता महर्षि पतंजलि ने मैत्री और प्रेम के साथ मित्रता का भी समर्थन किया। उसी से सारी प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष की भावना अपने-आप समाप्त हो जायेगी। वह एक ऐसा नासूर है जो हमारे मन की शान्ति का नाश करके हमें अशान्त और उत्तेजित बना देता है।

इसलिए ईर्ष्या, जलन, प्रतिस्पर्धा करना मूर्खता है। हम सभी को सुख-शान्ति की खोज है। विपरीत चारित्रिक गुणों को अपना कर हम अपनी सुख-शान्ति का हनन कर रहे हैं। इसमें हमारी समझदारी नहीं है। इसे हमारी मूर्खता ही माना जायेगा। हम पाना कुछ चाहते हैं; पर हम करते इसके विपरीत हैं। यही मूर्खता है। यही अज्ञान है।

इसलिए अहंकार की मूर्खता, प्रतिस्पर्धा और प्रतिद्वन्द्विता, ईर्ष्या और जलन से छुटकारा पाने के लिए समन्वय, शान्ति, प्रेम, करुणा और मित्रता के साथ रहना ही बुद्धिमत्ता है। यही सबसे महान् अच्छाई है। सारे ऋषियों-मुनियों की यही शिक्षा है। भ्रातृ भाव, बन्धुत्व और सभी को एक ही परिवार का सदस्य मानने का अर्थ है सारी प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, जलन का अन्त कर देना। यह तभी सम्भव है, जब अहं को पहचान लिया जाये कि यह है किस कारण से? कारण समझ कर उसका त्याग कर देने पर व्यक्ति बुद्धिमान् बन जाता है। तुरन्त ही उसके जीवन में मैत्री, शान्ति और आनन्द की बाढ़ आ जायेगी। उस अवस्था से न केवल वह स्वयं शान्त प्रत्युत दूसरों को भी शान्ति देने वाला हो जाता है। जहाँ शान्ति है, वहीं सुख है। अहंभावशून्यता शान्ति है। इसलिए समझदारी के कारण ही शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होती है। समझदारी सबसे बड़ा गुण है।

अत: हमें ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए : ''ज्ञान हमको दीजिए—हमको सच्चा ज्ञान और समझदारी दीजिए।'' हमको ऐसा ज्ञान दीजिए जिससे हम मूर्खता के पथ पर नहीं, प्रत्युत समझदारी के पथ पर चल सकें। हमारी प्रार्थना का यही उद्देश्य है कि हम ज्ञान और समझदारी के पथ की खोज करके अपने जीवन को ज्ञानवान् बना कर प्रसन्न रख सकें। किसी भी व्यक्ति को अपनी, दूसरों की तथा सभी की भलाई के लिए कार्य करना चाहिए। यही आदर्श जीवन है।

हमें सभी स्तरों पर ज्ञानवान् होना चाहिए। हमें परस्पर सम्बन्धों में भी ज्ञानवान् होना चाहिए और दिन-प्रतिदिन के कार्यों में भी, जहाँ हमें अनेकों व्यक्तियों के सम्पर्क में आ कर कार्य करना होता है। हमें मनोवैज्ञानिक स्तर पर ज्ञानवान् होना चाहिए। अपने-आपको जान कर उचित समय पर उचित कार्य

करना चाहिए। हमें नैतिक स्तर पर भी ज्ञानवान् होना चाहिए। अहंकारी अनैतिक होता है, अनाचारी है वह। यह न केवल हमारा बल्कि दूसरों का भी नाश करने वाला है। हमें तात्त्विक और दार्शनिक स्तर पर भी ज्ञानवान् होना चाहिए, जो हमारे लिए सुनिश्चित शैली में घोषणा करता है कि अहंकार ही दुःख का सबसे बड़ा कारण है। प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा उसके अपने अहंकार के बन्धनों से बँधी है।

इसलिए सभी स्तरों पर हमें ज्ञानवान् होना चाहिए। प्रत्येक स्तर हमें अच्छे कार्य करने चाहिए। इस प्रकार हमें झगड़े, संघर्ष, मतभेद और असंगति को दूर करके प्रत्येक स्तर पर ज्ञान के साथ रह कर शान्ति और आनन्द के साथ रहना है।

चैतन्य महाप्रभु, गौरांग महाप्रभु ने जिस महान् कहावत को बड़ी चेतावनी देते हुए हमसे कहा है—"घास के तिनके से भी अधिक विनयी, वृक्ष से भी अधिक सहनशील, दूसरों का आदर करते हुए अहंकार से दूर रह कर व्यक्ति को हरि के गुणों का गान करना चाहिए।" वह एक ऐसे महान् भक्त जो दिव्य भाव, उदात्त आध्यात्मिक भावुकता से पूर्ण थे। पुनरपि आध्यात्मिक जीवन और आध्यात्मिक अभ्यास का निर्देश देते समय उन्होंने गहन दार्शनिक विवेकपूर्ण शब्दों का उच्चारण किया।

वे एक ज्ञानी शिक्षक थे। वे आत्माओं के महान् रोगहर थे। वे महान् दिव्य वैद्य थे। इसलिए हमें उनकी स्मृतियों का आदर करना चाहिए। गौरांग महाप्रभु को श्रद्धांजलि देते हुए उनके उपदेश को सदा अपने मन में रखें। हम अपने लिए इसका अर्थ समझ कर, इस पर चिन्तन करके, अहंकार रहित हो कर, उनकी शिक्षाओं का पालन करके आध्यात्मिक साधनाओं में लिप्त रहें। श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु को स्मरण करके उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने का हमारा यही सबसे उच्च ढंग हो सकता है। हम बुद्धिमान् बनें।

ईश्वर तुम सबके ऊपर कृपा की वर्षा करें! तुम सभी अच्छी तरह से इस महान् तथ्य पर विचार कर सको, जिस आध्यात्मिक जीवन को सन्तों, महात्माओं और हमारे गुरुदेव शिवानन्द जी ने भी हमें दिया कि 'अभिमान

त्यागो, सेवा करो।' गीता में कहा गया है—"**अमानित्वं अदम्भित्वम्** (विनयी, निरभिमानी बनो)।" ईश्वर करे, आपके उदात्त आध्यात्मिक जीवन तथा आपकी गम्भीर और सच्ची आध्यात्मिक साधना में गुरुदेव की आपके ऊपर कृपा तथा चैतन्य महाप्रभु (श्री कृष्ण चैतन्य) तथा अन्य सभी सन्तों, महात्माओं का सदा आपको श्रेष्ठ आशीर्वाद प्राप्त हो! ईश्वर और सन्तों के चरणों में यही मेरी प्रार्थना है!

११

तुम्हारी वास्तविक समस्या

परम आध्यात्मिक जीवन में दृढ़ता के साथ स्थापित होने के लिए जो उच्च आध्यात्मिक गुण तुम्हारे लिए अनिवार्य हैं तथा जो अवश्यम्भावी हैं, जिन्हें तुमने अपने जीवन के लिए चुन कर अपनाया है, ईश्वर करे, वह सर्वोच्च शाश्वत सत्य, जो निरन्तर परिवर्तित होने वाले नाम-रूपों के पीछे काम कर रहा है, उसकी दैवी कृपा, दृढ़ता के साथ उच्च आदर्शों और दैवी सिद्धान्तों पर तुम्हें स्थित करे। ईश्वर करे, उनकी दैवी कृपा परम दैवी गुणों, जैसे दैवी सम्पदा—शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा, समाधान (मन की शान्ति, इन्द्रियों का संयम, सहिष्णुता, प्रत्याहार, विश्वास, एकाग्रता) जैसे विवेक, वैराग्य और मुमुक्षुत्व (अच्छे-बुरे में भेद करना, अनासक्ति तथा मुक्ति पाने की अदम्य लालसा) जैसे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य के गुणों का विकास सफलतापूर्वक करने के लिए तुम्हारे अन्दर आवश्यक आन्तरिक शक्ति उत्पन्न कर दें।

ईश्वर करे, गुरुदेव की कृपा से तुम केवल उन उच्च दैवी गुणों में पूरी तरह से स्थापित होने में सफल हो सको; बल्कि उन गुणों को प्रभावपूर्ण रीति से अपने जीवन में, अपने दिन-प्रतिदिन के कार्यों में उसे मन, वचन और कर्म से अपनाने का प्रयास कर सको। गुरुदेव की कृपा से तुम्हारे भीतर वह आन्तरिक शक्ति और विवेक आ जायें जिनसे तुम उन सभी के साथ प्रभावशाली ढंग से उनका अनुकरण करके उन उच्च दैविक सिद्धान्तों और दैविक गुणों के सहारे अपने जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में अपने साथियों तथा अपने चारों ओर के अनेकों मनुष्यों के साथ सम्पर्क स्थापित कर सको।

आदर्शवाद एक बात है। लेकिन दिन-प्रतिदिन में, अपने दैनिक जीवन में उन आदर्शों को उतार पाने में, तुम्हारे होने और करने में तुम इसे किस प्रकार

अपने साथियों के साथ व्यवहार करते हों, उनसे कैसे सम्बन्ध स्थापित कर पाते हो, वह अलग बात है। वह व्यावहारिक आदर्शवाद हो जाता है, वह व्यवहार में दैवी सम्पदा हो जाता है। यह काम बहुत कठिन है; क्योंकि तुम्हें अनेकों विपरीत कारणों और बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इसे जीवन के उच्च सिद्धान्तों की अपेक्षा जीवन के निम्न सिद्धान्तों पर, तुम्हारे मन की दुर्जेय रुकावटों पर अटके रहने का भी सामना करना पड़ता है। यह इसलिए होता है कि कई बार मन की अपनी आसक्ति, उसकी सनक, उसकी कल्पना-शक्ति और उसका रुझान कुछ निम्न प्रकार से व्यक्त करने के रूप में हो गया हो। यह उन पर अटका रहता हो, यह उन्हें छोड़ना न चाहता हो।

मन में परिवर्तन की मौलिक अनिच्छा, कभी-कभी उसकी हठधर्मिता और कभी उसकी कठोरता से भी रहती है। इसलिए महान् ज्ञानी गम्भीरता के साथ सच्चा परिश्रम करके नये मन के निर्माण के लिए, मन को सही रास्ते पर लाने की आवश्यकता पर, उसमें पुनः प्राण डालने के लिए, उसे फिर से संस्कृत बनाने के लिए प्रयास पर बल देते हैं। इसे नव-जीवन प्रदान करना है। गुरुदेव एक गीत में एक महत्त्वपूर्ण मुहावरे का गान किया करते थे—"जीने के लिए मरो।" नये को स्थान देने के लिए अपने अन्तर में पुराने को मरना पड़ेगा। किसी को चिरस्थायी जीवन देने के लिए छोटे स्व को मारना होगा।

यह बड़ा कठिन काम है। तुम मन को दबा सकते हो। तुम उसका दमन कर सकते हो। तुम उस पर अंकुश लगा सकते हो। पर इसे मारने के लिए यह बड़ा कठिन काम है जिससे कि वह सदा के लिए अपने पुराने हठीले स्वभाव को छोड़ कर पूरी तरह से उसे नया बनाने की स्वीकृति दे दे। मन सदा मौलिक अज्ञानवश, मौलिक भ्रान्तिवश पीछे की ओर भागता है। हिन्दी में एक गीत की पंक्ति है : "**माया मरी न मन मरा**"—मैंने सोचा था कि मैंने अपने मन को मार दिया है; पर मैंने अब तक अपनी भ्रान्ति का अन्त नहीं किया है, मेरी माया ने मेरे आध्यात्मिक अज्ञान का अन्त नहीं किया है। इसलिए मुझे लगता है कि मन अभी भी वहीं है। लगता है कि वह मर गया है; पर यह अभी भी वहीं है,

क्योंकि यह अभी तक मेरी भ्रान्तियों और अज्ञान के रूप में मुझे भीतर से प्रेरित करता रहता है।

'अठारह यात्रा' (Eighteen Ities) वाले गीत में गुरुदेव कहते हैं—"केवल ब्रह्म का ही अस्तित्व सच्चा है।" और उसके तुरन्त बाद कहते हैं—"अमुक महाशय का अन-अस्तित्व मिथ्या है।" जब तक मनुष्य अपनी इस झूठी धारणा से ऊपर नहीं उठ जाता है कि 'मैं ही महत्त्वपूर्ण हूँ, मैं कुछ हूँ, मैं कोई हूँ', जब तक तुम इसे पूरी तरह से समझ कर आश्वस्त नहीं हो जाते कि अमुक महाशय तुम्हारे अन्तर में बसे अहं के कारण तुम्हारे छोटे 'स्व' की चेतना का रूप ही हैं। तुम्हारी अहं-चेतना स्पष्ट रूप से झूठी है, इसका कोई अस्तित्व नहीं है। तो दिव्य जीवन का आरम्भ करना बहुत कठिन है।

हम अपनी भ्रान्ति, अविद्या, अज्ञान के कारण ही अपने मन की इस धारणा से चिपके रहते हैं, जो दिव्य नहीं है। देहात्म-बुद्धि (शरीर को ही आत्मा समझ लेने की बुद्धि) ही झूठे अहंकार के कारण अपने को दूसरों से श्रेष्ठ और भिन्न मानती है। वह अपने-आपको ऐसा मानता है कि उसके समान उच्च चेतना वाला कोई और है ही नहीं। यह अभ्यास (अपने-आपको श्रेष्ठ मानता) है। शुद्ध चैतन्य तत्त्व के प्रति निकटता के कारण ही तुम्हारा यह स्वरूप है। जड़ तत्त्व से मिल कर वह तुम्हारी प्रकृति को सांसारिक बना देता है।

यही वह निकटता है जिसने अहंभाव के सिद्धान्त को बढ़ावा दिया है, जो इस समय सारे संसार में सबसे अधिक महत्त्व का विषय माना जा रहा है। यद्यपि यह है कुछ नहीं, यद्यपि यह तुम्हारे आवश्यक अन्धकार को, तुम्हारे प्रपंच को, तुम्हारे संसार के बन्धन को उत्पन्न करती है, तुम्हारी सबसे बड़ी समस्या और पीड़ा है, तथापि माया की ऐसी आश्चर्यजनक शक्ति है जो तुम्हें अपनी ओर सबसे आवश्यक वस्तु मान कर ध्यान देने के लिए विवश कर देती है। तुम्हें उसे बहुमूल्य मान कर उसे सँभाल कर रखने के लिए, सावधानी से उसकी सुरक्षा करने के लिए, उसका पालन करने के लिए विवश होना पड़ता है। सुबह से ले कर शाम तक, और कुछ न करके बस इसी की सँभाल करने की ही चिन्ता रहती है कि कहीं धक्का लग कर यह टूट न जाये। यह जानते हुए भी कि यह

हमारी सबसे बड़ी समस्या है, फिर भी इसको सदा जीवित रखने के लिए हम सब-कुछ करने के लिए तैयार रहते हैं। अवश्य ही यह हमारे लिए, हमारे आध्यात्मिक जीवन के लिए समस्या का कारण बनती है।

यदि तुम मनोवैज्ञानिक रूप से अहं-चेतना की खोज करके उसका विश्लेषण करोगे, उसे समझने का प्रयास करोगे, तो तुम्हें लगेगा कि मनोवैज्ञानिक रूप से भी—संघर्ष, लड़ाई, झगड़े, कटुता और घृणा सारे दुःखों का कारण भी यही है। पर अपने आन्तरिक व्यक्तित्व के गठन का ऐसा कटु विवेचनात्मक विश्लेषण कोई नहीं करना चाहेगा। क्योंकि उसके पीछे का सार भी अहंकार ही है। यह व्यक्तित्व का सहारा है। यह इस जीवन का स्तम्भ है। यदि स्तम्भ को निकाल दिया गया, तो सारा तम्बू ही गिर जायेगा। तुम्हें रहने के लिए कोई जगह ही नहीं मिलेगी।

इसीलिए इसकी सदा रक्षा की जाती रही है। इसे बहुत महत्त्व दिया जाता रहा है। फिर पुनरपि भी यह हमारा एक रोग है। अहं-वृत्ति हमारा बन्धन है। यह हमारा भव-रोग है (भौतिक अस्तित्व और आवागमन का रोग है)। यह ऐसा मुख्य रोग है जिसके कारण हम कष्ट उठा रहे हैं। हम सोचते हैं कि यह हमारी रक्षा सभी प्रकार के कष्टों से करेगा। हम इस पर भरोसा करते हैं। अपनी अखण्डता बनाये रखने के लिए हम इस पर निर्भर रहते हैं।

इस महान् कहावत को सभी जानते हैं—''मैं तभी मुक्त होऊँगा, जब 'मैं' का अन्त होगा।'' पर हम इस सच्चाई, इसकी तर्क-संगति और इसके महत्त्व को पहचान नहीं पाते। हम साधना में इसके केन्द्रीय पक्ष और अपने जीवन में इसके मूल्य को पहचान नहीं पाते। इसलिए हम जानते तो सब-कुछ हैं; पर हम रहते अज्ञान में हैं। हमें ज्ञान तो बहुत है; पर हम अज्ञान का सहारा लेते हैं। इसीलिए हम रोते और चिल्लाते हैं, हम झगड़ते और संघर्ष करते हैं। हम अपने-आप ही अपने पास तरह-तरह के रोगों, कुण्ठाओं, निराशाओं, भ्रमों, कष्ट और विषाद को बुलाते हैं और यह नहीं जान पाते कि इन्हें सरलता से दूर किया जा सकता है। यदि हमं अहं-चेतना को महत्त्व देना बन्द कर दें, तो हम इस सबसे ऊपर उठ

सकते हैं। 'यह अमुक व्यक्ति', जिसका कोई अस्तित्व नहीं है, वह हमारे अन्दर सत्य बन कर बैठ गया है।

यद्यपि यह सैकड़ों बार कहा जा चुका है, पुनरपि हम इस सत्य को नहीं पहचान पाते। इसीलिए श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं : **''दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया''**—वास्तव में 'मेरे पन' का यह दिव्य भ्रम प्रकृति के तीन गुणों से बना है, इसे पार कर पाना बड़ा कठिन है। यह समझना बड़ा कठिन है, यह इतना सूक्ष्म, भ्रमात्मक और इतना प्रभावशाली है कि इस सबको जानते हुए भी कोई उसे जान नहीं पाता है। व्यक्ति अज्ञान में जीता है। देखते हुए भी कोई उसे देख नहीं पाता है। व्यक्ति तब भी अन्धा बना रहता है। सुनते हुए भी कोई उसे वास्तव में समझ नहीं पाता है। जो भी कोई कुछ सुनता है, उस पर वह ध्यान ही नहीं देता है। इसलिए यद्यपि वह सुन रहा है, फिर भी वह उसे समझने में असफल रहता है कि उससे क्या कहा जा रहा है।

यह माया का सूक्ष्म कार्य-व्यापार है जो व्यक्तित्व की रक्षा करना चाहता है। परिसमाप्त करने के योग्य है, रक्षण के लिए नहीं। फिर भी मानव-समाज में बहुत बड़ी संख्या में व्यक्ति इसका रक्षण करना अपना सबसे मुख्य कर्तव्य मानते हैं।

निश्चित रूप से बहुत कम संख्या में कुछ ही ऐसे सौभाग्यशाली हैं जो इसे ठीक से पहचान पाते हैं कि हमारी मुख्य समस्या हम स्वयं हैं, हमारा सारा प्रपंच हमारे भीतर ही है, हमारा संसार हमारे भीतर ही है, हमारे बन्धन का कारण हम स्वयं ही हैं। कहीं बाहर से दूसरा कोई हमारी समस्या का कारण नहीं है। हमारी समस्या का कारण दूसरों की अपेक्षा हम स्वयं अधिक हैं। यदि तुम अपने-आपको परिवर्तित करके अपनी वास्तविक स्थिति को, अपनी दैवी पहचान को पाना चाहते हो, तो निश्चित रूप से इसका चिन्तन करना चाहिए, इसे ग्रहण करना चाहिए, इसे जान कर समझ लेना चाहिए। वास्तव में इस पर ही एक-न-एक दिन विचार करना चाहिए। उस समय तक भी हम सावधानी से अपनी समस्या का पोषण, रक्षण करते रहते हैं। हम सावधानी से अपने बन्धन को स्थायी बना रहे हैं, अपनी समस्या की रक्षा कर रहे हैं।

गम्भीरता से सोचो! वास्तविक सत्य की सच्चाई की पहचान करने के लिए स्थूल रूप से चिन्तन करके तुम वहाँ नहीं पहुँच सकते। इसका चिन्तन अकेले तुम्हें ही करना है। केवल गहन चिन्तन करने पर ही इस स्थिति के यथार्थ सत्य से तुम्हारा प्रत्यक्षीकरण हो सकता है कि तुम इस समय सीमित हो कर अपने-आपसे भिन्न एक मानव-चेतना में स्थापित हो, एक 'जैसे-तैसे' (so and so) की चेतना 'अमुक व्यक्ति' की चेतना, तुम्हारी इस समय की वास्तविक चेतना और प्रकृति को पहचानने के लिए गहन चिन्तन ही आवश्यक है, निरन्तर गहन चिन्तन की।

अत: हम दिव्य शक्ति का और पुण्यात्मा पूज्य गुरुदेव की आशीषों का आह्वान करते हैं कि वह हमें ऐसी शक्ति दें जिससे हम अपनी आन्तरिक चेतना की स्थिति के प्रति पूरी तरह से जागरूक रहें, वह हमें ऐसी शक्ति दें जिससे हम हर स्थिति में जैसी भी समस्या हो, उसका सामना कर सकें और अपनी, स्व की आत्मा में स्थापित हो सकें। अपने निम्न स्व से परे जा कर अपने-आपको ऊपर उठा कर उस क्षेत्र में, अपने देवत्व, अपनी वास्तविकता की भूमि को तैयार कर सकें।

केवल ऐसी स्थिति आने पर ही दिव्य जीवन का आरम्भ हो सकता है। तभी दिव्य जीवन सम्भव हो सकता है। अन्यथा माया हमें इस विचार से भ्रान्त करती रहेगी कि हमने पहले से ही अपनी चेतना को ऊपर उठा कर उच्च धरातल पर स्थापित किया हुआ है, जब कि उसने अहंभाव की चेतना के धरातल पर दृढ़ता के साथ स्थापित किया हुआ है। इसलिए माया के सूक्ष्म कार्य-संचालन को पहचान पाना बहुत कठिन है। जब तक कि हम निरन्तर अपने भीतर गहराई से सोच कर, गहन चिन्तन, तर्क और विवेचन करके उसके पीछे न पड़े रहें। इसीलिए वे कहते हैं कि तुम्हें दिन-प्रतिदिन सक्रिय रूप से पूर्ण उत्साह के साथ विवेक के अभ्यास को सदा अपना साथी बनाये रखना चाहिए। सबसे बड़ी आवश्यकता तत्पर विश्लेषण और आलोचनात्मक विवेचन के साथ भक्ति का विकास करने की है। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—तीनों को साथ-साथ रहना चाहिए।

हम भारत के एक महानतम आध्यात्मिक पुरुष के जन्मदिन का आयोजन करने वाले हैं जिनके भीतर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का प्रचुर भण्डार था। इसीलिए उनका नाम अमर हो गया। श्री कृष्ण चैतन्य गौरांग महाप्रभु बड़े परम भक्त थे। उनकी भक्ति बड़ी उच्च कोटि की थी। पर उसके साथ ही वे बड़े कट्टर विवेकी, तर्कसंगत और बड़े सूक्ष्म विश्लेषक व्यक्तित्व के थे। इन दोनों के सम्मिश्रण के कारण वे उच्च कोटि की वैराग्य भावना में स्थापित हो गये थे। यदि तुम उनके जीवन-वृत्त का अध्ययन करोगे, तो तुम उनके व्यक्तित्व को देख कर आश्चर्यचकित हो जाओगे। उनके अन्दर उच्च कोटि की भक्ति, उच्च कोटि का ज्ञान और उच्च कोटि के वैराग्य का संगम दिखायी देगा।

यह वह भक्त थे जो लगभग पाँच सौ वर्ष पहले के युग में रहते थे, जो गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के 'हरे कृष्ण आन्दोलन' के प्रेरणा-स्रोत थे। वास्तव में वह एक महान् आदर्श थे। उन्होंने पूर्ण रूप से अपने अहंकार की चेतना के मिथ्या भाव और उसकी शून्यता को पहचान लिया था। अविलम्ब ही वह अपनी पूरी महत्त्वाकांक्षाओं तथा बुद्धिसम्पन्न होने के लिए अपनी लालसा से छुटकारा पाने में समर्थ रहे। वे एक उच्च कोटि के ज्ञानी तथा बड़े प्रकाण्ड बुद्धिमान् थे। किन्तु अपनी महान् अन्तर्दृष्टि और अपने अन्तर में महान् आध्यात्मिक जागृति के कारण वह अपनी अभिलाषाओं का दमन करने, अपने पाण्डित्य और अपने अहं को विजित करने में समर्थ रहे। यद्यपि यह बड़ा कठिन कार्य था। यदि तुमने अपने अहं को जीत लिया है, तुमने अपने संसार को जीत लिया है, तुमने अपने प्रपंच को जीत लिया है, तुमने अपने बन्धनों से छुटकारा पा लिया है, तो समझो तुमने अपने-आपको मुक्त कर लिया है।

"मैं तब मुक्त हो जाऊँगा, 'मैं' पन से मुक्त हो जाऊँगा।" यह 'मैं' जो सबको इतना प्रिय है, जो सारे संसार में सबके लिए सबसे महत्त्व का है, जिसे व्यक्ति सरलता से जाने नहीं देना नहीं चाहता। यही वास्तव में तुम्हारी सारी समस्याओं को उत्पन्न करने वाला मूल है तथा यही दूसरों के लिए भी समस्याएँ पैदा करता है।

और इसी समस्या को हल करने के लिए ही सारे दार्शनिकों ने प्रयास किये हैं। सभी महान् आचार्यों—शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, आदि सारे महान् गुरुओं—गुरु नानक, जोरोस्टर, जीसेस, बुद्ध ने केवल हमें शिक्षा देने के लिए परिश्रम किया, जिससे कि हम इस निम्न 'मैं' के प्रभाव से ऊपर उठ सकें। इसे पकड़ पाना और निश्चित रूप से इसे इसके वास्तविक रूप में पहचान पाना बड़ा कठिन है। सारे दार्शनिकों का अस्तित्व केवल इस 'मैं' के इस वास्तविक रूप को दिखाने के लिए ही था। सारे दर्शन के वाद और विचारधाराओं का अस्तित्व केवल स्पष्ट रूप से इस सत्य को दिखाने के लिए है कि यह 'मैं' ही तुम्हारी वास्तविक समस्या है। यह सरल काम नहीं है। सारे सूक्ष्म तत्त्वों से भी सूक्ष्म तत्त्व की पहचान करने के लिए तुम्हें वास्तविक दार्शनिक, वास्तविक योगी, वास्तविक वैरागी और वास्तविक विवेकी होना पड़ेगा।

ईश्वर की तुम्हारे ऊपर कृपा हो! ईश्वर का आशीर्वाद आवश्यक है। गुरु की कृपा आवश्यक है तथा घटनाओं का सामना करने के लिए हमारी इच्छा-शक्ति भी अत्यन्त आवश्यक है। जब हम देखें कि सत्य को पहचानने की इच्छा-शक्ति की आवश्यकता है, उस समय वह तीसरी मुख्य आवश्यकता होगी। ईश्वर करे, तुम इन सभी तीनों को सम्पन्न करने में सफल हो जाओ!

१२

पूर्ण रूप से आत्म–विश्लेषण का काल

हिन्दू धर्म के पंचांग के अनुसार जैसे-जैसे हम पवित्र वर्ष को पीछे छोड़ कर मांगलिक नूतन वर्ष के श्रीगणेश की ओर आगे बढ़ रहे हैं, हमें इन चौदह दिनों के महत्त्व पर विचार करना चाहिए। यह समय आत्म-विश्लेषण और आत्म-संशोधन करके सिंहावलोकन करने का है। वास्तव में इस काल का आरम्भ पूरे वर्ष के लिए कर्मठ रह कर आध्यात्मिक साधना करने का है। हमें प्रतिदिन आत्म-विश्लेषण और आत्म-संशोधन करना चाहिए।

इस प्रकार आत्म-विवेचन और आत्म-संशोधन की इस प्रक्रिया से तुम धीरे-धीरे स्थिर गति से, वर्तमान स्थिति से आगे बढ़ कर ऐसी स्थिति में आ जाओगे जो उत्तरोत्तर प्रगति की ओर ले जाने वाली है, जो सदा आध्यात्मिकता और साधना की ओर जाने वाली पहले से अच्छी स्थिति है। आध्यात्मिक, धार्मिक, दैवी रूप में आने के कारण दूसरों के प्रति तुम्हारा विचार, भाव, मनोवृत्ति, दूसरों के प्रति तुम्हारा व्यवहार तथा तुम्हारे चारों ओर फैले संसार के प्रति तुम्हारा सम्बन्ध पहले की अपेक्षा सुधरा हुआ हो जायेगा।

इस प्रकार आने वाले वर्ष का यह काल स्थिर गति से आध्यात्मिक और दैवी गुणों को सुधारने और उसमें विकास करने के लिए है। वह न केवल आत्मपरक, भावनात्मक, विचारात्मक और मनोवृत्तियों के आधार पर होगा, प्रत्युत बाह्य जीवन में तुम्हारे चारों ओर के सारे सम्बन्धों के क्षेत्र में तथा दूसरों के साथ तुम्हारे अपने सम्बन्धों के क्षेत्र में भी होगा, जो उस समय तुम्हारे साथ समान रूप से उपस्थित थे। इसलिए तुम्हारी स्थिति से तुम्हारे बाहरी जीवन के क्षेत्र में तथा साथ-ही-साथ तुम्हारे अपने आध्यात्मिक जीवन और उसके विकास में तुम्हें रचनात्मक लाभ का सच्चा साधन मिल जायेगा।

जब तुम दूसरों के साथ बात करते हुए वाक्‌देवी सरस्वती द्वारा दी गयी अपनी शक्ति का प्रयोग करते हो, तब तुम्हें पूर्ण वर्ष के बारह मास के काल में सदा सजग हो कर दृढ़ संकल्प के साथ दूसरों से उसका सकारात्मक प्रयोग करना चाहिए। क्या तुम अपनी वाणी का प्रयोग लोकोत्तर विषयों के लिए उच्च और उदात्त ढंग से कर रहे हो, अथवा तुम उसे अत्यन्त छोटे और निम्न स्तर का बना रहे हो? क्या उसका उपयोग अच्छी प्रकार से समझ कर उसका मूल्यांकन करके, उसके प्रति श्रद्धा रख कर उसका प्रयोग सकारात्मक और प्रेरणादायक रूप में करते हो? क्या दूसरे के व्यक्तित्व को सम्मान देते हुए उसका प्रयोग किया जा रहा है ?

तुम्हारा अपना व्यक्तित्व है। तुम्हारे व्यक्तित्व की अपनी विशेषता है। ठीक जैसा तुम्हारा अपना व्यक्तित्व है, वैसा ही तुम्हारे साथी साधक का भी है। एक महाराजा का अपना व्यक्तित्व है। एक बच्चे का अपना व्यक्तित्व है। वैसा ही एक कुली का, जो तुम्हारा सामान उठाता है । और हरिजन, जो तुम्हारे शौचगृह की सफाई करता है, वह अपनी पत्नी का पति है और अपने बच्चों का पिता है। उसकी पत्नी भी अपने पति के प्रति बड़ी विनयी होगी। यह उसकी गृहस्थी है। उसके अपने संसार में उसका अपना महत्त्व होगा।

हमें इसको गहराई के साथ विरल आध्यात्मिक सहानुभूति के रूप में समझ लेना चाहिए। आध्यात्मिक होने के नाते हम किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व की महत्ता की उपेक्षा नहीं कर सकते; क्योंकि अपनी अहेतुकी कृपावश परमात्मा ने हमारे आध्यात्मिक उत्थान हेतु उनसे हमारा सम्पर्क कराया है। हमें इस बात को ध्यान में रखते हुए अपनी वाणी की पवित्र शक्ति का उपयोग अच्छे शब्दों का उच्चारण करके करना चाहिए। ऐसे शब्द बोले जायें, जिनसे दूसरों को सम्मान मिले; ऐसे शब्द बोलें, जिन्हें सुन कर सब प्रसन्न हों।

गुरुदेव ने कहा है—"कम बोलो। धीरे बोलो। मधुर बोलो।" हमारे लिए गुरुदेव का यह आदेश है। हम उनके आश्रम में रह रहे हैं तथा हमसे अपेक्षा की जाती है कि वह जिस पथ पर चले हैं, हम भी उसी पथ पर चलें। उन्होंने कभी किसी को अपमानसूचक शब्द नहीं कहे। उन्होंने कभी किसी पर व्यंग के छींटे

नहीं कसे और न ही कभी किसी को चोट पहुचाने वाले कटु शब्द कहे। उनकी वाणी में कभी व्यंगोक्ति नहीं होती थी। वह हँसते-हँसाते रहते थे; पर कोई व्यंग या कटु शब्द नहीं बोलते थे। उन्होंने अपने दैवी प्रकाशयुक्त स्वभाव को प्रकट करने के लिए ही सदा अपनी वाणी का उपयोग किया। यदि तुम दिव्य नहीं हुए तथा प्रभासित नहीं हुए हो, तो भी जागृत और आध्यात्मिक हो गये हो। इसलिए तुम्हें अपने जागृत, प्रकाशित स्वभाव को प्रकट करने के लिए ही अपनी वाणी का उपयोग करना चाहिए, जिससे दूसरों को सम्मान का भाव और प्रसन्नता की प्राप्ति हो जाए, अपमान अथवा व्याकुलता नहीं।

हमारे धर्मग्रन्थ तथा हमारे पूर्वजों ने कितने प्रकार से बार-बार हमसे कहा है कि ईश्वर सारे संसार में समाये हुए हैं। यह संसार ईश्वर का ही प्रकट रूप है। अपनी सृष्टि के माध्यम से वह ही सब जगह प्रकाशित हो रहे हैं। पवित्र पुस्तक गीता के अनुसार एक-न-एक दिन संसार की **'वासुदेव सर्वं इति'** (यह सब ईश्वर ही है) के रूप में अनुभूति होनी चाहिए; यही आदर्श है; यही लक्ष्य है। इसलिए जब तक तुम उस आदर्श, उस लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने का प्रयास नहीं करते, तब तक तुम कैसे आशा कर सकते हो कि ईश्वर प्रत्येक वस्तु में तुम्हारे लिए उद्‌घाटित होंगे? उस सत्य को ग्रहण करने के लिए, अपने को तैयार करने के लिए जब तक तुम विशेष साधना नहीं करते, तुम कैसे आशा कर सकते हो कि यह सत्य एक-न-एक दिन तुम्हारे सामने अपने-आप प्रकट होगा?

आन्तरिक रूप से हम सभी ईश्वर का अंश हैं तथा हर कोई अपनी विशेषता के कारण वह समझता है कि वह भी कुछ है। इसलिए हमें आध्यात्मिक अनुकम्पा के आधार पर उनके प्रति संवेदना से इसे पहचानना चाहिए और उदात्त भाव से प्रत्येक प्राणी के व्यक्तित्व का सम्मान करना चाहिए। हम सोच कैसे सकते हैं कि उस व्यक्ति में कोई विशेषता नहीं है या वह शून्य है और उससे भी गिरा हुआ, और यहाँ तक कि हम उसका ईश्वर के साथ सामीप्य भी नकार दें। इससे हमें ही हानि पहुँचेगी। हम कैसे सोच सकते हैं कि

हम इतने पवित्र, धार्मिक, पावन और शुद्ध हैं, कहीं उसकी निकटता हमें अपवित्र न कर दे।

हम अपराधी की उपेक्षा करते हैं, वैश्या की उपेक्षा करते हैं। हम उनकी उपेक्षा करते हैं जिन्हें हम पापी और अधर्मी समझते हैं। पर उस पापी के अन्तर में भी सर्वान्तर्यामी (सबके अन्दर से शासन करने वाले) अनुपस्थित नहीं हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से उसमें केवल सर्वान्तर्यामी को देखना है, पापी को नहीं। कानून या समाज की दृष्टि में पापी, पापी होगा। पर यह तुम्हारा काम नहीं है कि तुम उसे पापी समझो। तुम न तो कानून हो, न पुलिस हो, न समाज हो। तुम साधक हो, तुम साधक हो। तुम्हें आध्यात्मिक भावुकता की राह का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। हर किसी को सम्मान देते हुए, उनमें दैवत्व के दर्शन करके उनके प्रति आदर और श्रद्धा का व्यवहार करना चाहिए।

इसलिए क्यों न इन चौदह दिनों के इस काल को ऐसा बना दें जिसमें अन्त के पाँच दिन हिन्दू धर्म के पंचांग के अनुसार हों तथा नव-वर्ष के पहले नौ दिन निरन्तर अपनी व्यक्तिगत के हों। आन्तरिक साधना के इस काल को सारे वर्ष के लिए अपने आन्तरिक विश्लेषण तथा निष्पक्ष हो कर आत्म-परीक्षा की तैयारी में लगा दें।

मन किसी भी दूषित (असार) वस्तु के पक्ष में तर्क दे सकता है, वह किसी भी दुर्गन्धयुक्त वस्तु के पक्ष में तर्क दे सकता है। वह कह सकता है कि 'नहीं, नहीं, यह तो सुगन्ध से भरा हुआ है। यह अत्यन्त आवश्यक है।' मन की वृत्ति सदा अनुचित को उचित करने में लगी रहती है। वह पाप को पुण्य बनाने में लगा रहता है। क्योंकि व्यक्ति सारे संसार में दूसरों की अपेक्षा अपने-आपको सबसे अधिक प्यार करता है।

परन्तु साधक में ऐसी पक्षपात की भावना, ऐसी प्रेम की, ऐसा आत्म-औचित्य नहीं होना चाहिए। साधना, आध्यात्मिक जीवन और प्रकाश के आभ्यन्तर भुवन में महानतम बाधा है। आत्म-औचित्य सबसे बड़ा संकट है। यदि तुम जागृत नहीं हो, सावधान नहीं हो, ग्रहणशील नहीं हो, तो आत्म-औचित्य बहुत आनन्ददायक, सुखमय और प्रसन्नता देने वाला लगेगा।

यह बिलकुल ऐसा है जैसे तुम्हें नींद आ रही है, तब तुम आराम से रेल की पटरी पर सो जाओ।

जब विवेक सक्रिय नहीं है। जब तुम्हारा साधकपन जागृत और सक्रिय नहीं है, तब तुम सुखद निद्रा में लीन रहते हो। हर चीज के लिए, जो भी आध्यात्मिक नहीं है, दैवी नहीं है, उसके पक्ष में तर्क देते रहो। तुम्हारे ऐसे व्यवहार की आलोचना नहीं करनी चाहिए, तुम्हारे ऊपर दया करनी चाहिए कि तुम उसे अनाध्यात्मिक और आसुरी समझ ही नहीं रहे हो। तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारे पक्षपातपूर्ण आत्मानुमोदन से और आत्म-प्रेम से पूरी तरह से ऐसा अन्धा हो चुका है कि तुम आसुरी को, आसुरी समझ ही नहीं रहे हो।

इसलिए हमें उपनिषद् की प्रेरणा का आह्वान करके कहना चाहिए: **''उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत''**— उठो, जागो, विद्वानों का वरण कर बोध को प्राप्त करो तथा अपने भीतर किसी भी प्रकार के त्याग के लिए तैयार रहो, जिससे तुम्हारा आन्तरिक बोध स्पष्ट रूप से पहचाना जा सके, जिससे तुम स्वयं को पूर्णत: देख सको।

इस प्रकार कम-से-कम आगामी चौदह दिन का काल ऐसा बना लिया जाये, जिससे पहले से मन में भरी हुई गलत धारणाओं से मुक्ति मिल जाये। अपने-आपसे कहो—''मैं एक नये जन्म की पीड़ा में से गुजर रहा हूँ, मुझे फिर से जन्म ले लेना है। इसलिए मुझे संकल्प करना है कि कोई भी प्रयास उसके लिए बड़ा नहीं है, मैं सच्चाई का सामना करने के लिए समस्त आत्म-पक्षपात को दूर भगा दूँगा। चाहे वह कितना ही असम्मानसूचक क्यों न हो, चाहे कितना ही लज्जाजनक क्यों न हो। मैं उसका सामना करूँगा और यह मेरे जीवन का मोड होगा।''

हम सोचते हैं कि हम उन्नति के पथ पर ऊपर-ही-ऊपर जा रहे हैं, जब कि हम तो अधोमुख हो कर और नीच-ही-नीचे जा रहे हैं। क्या इससे भी बड़ी विपत्ति कभी कहीं हो सकती है? हम हिम्मत क्यों नहीं कर सकते? हमें तो उन्नति के पथ पर सदा आगे-ही-आगे बढ़ते जाना है। दिव्यता का विकास ही आध्यात्मिक जीवन है। तुम ऐसे ही बनो। यह मेरी कामना है। कारागार में बन्द

अपराधियों के लिए ऊपर उठना सम्भव हो सकता है, तो सभी सन्तों और साधकों की उपस्थिति में क्या आध्यात्मिकता से भरे हुए वातावरण में ऐसा सम्भव नहीं हो सकता? हाँ! यह सम्भव है। इसलिए ऐसा ही करो। अभी ही करो।

१३

ईश्वर की कृपा पाने के लिए हमारा प्रयास

प्रात:कालीन सत्संग में इस आध्यात्मिक सम्मिलन के सर्वशक्तिमान् और श्रेष्ठतम ईश्वर की परम दिव्य कृपा और गुरुदेव का प्रेमपूर्ण आशीर्वाद दोनों ही मिल कर, हमारे जीवन में प्रकट हो कर हमें आशीर्वाद दे रहे हैं। इसलिए उनके प्रति उपकृत हो कर, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करके हमें प्रसन्न रहना चाहिए कि हमें इस प्रकार का अवसर प्राप्त हो रहा है।

हमारे जीवन में प्रचुर मात्रा में ऐसे कितने ही सकारात्मक पक्ष हैं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसे जान कर हमारा मन गौरवान्वित और उन्नत हो जाता है। हमारा मन उत्साह की भावना, सकारात्मकता और आशावादिता से भर उठता है। हम आत्म-विश्वास और दृढ़-निश्चय से भर उठते हैं— "जब यह सारे बल मुझे सबसे ऊपर उठाने के लिए तत्पर हैं, तो क्यों नहीं मुझे भी उसी दिशा में और अधिक बल का प्रयोग आत्म-प्रयास के रूप में, साधना के रूप में करना चाहिए। इन दूसरी शक्तियों को सहयोग देने के लिए मुझे तो केवल इतना ही करना है। जो मेरी भलाई, मेरे सर्वोच्च लाभ के लिए इतना सब कर रहे हैं, मुझे भी पीछे रह कर शान्त नहीं बैठना है। मुझे भी सक्रिय रह कर ऊर्ध्वगामी हो कर ईश्वर की ओर जाने की गति को, अपनी मुक्ति पाने की गति को अपने जीवन में प्रकट होते हुए देखना चाहिए।

इस बीसवीं शताब्दी में, कलियुग में बहुत विपरीत परिस्थितियाँ होंगी। समय बहुत विपरीत होगा। हमारे चारों ओर जितना अधिक विपरीत और अनाध्यात्मिक वातावरण, अधिकाधिक आसुरी प्रवृत्तियाँ होंगी, उतनी ही अधिक स्थितियाँ और परिस्थितियाँ महानता के साथ कृपा भी प्रकट करने में सफल होंगी। जितनी अधिक कृपा का प्रकटीकरण होगा, उतनी अधिक

गुरु-कृपा की अभिव्यक्ति होगी। इसकी व्याख्या करना सरल है, इसे समझना कठिन नहीं है।

इस कलियुग में जीवात्मा जब संसार में पूरी तरह से खो जायेगा, तब और कौन-सी महान् आवश्यकता होगी ? कलियुग एक महत्त्वपूर्ण अवस्था है, एक गम्भीर स्थिति है। और यह जानने पर भी कि एक जीवात्मा कलि के पाश में बँध गया है, जिसमें अधोगति, विकृति और अविद्या माया अपनी चरम सीमा पर है। तब ईश्वर अविलम्ब समझ जाते हैं कि इससे पहले कभी महान् कृपा बरसाने की इतनी आवश्यकता नहीं पड़ी थी। इसलिए जो वास्तव में उस कृपा को पाने की आकांक्षा रखते हैं, तथा इस विपरीत युग में जहाँ उनके चारों ओर ऐसी परिस्थितियाँ हैं जो उन्हें उनके लक्ष्य से भटका रही हैं, उनके लिए शीघ्र ही वे कृपा की वर्षा कर देते हैं।

कल सन्ध्याकाल में हम एक नये मन्दिर के उद्घाटन-समारोह के आयोजन में सम्मिलित हुए। उसके बाद हम इस प्रश्न पर विचार कर रहे थे कि किसलिए सारे संसार में नये मन्दिर, सत्संग भवन, आध्यात्मिक साहित्य, दृश्य-श्रव्य कैसेट्स, सी.डी., आध्यात्मिक मनुष्यों के भाषण देने के रूप में पहले से अधिक अब दिव्य क्रियाओं के रूप में, इस सब प्रकार की सकारात्मक कृपा प्रमाणित हो रही है। इस उमड़ती हुई लहर की व्याख्या कैसे की जाये? मैं कहता हूँ, इसकी व्याख्या करना सरल है।

यदि कहीं आग लग जाती है, वहाँ आग बुझाने के इंजन आनन-फानन में पहुँच जाते हैं। यदि कहीं झगड़ा हो जाता है, पुलिस अपनी पूरी टुकड़ी के साथ शीघ्र ही पहुँच जाती है। यदि कहीं दुर्घटना हो जाये, शीघ्र ही अस्पताल के आकस्मिक संकट का पूरा दल एम्बुलेंस के साथ बुला लिया जाता है।

परिवार में माँ बच्चे की सुविधा, स्वास्थ्य, प्रसन्नता और उसकी कुशलता के लिए उदारता के साथ ध्यान रखती है तथा पिता उसके लिए अच्छे शिक्षण हेतु धन सुलभ कराता है। कभी-कभी बच्चे की आवश्यकता के अनुसार विशेष शिक्षा-प्रबन्ध करता है। बच्चों के उज्ज्वल भविष्य और उनके लाभ के लिए माता-पिता कुछ भी करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते। यदि परिवार में

औरों की अपेक्षा एक बच्चा दुर्बल तथा अस्वस्थ है, तो माता-पिता उसकी ओर विशेष ध्यान देते हैं। वे अपने सभी बच्चों को प्यार करते हैं; परन्तु वे उसी बच्चे पर अपना ध्यान, सहानुभूति, शक्ति और सहायता अधिक मात्रा में केन्द्रित करते हैं जिसको इसकी आवश्यकता है।

जब अपूर्ण सांसारिक माता-पिता अपने बच्चों के लिए इतना अधिक कर सकते हैं, तो परम पुरुष जिसकी कृपा पाने के लिए दिन-रात उनकी प्रशंसा में स्तोत्र का पाठ और सम्बोधन करते हैं कि 'आप हमारी माँ हैं, हमारे पिता हैं, आप ही हमारे सम्बन्धी हैं और आप ही हमारे मित्र और शुभचिन्तक हैं, आप ही हमारे धन और ज्ञान हैं। आप ही मेरे सर्वस्व हैं।' जब वह एक व्यक्ति आपके लिए इतने महत्त्व का है, कितने असीम रूप से महत्त्व का है, वह स्वयं आपके कुशलक्षेम के लिए कितना अधिक चिन्तित होगा।

इसमें अधिक आश्चर्य नहीं कि वह और कुछ नहीं केवल पूर्ण कृपा हैं, एक असीम देवी दैवी कृपा जो सभी के लिए है। जो सच्चाई के साथ अन्वेषण करने वाली आत्माएँ हैं और विशेषकर साधकों, भक्तों, योगियों और ध्यानधर्ताओं के लिए है, क्योंकि उन्होंने ही उसे अपना सर्वस्व मान लिया है, हर प्रकार से अपना सब-कुछ मान लिया है, अपना सर्वोच्च लक्ष्य मान लिया है।

उन अल्पसंख्यक अन्वेषक आत्माओं की ओर उनका ध्यान विशेष रूप से जाता है जो केवल उन्हीं को, बस उन्हीं को चाहते हैं। उन्हीं की खोज, उन तक पहुँचने का प्रयास और उन्हें प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपने-आपको उनके चरणों में समर्पित कर दिया है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वह विशेष कृपा इसीलिए उनकी ओर प्रवृत्त हो गयी है।

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि कृपा का आधिक्य हम सबके ऊपर इसलिए है कि हमारे कुशलक्षेम के लिए पूर्ण रूप से गहराई के साथ श्रेष्ठतम कल्याण के लिए वह पूर्ण रूप से हमारे हैं। उन्हें पूरी तरह से हमारी चिन्ता, पूरा प्रेम, पूरा लगाव है। हमारे लिए जो-कुछ भी अशुभ है, वह उस सबको दूर करने वाले हैं। इसीलिए वे कहते हैं कि जब ऐसा महत्त्वपूर्ण समय है, इतनी अधिक

मात्रा में कृपा की वर्षा हो रही है जो हमारे लिए सबसे हितकर है, तो हम भी अपने प्रयत्न को इसके साथ जोड़ दें। इसलिए आगे बढ़ कर कृपा के सहारे, गुरु-कृपा के आशीर्वाद से अपनी सबसे सर्वोच्च भलाई और सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लें। यही हमें करना चाहिए।

अब हम हिन्दू धर्म के नव-वर्ष के शुभारम्भ की इस सौभाग्यशाली घड़ी में हैं। नये शुभारम्भ के लिए अवश्य ही नव-वर्ष का श्रीगणेश बड़ा ही उपयुक्त, अनुकूल और हितकर होगा। हम भी यथार्थ में ऐसा ही कर सकते हैं। हम भी एक नया शुभारम्भ करके अधिक-से-अधिक आदर्श जीवन व्यतीत करें।

आदर्श जीवन व्यतीत करते-करते वह अकस्मात् अनुभव करने लगेगा कि उसके सारे प्रयासों के पीछे ईश्वर की और गुरु की कृपा की असीम शक्ति कार्य कर रही है। दोनों की कृपा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। गुरु-कृपा ही ईश्वर की कृपा है जो गुरु के माध्यम से प्रकट हो रही है। इसलिए उन्हें प्रसन्न करने के लिए सच्चे मन से किया गया आत्म-प्रयास हमें परम सौभाग्यशाली बना देगा।

१४

मानव-मस्तिष्क में आदर्शवाद का जन्म

वन्दनीय दिव्य सन्निधान, देश-काल की परिधि में प्रक्षिप्त इस दृष्टिगोचर, क्षणभंगुर, परिवर्तनशील जगत् के नाम-रूप में निहित नित्य वर्तमान सर्वव्यापक केवल सत्ता आप हैं। अर्चनीय प्रभु, आप ही वह हैं जो अन्दर-बाहर सब कहीं हैं, आप ही वह हैं जो हमारे शरीर के अन्तरतम की कोशिकाओं से अन्त:सम्बन्धित हैं। आप ही वह हैं जो हमारी आँखों की आँख हैं, हमारे कानों के कान हैं, हमारे श्वास के श्वास हैं, हमारे हृदय के हृदय हैं, हमारे मन का मन हैं, हमारे प्राणों के प्राण हैं, हमारी आत्मा की सच्ची आत्मा हैं। आप ही हमारे अन्तर में और हमारे अपने मन की आन्तरिक शाश्वत सत्ता के रूप में निवसित हैं। ओ हमारे स्वामी, कृपया हमें आशीर्वाद दीजिए कि हम सदा आपकी उपस्थिति के प्रति जागरूक रहें। बस, हम आपसे यही माँगते हैं कि हम कभी उस जागरूकता से वंचित न होने पायें। हम आपकी यशस्वी, पावन, पवित्र, दैविक उपस्थिति में होते हुए अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उसी में गतिशील हैं, उसी में हमारी सत्ता है तथा आपके द्वारा ही हमारा जीवन संचालित है।

ईश्वर करे, समस्त संसार में शान्ति का साम्राज्य हो! ईश्वर करे, व्यक्ति व्यक्ति के मध्य एकता का भाव हो, समुदायों और राष्ट्रों के मध्य समन्वय हो! ईश्वर करे, पूर्व से ले कर पश्चिम तक, उत्तर से ले कर दक्षिण तक शान्ति की स्थापना हो तथा सारे ब्रह्माण्ड में शान्ति हो! कृपया इस दिन के लिए हमें ऐसा मार्गदर्शन दीजिए जिससे हम अपने-आपको आपके चरणों में समर्पित होने के योग्य बना लें! ईश्वर करे, इस दिन हम आदर्श कर्म करते हुए उदात्त भावनाओं और वास्तविक विवेक, सद्भाव, पवित्र विचार के साथ जीवन व्यतीत करें!

परम प्रिय पूजनीय गुरुदेव, अपने प्रातःकाल में अपने पावन आश्रम के इस पवित्र समाधि हाल में हम सभी को फिर से यहाँ एकत्रित करा कर अपनी आध्यात्मिक उपस्थिति की कृपा और आशीर्वाद पाने का अधिकारी बनाया है। कृपया हम सभी को आशीर्वाद दीजिए कि हमारी आँखें सदा खुली रहें जिससे हम अन्धकार में भी प्रकाश के दर्शन कर सकें! कृपया हमारे आध्यात्मिक अन्धेपन को दूर कर दीजिए, हमें दिव्य दृष्टि प्रदान कीजिए!

कृपया उन्हें आशीर्वाद दीजिए कि पिछले नौ दिनों में उन्होंने जो-कुछ सुना है, उसे अच्छी तरह से ग्रहण कर सकें। यही कारण है कि हमारे पूर्वजों ने आदेश दिया था कि नव-वर्ष के आरम्भिक नौ दिनों को निरन्तर ईश्वर का गुणगान, उनकी पूजा और प्रार्थनाओं में व्यतीत करना चाहिए। नौ अंक पूर्णांक है, उसके पश्चात् कोई और अंक नहीं आता, उसके पश्चात् तो अंकों को जोड़ कर ही संख्या-विस्तार होता है। सारा प्रस्तार और सम्मिश्रण इस रहस्यमय नौ अंक का संयोग ही है। इन नौ दिनों में हमारे पूर्वजों ने बड़ी बुद्धिमत्ता से निश्चय किया था कि हमें इस काल में उपवास, प्रार्थना, पूजा, ईश्वर का गुणगान, दिव्य नाम का गान और धर्मशास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने हमें सुस्पष्ट दिशा-निर्देश दिये थे जिससे हमारा पूरा वर्ष श्रद्धा के साथ कर्मठ हो कर धर्मशास्त्रों का पठन और आराधना से भरा हुआ रहे , जिससे धर्मशास्त्रों में दी गयी शिक्षाओं को अपने जीवन में उतार कर हम उस पथ पर चल सकें, जिस ज्ञान को हमारे पूर्वजों ने हमें दिया था। इस प्रक्रिया से सारे वातावरण में भक्ति, आराधना, प्रार्थनाओं से भरी हवाएँ वातावरण में छा जायेंगी जिससे वह सभी जनों के लिए यहाँ तथा यहाँ के बाद भी सर्वोच्च कल्याण में सहायक हो सकती हैं।

मानव-समुदाय के लिए हमारे पूर्वजों के मन में कितना उच्चकोटि का प्रेम था। उन्हें अपने वंशजों का कितना ध्यान था। उन्हीं के सार्वजनीन प्रेम और कृपा के माध्यम से ही उन्होंने नौ दिनों की ऐसी सुन्दर व्यवस्था की जिससे कि हम समझ सकें कि पूरे वर्ष-भर किस प्रकार का जीवन व्यतीत करने से, हमारे आध्यात्मिक विकास के पथ पर महान् चरण पड़ने से दिव्य पूर्णता, प्रबोधन

तथा पूर्ण मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है। उन्होंने हमें यह महान् विवेक दिया है, हमारे प्रति उनकी सर्वोच्च कल्याण की भावना के लिए हम इस ऋण को किस प्रकार उतार सकते हैं तथा हम कैसे कृतज्ञता ज्ञापित कर सकते हैं?

प्रकाशित आत्माओ! यह जो नव-वर्ष आपको आशीर्वादस्वरूप मिला है, इसे आप किस प्रकार व्यतीत करेंगे, क्या कभी आपने इस पर सोचा है? क्या आपने इस पर चिन्तन किया है? क्या आपने इसके अर्थ को गहराई से समझने तथा इसके महत्त्व को जानने का प्रयास किया है? क्या आपने अपने लिए तथा अपने जीवन के लिए इसके सन्देश को समझने का प्रयास किया है? तुम्हें सन्देश दे कर यह तुमसे क्या चाहता है? और क्या तुम भारत के उन अन्य कोटि-कोटि व्यक्तियों के समान हो जो बस स्वभाववश परम्परागत रूप से यन्त्रवत अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं अथवा तुमने विशेष रूप से इसे समझने का प्रयास किया है; क्योंकि तुम एक विशेष वर्ग के व्यक्ति हो जिन्होंने अपने लिए आध्यात्मिक पथ का चयन किया है, जिन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति के रूप में माना है?

आप सब साधक हैं, आप अन्वेषक हैं। आपसे अपेक्षा की जाती है कि आप विचारशील हों, विवेकपूर्ण हों, आध्यात्मिक जागरूकता, आध्यात्मिक विवेक, जिज्ञासा (ज्ञान पाने के लिए गहरी भूख) से युक्त हों। इसलिए योग्यतानुसार जिज्ञासु, मुमुक्षु, साधक बनने की विशेष स्थिति में, आध्यात्मिक व्यक्ति होने के नाते समझने का प्रयास करो कि वसन्त नवरात्र किस सन्देश को तुम तक पहुँचाना चाहती है। नहीं तो ऐसा होगा कि यह पर्व आया और चला गया और तुम वहीं-के-वहीं रहोगे, जहाँ तुम पहले थे। उन महान् संस्कारवान् पूर्वजों ने आराधना के जो अवसर निर्धारित किये थे, उनका यह उद्देश्य नहीं था। उन्होंने इनकी स्थापना भिन्न उद्देश्य के लिए की थी, वह उद्देश्य था कि वे समय-समय पर आपको जागृत कर सकें, प्रेरित कर सकें, सही दिशा-निर्देश दे सकें। जिस दिशा में तुम्हें जाना है, उस ओर जाने के लिए मार्गदर्शन दे सकें। हमारे प्रकाश-प्राप्त पूर्वजों ने इस सब तथा अन्य अनेकों कारणों से ऐसे महान् अवसरों को स्थापित किया था।

हम संसार तथा आज के मानव-समुदाय की अवस्था पर विलाप करते हैं। हम मनुष्यों के चरित्र में आये हुए पतन के लिए पश्चात्ताप करते हैं। परन्तु हम कदाचित् ही इस ओर ध्यान देते हैं कि समस्या कैसे उपजी है? इसका कारण क्या है जिस पर हम विलाप कर रहे हैं, जिस पर हम पश्चात्ताप कर रहे हैं ? हम कभी-कभी ही जानने का प्रयास करते हैं कि ऐसा कैसे हुए और कैसे इसे सुधारा जा सकता है। हम यदा-कदा ही उसका कारण जानना चाहते हैं।

दृश्य और श्रव्य वस्तुओं की चर्चा ही गपशप है। पर गम्भीर रूप से विचार-विमर्श और विवेचन से ही उधर ध्यान जाता है कि किसलिए ऐसा घटित हो रहा है? उसका क्या कारण है? उन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है। और उनका समकालीन व्यक्ति होने के नाते, इस समय के समाज में उन कारणों को दूर करने के लिए मैं क्या कर सकता हूँ? मेरा सहयोग क्या हो सकता है? यही विचार-विमर्श है। यह गपशप नहीं है।

और गुरुदेव ने हमें एक मूल स्वर दिया है—"जैसा मनुष्य सोचता है, वह वैसा ही बन जाता है।" हमारे विचार ही कार्य-रूप में परिणत होते हैं। मन में उठे विचारों बाह्यं प्रकटीकरण ही क्रिया है। व्यक्ति पहले कुछ सोचता है, फिर उसका विचार उसे जिस प्रकार प्रेरित करता है, वही काम वह करता है। सारे संसार में मानवीय चरित्र, मानवीय आचार-व्यवहार, मानवीय क्रिया-कलापों का स्रोत विचार है। विचार कुंजी है, मनुष्य जीवन और सदाचार का मूल है, क्रिया-प्रतिक्रिया, अन्योन्य प्रतिक्रिया का स्रोत भी यही विचार है। यदि विचारों पर ठीक से ध्यान दिया जाये, तो उसके परिणाम पर भी उचित ध्यान दिया जा सकेगा।

तुम किसी एक विचार का बीज बोते हो और उसकी क्रिया-रूप में फसल काटते हो। यदि तुम लगातार एक ही प्रकार की क्रिया करते रहोगे, उससे तुम्हारी वैसी ही आदत बन जायेगी। आदतों की पुनरावृत्ति से तुम्हारे चरित्र का निर्माण होता है। वर्तमान चरित्र पर तुम्हारा भविष्य निर्भर करता है। इस प्रकार मूल में विचार है; जो हम सोचते हैं, वही विचार ही क्रिया में परिणत होता है

और क्रिया आदत में, आदत चरित्र में परिणत होती है, और चरित्र से तुम्हारा भविष्य बनता है।

इसलिए क्या करना चाहिए? हम बस अभी ही वसन्त नवरात्र का आयोजन कर सम्पन्न कर चुके हैं, जिसमें नौ दिनों पर्यन्त मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र जी की अवतार-लीला का अध्ययन करते रहे हैं। हम सबने भगवान् रामचन्द्र जी के जन्म का आयोजन किया। क्या तुम उसके महत्त्व को नहीं समझते? स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि जिस भक्तिभाव से हमने उस धर्मग्रन्थ का पारायण किया है, उसमें निहित भाव यही है कि भगवान् राम का आदर्श हमारे हृदय में जागृत हो। सारे दुःख, संघर्ष, झगड़े, अनैतिकता, अपवित्रता और आसुरी चरित्र जो इस समय सारे संसार में छाया हुआ है, उस रोग का निवारण बस यही है। यही एक निवारण है, केवल एक ही सच्चा उपचार। केवल एक ही सच्ची कुंजी है।

मानव-मन का निरन्तर नवीनीकरण करते रहना चाहिए। सदा आदर्श विचारों की संरचना करते रहनी चाहिए। मनुष्य के मन-मस्तिष्क के अन्तर में छिपी उदात्त भावना, उदात्त प्रेरणा की रचना होते रहनी चाहिए। केवल तभी मानव-संसार, मानव-आचरण, मानव-चरित्र में परिवर्तन आ पायेगा। इसके लोकोत्तर आयामों से नया हो कर मानवीय चरित्र नये उत्कृष्ट आयाम को प्राप्त करेगा। मनुष्य को जैसा दिव्य और ईश्वर का बालक होना चाहिए वैसा हो जायेगा। जब तक हम अपने विचारों में क्रान्ति नहीं लायेंगे, जब तक हमारे मन में हर दिन, हर क्षण आदर्शवाद पैदा नहीं होता, तब तक ऐसा होना असम्भव है।

आदर्शवाद को प्रतिदिन मानव-हृदय में उदित होने दो। आदर्शवाद को बार-बार मानव में उदित होने दो। यही एक उपाय है। यदि मानव-मन, मानव-स्वभाव, मानव-मस्तिष्क में इस मौलिक प्रयास का आरम्भ नहीं हो जाता, तो और सारे प्रयास असफल होने के लिए बाध्य हैं। अधम और दुष्ट विचार, का परित्याग करके उत्कृष्ट विचार, महान् विचार, आदर्श भाव और शुद्ध प्रेरणा को लाने के लिए विवेकशील प्रोत्साहन और दृढ़ता के साथ प्रयास

आवश्यक है। यही वास्तव में इसकी कुंजी है। मानव-मन में अहर्निश क्षण-क्षण में आदर्श भाव उदित हों!

यदि भीतर से मनुष्य आदर्श है, यदि मन उदात्त विचारों और आदर्शों पर विचार करता है, यदि मन आदर्श भावनाओं का सहारा लेता है, यदि सारे कार्यों के पीछे यह सभी अभिप्राय काम करते हैं, तब मनुष्य एक सच्चे मानव के रूप में व्यवहार करेगा। वह धरती पर देव सदृश जीना आरम्भ कर देगा। तब मानव और मानव-समुदाय के संसार में एक नये युग का आरम्भ हो जायेगा। उसके पीछे यही आधार है कि मनुष्य कैसे सोचता है तथा किस प्रकार के भाव और मनोभाव उसके मन में उपजते हैं। यदि मानव-मन में आदर्शवाद को जीवित रखा जाये, तो यह सर्वोत्कृष्ट, महानतम, पवित्रतम गुण होगा।

जब आदर्शवाद लुप्त हो जाता है, तो मानव-संसार में अँधेरा छा जाता है। मानव का आन्तरिक मन अँधेरा यन्त्र हो जाता है, अधम और भयानक विचारों को निर्मित करने वाला शिल्पगृह बन जाता है, तब मनुष्य धरती पर नरक का निर्माण करता है। वह स्वयं अपने पतन और अपने विनाश का कारण बन जाता है। इसलिए हर प्रकार की सावधानी की कुंजी यही है। ध्यान दें, मन किस प्रकार कार्य कर रहा है, यह कैसे व्यवहार करता है, किस प्रकार के विचार पनप रहे हैं तथा उन विचारों का स्वरूप कैसा है। आदर्शवाद ही अकेला इन विचारों को उदात्त, उत्तम और आदर्श बना सकता है। केवल इसी प्रकार के साधनों से मनुष्य सौभाग्यशाली और आनन्दमय बन सकता है। और सारे समाधान तो केवल समाधान मात्र हैं, Patiching symptams । मूल कारण को जड़ से उखाड़ने वाले (लक्षण) नहीं हैं।

इसलिए मानव-मन में प्रतिदिन आदर्शवाद का जन्म होने दो। मर्यादापुरुषोत्तम राम मानव-रूप में एक आदर्श मानव थे, वह आदर्श चरित्र वाले थे। उनकी जयन्ती मनाने का यही महत्त्व और सन्देश है कि इस पक्ष पर गहराई से विचार करो कि अब तक तुमने क्या सुना है। यह जान लो कि इसका सन्देश यही है कि आदर्शवाद को मन में प्रतिदिन प्रबलता के साथ सुखद रूप में, नये रूप में उपजने दो। मानव-चरित्र, मानव-संघर्ष और मानव की प्रसन्नता

का यही एकमात्र उपचार है। मानव के गलत विचारों से ही ऐसी स्थिति उपजी है। मानवीय त्रुटि को दूर करने के लिए किसी प्रकार का परिवर्तन लाने के लिए तुम कुछ नहीं कर रहे हो।

आपको बताया गया है। समाधान के संकेत आपको दिये गये हैं। अब आप पर निर्भर करता है : **''यथेच्छसि तथा कुरु''**— यह तुम पर निर्भर करता है कि उस समाधान का लाभ उठाना चाहते हो या नहीं। यदि तुम उससे अच्छा संसार देखना चाहते हो, अच्छा मानव-समाज, संसार का अच्छा भविष्य देखना चाहते हो, तो बस एक ही रास्ता है : आदर्शवाद, उदात्त, उच्च, लोकोत्तर आदर्शवाद, नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शवाद, मानवीय आदर्शवाद, मानव-मन में हर दिन, हर क्षण यह उपजना चाहिए।

हमारा मानवीय विचार ही मानवीय भविष्य की कुंजी है। श्रोतव्य, मन्तव्य, निदिध्यासितव्य—यही सुना जाना चाहिए, इसी पर चिन्तन होना चाहिए, इसी पर मनन करना चाहिए।

१५

बल और विनय

भगवान् हनुमान् की पूजा करना एक आदर्श है जो उनके प्रति ध्यानाकर्षण और श्रद्धा की अपेक्षा करता है। वर्ष में एक दिन ही नहीं प्रत्युत पूजा सदा अपेक्षित है। कर्तव्य और परम सत्ता के प्रति समर्पित शक्ति और पराक्रम के रूप में हनुमान् जी की पूजा वस्तुत: परम सत्य की पूजा है। हनुमान् जी की पूजा का अभिप्राय है विनय सहित शक्ति की पूजा—कर्तव्य-परायणता और भक्तिभाव के साथ शक्ति और पराक्रम की पूजा।

हनुमान् जी के महान् जीवन से यदि भक्ति, समर्पण, विनय और कर्तव्य-परायणता निकाल दें, तो उसका जीवन शून्य है। इन आदर्शों के लिए तुम्हारी स्वीकृति ही हनुमत्पूजा है। हनुमान् जी की पूजा से पता चलता है कि तुम इन आदर्शों को अच्छा समझते हो। हनुमान् जी की पूजा उनके आदर्श के प्रति श्रद्धा, आत्म-समर्पण, सेवा, भक्ति, समर्पण और पूर्ण रूप से व्यक्तित्वहीन नि:स्वार्थपरकता का प्रतीक है। हनुमान् जी की पूजा सभी के लिए आदर्श है जो अपने जीवन में पूर्ण रूप से परिवर्तन लाना चाहते हैं तथा अपने भीतर हिम्मत और बल लाना चाहते हैं। उसके साथ-ही-साथ सेवा की भावना, पूर्ण रूप से भक्तिभाव और पूर्ण रूप से समर्पण की भावना और उनके चरणों में श्रद्धा रख कर अपने-आपको उनका शिष्य, उनका अनुगामी और समर्पित सेवक बनाना चाहते हैं, उसमें वह सारे गुण आ जायेंगे।

यदि तुम अपने-आपको ईश्वर का समर्पित सेवक, ईश्वर का भक्त, ईश्वर का अनुगामी मानते हो, तो तुम्हें सदा अपने सामने रामायण के अतुलनीय व्यक्तित्व और उनके देदीप्यमान प्रकाशित आदर्शों को अपने सामने रखना चाहिए। उनमें इतनी शक्ति थी कि वह पर्वत को उठा सकते थे, उनमें इतनी शक्ति थी कि वह सागर को लाँघ सकते थे। पर इतना होते हुए भी वह

अपने-आपको एक सामान्य व्यक्ति के रूप में दर्शाते रहे—एक समर्पित भक्तिभावपूर्ण व्यक्तित्व जो दिव्य सत्ता के सेवक थे। उन्हें सदा इसी रूप में चित्रित किया जाता रहा है कि वह दिव्य शक्ति के चरणों में सिर झुका कर करबद्ध खड़े हैं।

दिव्य सत्ता की विद्यमानता में सदा विद्यमान—यही हनुमान् जी का स्थान है, यही उनका व्रत है, यही उनका व्यक्तित्व है। उनके प्रति समर्पण, भक्ति, विनय और पूर्ण रूप से नि:स्वार्थ भाव के कारण ही वह ऐसा कर पाते हैं। यही कारण है कि वह सारे भक्तों में ईश्वर के प्रिय हो गये हैं। इन उदात्त गुणों के कारण अपने-आपको मिटा देने वाले हनुमान् जी भारतीय संस्कृति में एक चिरस्थायी आदर्श स्वरूप हो गये हैं। वह भारत के कोटि-कोटि मनुष्यों के इष्टदेव हैं तथा रामायण के माध्यम से वाल्मीकि जी ने सारे मानवों की दृष्टि में उन्हें अमर, सदा विद्यमान बना दिया है।

ईश्वर करे, तुम्हारे ऊपर परम पिता परमेश्वर की कृपा हो जिससे तुम इस आदर्श का अनुकरण करके, इस आदर्श को पूर्ण करने के लिए अपने जीवन में सच्चाई से अपने कार्य में लिप्त होने की शक्ति अर्जित कर सको। सूक्ष्म आध्यात्मिक अहं (साधक का अभिमान) ही यदि तुम्हारे मन में आदर्श बन कर तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन के लिए, तुम्हारी साधना के लिए और जो भी नि:स्वार्थ भाव की सेवा में लिप्त हो, उसके लिए एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करेगा। तो यह संकट और आशंका है कि इस आदर्श को चरितार्थ होने में वह बाधक हो जायेगा। तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन के इन तीनों पक्षों को सुन्दर बनाने के लिए, उसे उन्नत बनाने के लिए और उसे परिवर्तित करने के लिए हनुमान् जी की पूजा का विशेष महत्त्व हो जाता है। उसका विशेष अर्थ होता है और उससे सार्वजनीन आदर्श का निर्माण होता है।

गंगा के किनारे इस प्रात:काल में इस छोटी-सी वेदी पर हमने जिस प्रकार बाह्य रूप से पूजा की है ईश्वर और गुरु की कृपा से, इस आदर्श को सामने रख कर इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने की योग्यता प्राप्त करें!

१६

रूपान्तरण की कुंजी

अविवेकी, विवेकी और साधक—इन शब्दों से तीन प्रकार के व्यक्तियों की जानकारी प्राप्त होती है। अविवेकी की पहचान है कि वह विवेचन नहीं कर सकता। उसके जीवन में उसे सीखने के लिए जितने पाठ ईश्वर उसके सामने रखते हैं, वह उनसे कुछ शिक्षा प्राप्त नहीं करता; क्योंकि वह अज्ञानी है और अज्ञान से ही अविवेक आता है।

दूसरी ओर विवेकी की यह पहचान है कि वह सदा विवेचन करता है। वह अपने जीवन के अनुभवों से शिक्षा लेता है; पर उस पर उसका प्रभाव कुछ नहीं होता है। उसके सारे पाठ और सारी शिक्षा केवल उसके मस्तिष्क में जमा होती रहती हैं। उसका उसे कोई फल नहीं मिलता है। क्योंकि वह उनका पालन नहीं करता। वह उन शिक्षाओं का कोई शक्तिशाली प्रभाव अपने ऊपर पड़ने नहीं देना चाहता।

पर एक सच्चे साधक (आध्यात्मिक आकांक्षी) की पहचान ऐसी है कि वह विवेकी भी है तथा साथ-ही-साथ जीवन में होने वाले सारे अनुभवों के प्रभावों से शिक्षा ले कर उन्हें अपने जीवन में उतारता चलता है। सच्चे साधक के जीवन में कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता। प्रत्येक घटना उसमें परिवर्तन लाती है, उसकी भलाई के लिए एक रूपान्तरण लाती है। एक सच्चे साधक और अन्वेषक के लिए सब-कुछ विशेष रूप से एक रचनात्मक सकारात्मक प्रतिक्रिया के रूप में घटित होता है। उसके बाद भी वह फिर कभी पहले जैसा व्यवहार नहीं करता। वह परिवर्तित हो जाता है। उसका चरित्र, उसका स्वभाव, उसका जीवन जो उसके पास पहले नहीं था, उन अनुभवों के उस पर प्रभाव से निश्चित रूप से, नये पन से पुष्ट और विकसित हो जाता है।

दो सौ वर्ष पहले समुराई नाम के एक बड़े प्रसिद्ध जापानी सैनिक के घर में एक पौत्री ने जन्म लिया। वह महान् योद्धा था। वह साहसी और वीर था। और बालिका अनिन्द्य सुन्दरी थी। बड़ी हो कर वह कुमारी असामान्य रूप से सुन्दर हो गयी। परिवार के सदस्यों ने सोचा कि इसके लिए यही उपयुक्त है कि इसे देश की साम्राज्ञी को उनकी दासी के रूप में दे दिया जाये।

उस समय जापान पर राजाओं द्वारा शासन होता था। इसलिए वे उसे महल में ले गये। साम्राज्ञी तथा उनका सारा राजपरिवार भी उस लड़की के सौन्दर्य को देख कर अचम्भित थे। इसीलिए वह शीघ्र ही साम्राज्ञी की प्रिया बन कर उसके दैनिक कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गयी।

दुर्भाग्यवश कुछ ही वर्षों में जब वह बालिका किशोरी ही थी, पूर्णतया स्वस्थ होने पर भी साम्राज्ञी का अकस्मात् ही देहावसान हो गया। साम्राज्ञी के एकाएक जाने से उस नवयुवती बालिका के जीवन को गहरा धक्का लगा। उसने उसके अन्तर्मन को हिला कर रख दिया। उसी कारण अनायास पूरी तरह से उसकी मनोवृत्ति में परिवर्तन आ गया। उसने कहा—''यह कैसा जीवन है? सब-कुछ व्यर्थ है। सब-कुछ समाप्त हो जाता है। कहीं स्थैर्य नहीं है। किसी पर भरोसा नहीं कर सकते। कुछ भी सत्य नहीं है। सब-कुछ क्षणभंगुर है, क्षणिक है, नष्ट होने के लिए है और समाप्त हो जाने के लिए है।''

वह बड़ी बुद्धिमान् थी। उसका यह आघात इतना गहरा था कि उसे जीवन के प्रति कोई रुचि नहीं रह गयी। इसलिए उसी समय उसने निर्णय कर लिया—''मुझे ध्यान और ज्ञानोदय का पथ ग्रहण करना चाहिए।'' उसने अन्वेषक और ध्यानधर्ता के रूप में मठवासिनी ज़ेन बनने का निर्णय ले लिया।

सभी को आश्चर्य हुआ। उसका सारा परिवार दुःखी हो कर कोलाहल करने लगा। उन्होंने कहा—''असम्भव! यह हमारी पारिवारिक परम्पराओं के प्रतिकूल है। तुम इसके लिए बहुत छोटी हो। तुम इसके लिए तैयार नहीं हो। तुम्हें विवाह करना चाहिए। और उससे भी अधिक ईश्वर ने तुम्हें इतना अधिक सौन्दर्य दिया है, तुम्हारे लिए मठवासिनी बनना असम्भव है। वह उनके सामने इस कठोर प्रतिज्ञा पर विवाह के लिए झुक गयी कि तीन बच्चों की माँ बनने के

बाद विवाह की शर्त का अन्त हो जायेगा। उसके बाद वह मठवासिनी हो जायेगी। किसी को विश्वास नहीं था कि ऐसा सम्भव हो सकेगा। इसलिए आसानी से उन्होंने स्वीकृति दे दी तथा उसके विवाह के लिए एक सम्बन्ध स्थापित कर दिया। उसने अपने होने वाले पति तथा सास-श्वसुर से भी वही बात दोहरा दी कि केवल इसी स्थिति में वह विवाह के लिए स्वीकृति देगी।

सभी की सहमति से विवाह हो गया। कर्तव्यपरायणता के साथ उसने अपने पति, सास-श्वसुर सबकी बड़ी सेवा की। सारे पारिवारिक दायित्वों को उसने प्रसन्नता के साथ निभाया। उसने अपने परिवार का ध्यान पूरी तरह से सामान्य रूप से रखा। पर दूसरी ओर ज़ेन-साहित्य का अध्ययन करने के लिए भी वह आतुर रहती थी, साथ-ही-साथ ध्यान का अभ्यास भी किया करती थी। तब भी वह पूरी तरह से एक दक्ष गृहिणी थी, एक अच्छी पत्नी, एक अच्छी आज्ञाकारिणी बहू थी और अपने माता-पिता की अच्छी पुत्री थी।

उसके बाद जब तीसरे बच्चे ने जन्म लिया, कुछ माह तक उसका पालन-पोषण करने के बाद उसने एकाएक घोषणा कर दी की उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी है। अब इसके बाद वह और अधिक पारिवारिक जीवन व्यतीत नहीं करेगी। अब से वह ज़ेन-मठवासिनी हो जायेगी। अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कराने के लिए, सारे विरोधों के बाद भी उसने अपना सिर मुँडवा कर सबको चुप कर दिया।

उसके बाद उसने अपना सब-कुछ छोड़ दिया। उसने मठवासिनियों के कपड़े पहन लिये और ज़ेन गुरु की खोज में भटकने लगी। वह एक बड़े नगर में गयी जहाँ महान् गुरु रहते थे। उसने उनसे शिष्या बनने के लिए प्रार्थना की। लेकिन उसके सौन्दर्य के कारण उन्होंने अस्वीकृति दे दी। वह दूसरे गुरु के पास गयी। वहाँ भी उसका सौन्दर्य आड़े आया। उन्होंने भी मना कर दिया।

तब उसने निर्णय किया कि इस बाधा को भी दूर कर देना चाहिए। इसलिए एक दिन अपने कमरे के एकान्त में उसने आग जलायी। उसने लोहे की शलाका को गरम किया और अपने मुख को दाग-दाग कर कुरूप बना लिया। उसे कोई पहचान भी नहीं सकता था। इस प्रकार सदा के लिए अपने सौन्दर्य से उसने

विदा ले ली। उसके बाद वह दूसरे गुरु के पास गयी जिन्होंने उसे शिष्या के रूप में शीघ्र ही स्वीकार कर लिया। जल्दी ही वह आश्चर्यजनक रूप से ज़ेन-मार्ग के जीवन की एक पहुँची हुई गम्भीर और सच्ची आध्यात्मिक साधिका हो गयी।

उसका यह दृढ़ निश्चय था। इस सबके पीछे बस यही एक कारण था जिसके प्रति उसने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की, जब उसे अपनी संरक्षिका का मृत्यु का सामना करना पड़ा। उस महल में साम्राज्ञी की सेवा करने के लिए सैकड़ों सेवक रहे होंगे। कुछ ने केवल आँसू बहा कर कुछ समय के लिए दुःख मना लिया होगा और बाद में अपने-आपको ठीक कर लिया होगा। हो सकता है, दूसरे विचारवान् रहे होंगे। उन्होंने कुछ समय सोच-विचार करके श्मशान-वैराग्य के आधार पर कुछ समय तक आभूषण और अच्छे कपड़े पहनना बन्द कर दिया होगा। पर शीघ्र ही वह भी फिर से सामान्य अवस्था पर आ गये होंगे। अपनी पुरानी स्थिति में जैसा कि वे कहते हैं, अपने पुराने ढर्रे पर आ गये होंगे। परन्तु यहाँ तो केवल इतना ही नहीं कि वह अविवेकी नहीं थी; केवल विवेकी हो, ऐसा भी नहीं; वह व्यावहारिक थी, विवेकशील थी जिसने तत्काल उस विवेक को निज जीवन में चरितार्थ किया। पर वह तो ऐसी है जो व्यावहारिक है, जिसके पास विवेक है और तत्परता से उसने उसे अपने जीवन पर लागू कर लिया।

ठीक इसी प्रकार की स्थिति राजकुमार सिद्धार्थ की थी। वह एक उत्तम अधिकारी (साधक की विशेष विशेषताओं से सम्पन्न) थे। एक व्यावहारिक आध्यात्मिक अन्वेषक। वह जीवन के अनुभवों के प्रति सकारात्मक और रचनात्मक रूप से प्रतिक्रिया करने के लिए परिपक्व हो चुके थे। उसी ने उसको पहले त्यागी और उसके बाद तपस्वी, उसके बाद योगी, फिर ज्ञानी और प्रकाशित गुरु, एक उत्तम तत्त्ववेत्ता (जो ईश्वर को पूरी तरह से जानता है) और अन्ततः विश्व-गुरु बना दिया। सारे विश्व को उनके ज्ञान का लाभ प्राप्त हुआ। उत्तम अधिकारी होने के नाते उन्होंने जीवन के अनुभवों को अज्ञानावस्था में अविवेकी और अविचारी बन कर आँखें बन्द करके नहीं देखा था। न ही वे केवल विचारक की भाँति एक विवेकी बन कर चले।

अपनी बुद्धिमानी से हम प्रश्न-परिप्रश्न पूछ कर किसी निर्णय पर पहुँच कर ज्ञान प्राप्त करते हैं। पर उसके बाद उस ज्ञान का हम कुछ नहीं करते। बस, केवल ज्ञान के भार को ही ढोते रहते हैं। जीवन उस ज्ञान से प्रभावित नहीं होता। पर राजकुमार सिद्धार्थ एक व्यावहारिक आध्यात्मिक अन्वेषक था। जीवन के जिन साधारण अनुभवों को करोड़ों व्यक्ति साधारण रूप से ले कर उसे ठण्ढे बस्ते में डाल देते हैं, सिद्धार्थ को उन अनुभवों के प्रति प्रतिक्रिया करने के लिए उसने विवश कर दिया। हर किसी ने वृद्धावस्था देखी होगी, सभी ने रोगियों को देखा होगा, सभी ने मृत्यु होते हुए देखी होगी। वे देखते हैं, पर उन्हें कुछ नहीं होता।

यह तभी होता है, जब धातु पारस पत्थर से छू जाता है और वह सोना बन जाता है। यदि मिट्टी का ढेला, या लकड़ी का टुकड़ा पारस पत्थर के पास आयेगा, वह मिट्टी ही तथा लकड़ी ही रहेगा। यदि धातु के समान व्यक्ति दिन-प्रतिदिन के अनुभवों के सम्पर्क में आता है, वह रूपान्तरित हो जाता है। सिद्धार्थ धातु के समान व्यक्ति था। उसके अन्दर उपयुक्त सामग्री भरी हुई थी। उसके अन्दर कुछ ऐसा था जो आसानी से उसमें समा सकता था, प्रतिक्रिया कर सकता था, परिवर्तित हो सकता था; इसीलिए उसमें इतना महान् परिवर्तन आ सका।

आज श्री भगवान् बुद्ध की जयन्ती है; इसलिए हमें बुद्ध भगवान् के जीवन, उनके अनुभवों के प्रति आदर्श प्रतिक्रिया तथा उन्होंने जो स्मरणीय, युगान्तरकारी पथ ग्रहण किया, उसका चिन्तन करना चाहिए। अपने अन्दर इस गम्भीर परिवर्तन को लक्ष्य करके वह शान्त नहीं बैठे। वह व्यावहारिक योगी थे। हिम्मत के साथ आगे बढ़ कर त्यागी और अन्वेषक बन गये, उसके बाद मिताहारी, एक तपस्वी जिसने योग का अभ्यास किया तथा ध्यान करके वह ज्ञानी और विश्व-गुरु बन गये।

ऐसा नहीं है कि व्यक्ति जीवन में जो-कुछ भी अनुभव करता है, उससे वह पुष्ट हो कर रूपान्तरित हो कर, ऊपर उठ कर उदात्त ऊँचाइयों तक पहुँच जाता है, प्रत्युत उसे तो विचार और विवेक का सक्रिय रूप से प्रयोग करते रहना

चाहिए। यह भी पर्याप्त नहीं है, उससे भी अधिक अनुभव के प्रति किस प्रकार जीवन्त हो कर, सजीव हो कर उसके प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते रहो, यही सच्चे अन्वेषक के जीवन में रूपान्तरित होने का कारण बनता है।

न केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रत्युत सांसारिक-क्षेत्र में भी, और व्यापार-क्षेत्र में भी ऐसा घटित होता है कि यदि व्यापारी का बेटा जीवन में मूर्खता करेगा, तो वह कभी भी कुछ नहीं सीख सकता। वही बेटा यदि मूर्ख नहीं है, सूक्ष्म रूप से सब ध्यान से देखता रहता है, वह व्यापारिक संसार के सारे पाठ सीख सकता है। यदि वह उनके प्रति कोई प्रतिक्रिया प्रकट नहीं करता, तो वह सफल नहीं हो सकता। सफलता केवल उसे ही मिलती है जो ध्यान दे कर सब देखता है, उन अनुभवों का मनन करता है, उनके ऊपर गहराई से प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, उस पाठ का जीवन में प्रयोग करता है, सीख कर परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। इसी कारण व्यक्ति सफल व्यापारी बन कर, हो सकता है वह कभी करोड़पति भी बन जाये। यह इस पर निर्भर करता है कि व्यक्ति जिन अनुभवों में से गुजर रहा है, उनके प्रति सक्रिय हो कर जीवन्त रूप से उसके लिए प्रतिक्रिया करता है। उसके जीवन को रूपान्तरित होने के लिए निश्चित करने वाला कारण यही है।

बुद्ध भगवान् का जीवन हमें यही शिक्षा देता है। उन्होंने बड़े आश्चर्यजनक रूप से, बड़े जीवन्त रूप से, उनके जीवन की आरम्भिक अवस्था में प्रतिक्रिया की। बहुत कम आयु में अपने समय के बड़े प्रबुद्ध और प्रदीप्त गुरु बन गये तथा मानव-इतिहास में वह एक अमर व्यक्तित्व हो गये। यद्यपि दो हजार पाँच सौ वर्ष पहले उनका जन्म हुआ था; पर आज भी उनकी शिक्षा का करोड़ों की संख्या में उनके बौद्ध भक्तों के द्वारा अनुसरण हो रहा है। पूर्व से ले कर पश्चिम तक विश्व में सभी उनका स्मरण करते हैं।

जिन अनुभवों में से गुजर कर उन्होंने जीवन का सामना किया और जीवन्त रूप से उनके प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त की थी, यह उसी का परिणाम है। ईश्वर करे, आप इसे अच्छी तरह से आत्मसात् कर लें, इस पर गहराई से चिन्तन कर लें। बुद्ध जयन्ती के अवसर पर इस प्रकार से उत्सव मनाने का यही

लाभ है। ईश्वर करे, आप सब इस काल का सदुपयोग करके भगवान् बुद्ध के जीवन को जानने के लिए विशेष अध्ययन करें, उनकी शिक्षाएँ और उनका आशय क्या है, हमारे लिए उनका सन्देश क्या है? ईश्वर करे, हम उनके उदात्त और उत्कृष्ट दृष्टान्तों तथा उनके जीवन और उनकी शिक्षाओं से सम्पन्न हो जायें!

१७

सत्य की पुष्टि, असत्य की अस्वीकृति

इस सप्ताह हम आदि शंकराचार्य की जयन्ती मनाने वाले हैं। हमारे इस संसार ने उन्हें एक सबसे महान् सत्य की प्राप्ति करने वाली आत्मा और दार्शनिक के रूप में प्रस्तुत किया है। आठ वर्ष की छोटी-सी आयु में त्याग की भावना और सत्य की प्राप्ति के लिए घर छोड़ दिया। केवल कुछ ही वर्षों में अविश्वसनीय रूप से अपने जीवन-लक्ष्य को पूर्ण किया। बत्तीसवें वर्ष में उनका महाप्रयाण हो गया। उस काल में उन्होंने जो-कुछ भी किया, उसे दिग्विजय के रूप में माना जाता है। अपने विश्वसनीय अकाट्य तर्कों के आधार पर उन्होंने दर्शन के सारे छोटे-छोटे मतवादों को पराजित करके हाथ में अद्वैत वेदान्त का झण्डा ले कर पूर्ण एकात्मवाद का सर्वोच्च दर्शन भारत की चारों दिशाओं में स्थापित कर दिया। उनके इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के बारह सौ वर्षों के बाद आज भी उसका अविश्वसनीय कार्य सक्रिय रूप से जीवन्त हो कर उत्तरोत्तर प्रगतिशील हो रहा है।

स्वयं को नाम-रूप युक्त, आदि-अन्त सहित, जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, क्षय, दुःख, क्लेश आदि अवस्थाओं से युक्त परिवर्तनशील विषय मान बैठने की भूल को सुधारना और अपने दिव्य, शाश्वत, मूल स्वरूप का ज्ञान करना ही वेदान्त का सार है। दृढ़ता के साथ इस गलत धारणा को नकारना और उसके साथ-साथ दृढ़ता के साथ यह भी स्वीकार करना कि तुम शाश्वत, अपरिवर्तनशील हो, तुम्हारी पहचान दिव्य है। अद्वैत वेदान्त-साधना का मूल सार यही है। वे उसे पुष्टिकरण और निराकरण—'नेति-नेति' कहते हैं।

शंकर की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'विवेकचूड़ामणि' है। यह आत्मा-अनात्मा के मध्य में विवेक का आह्वान है। आत्मा सत् है (पूर्ण अस्तित्व) अनात्मा का आभास मात्र है। यह समय में अल्पकालिक है,

दिक्काल में सीमित है, नश्वर है; यह क्षर पुरुष (नश्वर आत्मा) है। आत्मा अक्षर पुरुष है (अनश्वर आत्मा)—"**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे**" (अजन्मा, शाश्वत, अपरिवर्तनशील और सनानत, जब शरीर मरता है, तब आत्मा नहीं मरती)। इस प्रकार 'विवेकचूड़ामणि' एक अधिकृत रचना है और आत्मा-अनात्मा के विवेक की एक साधना है।

और उनकी दूसरी पुस्तक है 'आत्मबोध' जिसमें 'आत्मा क्या है', इस पर प्रकाश डाला गया है, जिससे तुम आत्मा-अनात्मा का विवेक प्राप्त करते हो। अनात्मा को जान कर ही तुम उसे नकार सकते हो। तुम उससे भ्रमित नहीं होगे। अनात्मा के स्वभाव को जानने पर तुम अपने-आपको भ्रम के परदे से मुक्त कर लोगे। उसके पश्चात् तुम सत्य में स्थित हो जाओगे, उसमें दृढ़ता के साथ स्थिर हो जाओगे, सोचने योग्य रहने के लिए उस पर चिन्तन-मनन और ध्यान करने के लिए, तथा अपनी चेतना में वास्तविक जागरूकता जगाने के लिए, आत्मा क्या है उसका विस्तृत ज्ञान, और महत्त्व इस पुस्तक में निहित है। इस सीमा तक 'आत्मबोध' तुम्हें रास्ता दिखा सकती है कि धीरे-धीरे ईश्वर से तुम्हारी प्रार्थना का उत्तर मिलता है : "**तमसो मा ज्योतिर्गमय**" और "**धियो यो नः प्रचोदयात्**" ("अन्धकार से प्रकाश की ओर चलो" और "कृपया वह हमारी बुद्धि को प्रकाशित करें")।

जो अनुचित है, उससे बचने के लिए हमें उस ज्ञान की प्राप्ति करनी है कि अनुचित क्या है? और उसके अभ्यास को आगे बढ़ाने के लिए क्या उचित है, उसके ज्ञान की प्राप्ति के लिए क्या उचित है और वास्तविकता और सत्य क्या है? इस प्रकार त्रुटि के प्रति मन को जागरूक रखने के लिए, तथा सत्य को ग्रहण करने के लिए, बुद्धि की ग्राह्यता के विकास के लिए, वेदान्तिक चेतावनी के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों का महत्त्व है।

जब ब्रह्म ही सत्य है और उसे प्राप्त करना है, तो अनावश्यक रूप से संसार को, जगत्-प्रपंच को जानने की क्या आवश्यकता है। इसका उत्तर है—क्योंकि तुम इस संसार के भ्रम से मुक्त होना चाहते हो। तुम्हें इस भ्रमित छाया के

दाँवपेंचों को जान लेना चाहिए। निश्चित रूप से तुम्हें इसके विषय में सब-कुछ जान लेना चाहिए; क्योंकि यह अनेकों सूक्ष्म रूपों में प्रकट होता है।

हम समझते हैं कि यह सारा संसार हमारे बाहर है, पर सब मिला कर संसार और प्रपंच सब हमारे भीतर ही हैं। हमें उसे समझ लेना चाहिए। हमारे अन्दर ऐसा क्या है जो हमें अपने अन्दर का प्रपंच सत्य प्रतीत होता है तथा वह हमें अपने पीछे भागने के लिए विवश करता है, उसके प्रति आसक्ति बढ़ाता है, उसे बाँध देता है? हमारे अन्दर ऐसा क्या है जिसे हमें निकाल कर फेंक देना चाहिए? पहले उसे जड़ से उखाड़ फेंकना चाहिए। इस प्रकार अपने भीतर निहित अविद्या तथा माया का ज्ञान प्राप्त करने की, अपने-आपको भ्रम से मुक्त करने की, और अँधेरे से प्रकाश की ओर जाने की यह कुंजी है।

गुरुदेव बार-बार दुहराते थे—"तुम एक अमर आत्मा हो। तुम यह शरीर, यह मस्तिष्क नहीं हो। ये सब उपाधियाँ हैं, सीमित तात्त्विक गुण हैं जिन्हें कुछ समय के लिए तुम्हारे साथ जोड़ दिया गया है। वह तुम्हारे महत्त्वहीन व्यक्तित्व का एक भाग हैं। तुम्हारी इहलोक की चेतना है, पर तुम तो उससे भी बहुत अधिक हो, उससे भी श्रेष्ठ एक दिव्य व्यक्तित्व। मानव से परे एक आध्यात्मिक सत्य जो समय और दिक्काल से अछूता है, वह कष्टों, दुःखों और वेदना से प्रभावित नहीं है।"

तो फिर इसे सुनना चाहिए, इस पर चिन्तन करना चाहिए और इस पर ध्यान करना चाहिए। तुम्हें अपना पूरा ध्यान इसके अभ्यास की ओर मोड़ देना चाहिए जो तुम्हें मुक्ति दिला सकता है। इसी सत्य के कारण हमारे अन्दर यह भावना पैदा होती है कि शाश्वत, सार्वजनीन सत्य, परमात्मा के साथ हमारा सम्बन्ध है। ईश्वर करे, उनकी कृपा तुम्हें इस साधना में सफलता प्रदान कराये कि तुम वास्तव में हो क्या? तथा निम्न मन के आकर्षण का सामना करने के लिए यह मान लेना कि इस सत्य से हट कर भी तुम कुछ हो।

तुम्हें लगातार अपने मन के अज्ञान और भ्रमित पहचान के कारण निम्न वृत्तियों से बँधे रहने की पुरानी प्रवृत्ति के प्रयासों को कठोरता से अस्वीकार करना है। उसे कोई स्थान नहीं देना है। अपनी इच्छा-शक्ति की सामर्थ्य के

अनुसार तुम्हारी सकारात्मक जागृत चेतना और इस शरीर से ही मुक्ति प्राप्त करने का तुम्हारा निर्णय और दृढ़ संकल्प, तुम्हें इस भाव को बनाये रखना चाहिए। तुम्हें अपनी मूलभूत अमर और अनश्वर दिव्य पहचान की दीप्तिमान आन्तरिक जागृति से प्रदीप्त हो जाना चाहिए। तुम्हारा अन्तःकरण ज्ञान के प्रकाश से प्रज्वलित हो जाना चाहिए। तुम्हारे भीतर ज्ञानबोध की स्थिति, तुम्हारे आभ्यन्तर में जागरूकता जिसमें किसी प्रकार की निद्रा न हो, इसके लिए तुम्हें प्रार्थना करनी चाहिए और अभ्यास करना चाहिए।

ईश्वर करे, यह सप्ताह अद्वैताचार्य जगद्गुरु आदि शंकराचार्य की भावनाओं से आपको ओतप्रोत कर दे तथा इसके प्रभाव से आपकी चेतना के उत्थान में सफलता मिले। आज की सामान्य, नीरस-सी मानव की सांसारिक चेतना उदात्त और महान् उच्च आध्यात्मिक स्तर की चेतना से हट कर दैविक आध्यात्मिक स्तर की चेतना में बदल जाये।

१८

वास्तविक संन्यास

परम प्रिय, पूजनीय गुरुदेव! आपकी यशस्वी और कृपामयी आध्यात्मिक उपस्थिति के लिए श्रद्धांजलि। आप ही इस आश्रम का जीवन, इसकी आत्मा और इसका प्रकाश हैं। आपने इसे पवित्र उत्तराखण्ड के, माँ गंगा के तीर पर स्थापित किया है। हम सभी भाग्यशाली हैं जो सब मिल कर यहाँ इस समाधि मन्दिर में, इस प्रातःकालीन शान्त वेला में आध्यात्मिक सत्संग के लिए उन आत्माओं के साथ एकत्र हुए हैं जिन्हें आपने अपनी प्रेरणा और बौद्धिक शिक्षण से यहाँ आकृष्ट किया है।

वे बड़े भाग्यशाली हैं जो इस स्थान की यात्रा करते हैं, और वास्तव में सबसे भाग्यशाली वे हैं जो यहाँ कुछ समय रह कर, अनुष्ठान-जप करके अपना समय व्यतीत करते हैं; और उससे भी भाग्यशाली वे हैं जो तीन प्रकार से धन्य हैं, आपके साथ रह कर दिव्य जीवन व्यतीत करते हैं।

मैं आपकी उपस्थिति के आगे झुक कर, उन सभी के लिए जो यहाँ एकत्रित हुए हैं आपकी कृपा-कटाक्ष का आह्वान करता हूँ। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आपकी गुरु-कृपा और श्रेष्ठ आशीर्वाद उन्हें उदात्त जीवन व्यतीत करने योग्य बनायें। ऐसा जीवन जिसमें त्याग, तपस्या, निवृत्ति और संन्यास, आत्म-संयम और अनुशासन, एकाग्रचित्त, ध्यान, सक्रिय रूप से जीवन को जानने की प्रक्रिया, विवेक, व्याख्या करना, अन्तर्मुखी होने का जीवन, मनन-चिन्तन, ऐसा दिव्य जीवन जिसमें सत्य, पवित्रता, कृपा, दया, ऐसा दिव्य जीवन जिसमें सेवा, भक्ति, ध्यान और आत्मानुभूति की आकांक्षा हो।

ईश्वर करे, आज पहली जून का दिन आपके लिए विशेष उपहार का दिन हो। आज के दिन ही आपने संन्यास और त्याग का जीवन आरम्भ किया था। उन्नीस सौ चौबीस में आप यहाँ एकाकी परिव्राजक के रूप में आये थे। आप

यहाँ के इस भाग की भाषा भी नहीं जानते थे, न यहाँ के रीति-रिवाज और परम्पराओं को जानते थे, तथा यहाँ की अति-उष्ण और अति-शीत जलवायु से भी आप परिचित नहीं थे। बस, आपके पास एक ही विचार था—एकान्त में शान्ति से रहना और ईश्वर के नाम का जप करना, प्रार्थना करके साक्षात्कार प्राप्त करना।

आज का दिन धन्य है। आपके उस त्याग के कारण ही, आपके तपोमय जीवन को गले लगाने के कारण ही यहाँ के तपोमय परिवार का गठन हो पाया है जिसमें दीप्तिमान त्यागी, दीप्तिमान आश्रमवासी उच्चतर जागरूकता, उच्च चेतना के प्रकाश से भर उठे हैं। उन्होंने अपने अन्तर के प्रकाश को आपके साथ रह कर उपार्जित किया है। अब दूसरों को लाभ पहुँचाने के लिए उन्हें वह प्रकाश दे रहे हैं। वह दिन धन्य है जब भौतिकवाद, सन्देहवाद, निरीश्वरवाद और सुखवाद के इस युग में इसी दिन महान् आदर्श दिव्य जीवन के योग-वेदान्त के भवन का निर्माण आध्यात्मिक साधना के अभ्यास के लिए हुआ।

आशीर्वाद-प्राप्त धन्य आत्माओ! प्रिय साधक बन्धुओ! शाश्वत सत्य के बाद हम ही पिछले जन्मों से लायी हुई वासनाओं के विषय में बतलाने, उन्हें सक्रिय करने तथा अव्यक्त निष्किय आध्यात्मिक संस्कारों को, और उन आध्यात्मिक संस्कारों की अव्यक्त प्रवृत्तियों को जागृत करने की आवश्यकता पर ध्यान दे रहे हैं। नहीं तो वे बिना कोई लाभ प्राप्त किये निष्क्रिय रह जायेंगी।

अनेकों वर्ष पहले ईजिप्ट में, एक युवा फरारूह की किसी एक कबर को खोला गया। उन्होंने अनुसन्धान किया कि उस रक्षित मृत शरीर के पास उस समय की राजकीय प्रजा ने कुछ अनाज के दाने रखे थे। पुरातत्त्वविद् यह जानने को उत्सुक थे—"क्या ये दाने अंकुरित होंगे? सहस्रों वर्ष तक वहाँ पड़े रहने के बाद भी क्या इनमें अभी जीवन-तत्त्व है?" इस प्रकार बड़े पूर्वानुमान के आधार पर उन्होंने उन बीजों को बोया। और उन्हें बो कर जब सींचा गया, तो अंकुरित करने के लिए उचित स्थितियाँ उत्पन्न की गयीं, तो शीघ्र ही अंकुर निकल आये तथा बढ़ कर अनाज के बाले हो गये। समस्याएँ आती हैं और चली जाती हैं,

साम्राज्यों का उत्थान और पतन होता रहता है; पर इन बीजों को, जिन्हें युवा फरारूह के साथ दफना दिया गया था, में जीवन सुप्तावस्था में था। उचित स्थिति प्रदान करने पर वे दाने अंकुरित हो गये।

इसी प्रकार हमने विचार किया कि संस्कार और वासनाएँ हमारे जीवन का अंग हैं। उन्हें समझे बिना, गतिशील रूप से उनके गतिवान् हुए बिना, गहराई से उनके प्रकट हुए बिना, हमारे अपने स्वभाव में प्रकट हुए बिना, अपने प्रभावशाली रूप की झलक दिये बिना वह कभी भी सुप्त और निष्क्रिय पड़ी रहती है। जब तक आध्यात्मिक उन्नति की, आध्यात्मिक विकास की शुभेच्छा, मुमुक्षुत्व और जिज्ञासा के फलने-फूलने, उसके सामने आने का अवसर न दिया जाये, उन्हें जगाया न जाये, उन्हें फल-प्राप्ति का अवसर न दिया जाये, तब तक वह यों ही निष्क्रिय पड़ी रहेंगी।

अपने हृदय में इस प्रकार की तीव्र आकांक्षा ले कर युवा कुप्पुस्वामी ने सारे भारत का भ्रमण करते हुए उन्नीस सौ तेईस के अन्त में उत्तर के हिमालय तथा गंगा की ओर मुख किया। सारी इच्छाओं का नाश करने के बाद उनके मन में एक ही तीव्र इच्छा थी। यह वह इच्छा थी जिसे स्वयं ईश्वर ने उनके मन में रोपा था, वह ईश्वर के स्वभाव का एक अंग है—विद्या माया। **"धर्मोविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ"** (ओ अर्जुन! सारे प्राणियों में मैं इच्छा हूँ जिसका विरोध धर्म भी नहीं करता)।

यह ऐसी इच्छा है जो मुक्ति दिलाती है, यह ऐसी इच्छा है जो जागृति लाती है, यह ऐसी इच्छा है जो अव्यक्त प्रवृत्तियों को और निष्क्रिय आध्यात्मिक संस्कारों को गतिशील बनाती है, यह एक ऐसी लौ के समान है जिसे ज्वलनशील पदार्थ के निकट लाने पर वह प्रकाशित हो जाती है; नहीं तो वह जैसे अन्य पदार्थ उसके चारों ओर पड़े हैं, उनके समान सदा कुंठित और उदासीन पड़ी रहेगी। यह तो केवल लौ के निकट लाने मात्र से ही तुरन्त अपनी पूरी दीप्ति के साथ जल कर सामने आ जाती है। पूरी उष्मा के साथ, पूरी शक्ति के साथ उसका उपयोग करने के लिए जो-कुछ भी उसके निकट सम्पर्क में

आयेगा, वह राख हो जायेगा। यह शक्ति तभी आती है जब जागरूकता हो, तभी उसे सक्रिय करके प्रकट किया जा सकता है।

यही तो हुआ। डा. कुप्पुस्वामी का हृदय आत्मोपलब्धि के लिए, ब्रह्मज्ञान के लिए, जीवन्मुक्त होने के लिए प्रज्वलित था। वह ऐसी शान्ति पाना चाहते थे जिससे विवेक आता हो—**"सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्"** (उसे पाने के लिए केवल पवित्र बुद्धि से ही, इन्द्रियों से परे अनन्त आनन्द पाया जा सकता है)। **परमानन्द** जो नित्य तृप्तिदायक है, शाश्वत सन्तोष देने वाला है। और उन्होंने इस लालसा को सर्वदा शुद्ध निर्मल, सदा प्रज्वलित, सदा ज्वलनशील रखा। उन्होंने उसे कभी मरने नहीं दिया, उसे मन्द नहीं होने दिया, उसे सामान्य नहीं होने दिया। उन्होंने अपने धर्मोत्साह, अपनी उमंग, अपनी तीव्र लालसा और उत्कण्ठा से उस ऊष्मा को तीव्रता के साथ प्रज्वलित रखा।

प्रिय पूजनीय गुरु महाराज स्वामी शिवानन्द जी की आत्मोपलब्धि, सन्त-भाव और साधुता की कुंजी यही थी। यही वह कारण है जो अव्यक्त आध्यात्मिक शक्ति को ऐसा सक्रिय रूप में प्रकट करता है जिससे हमारा जीवन उन्नत हो कर, रूपान्तरित हो कर, गतिशील हो जाये। यदि इस भावना को अन्त तक बनाये रखा जाये, तो यह हमें सर्वोच्च सौभाग्य की स्थिति तक ले जायेगा और ईश्वरोपलब्धि की महिमा से हमारे जीवन को मण्डित कर देगा।

गुरुदेव महाराज ऐसे जगाने वाले ऐसे प्रदीप्त कारण हैं जो अपने ज्ञान की शिक्षाओं के माध्यम से तुम्हारे अन्दर सोयी हुई अव्यक्त आध्यात्मिक वृत्तियों को प्रज्वलित कर देते हैं। यह ऐसा है जब तुम उनकी कोई पुस्तक खोलते हो, तुम्हारी आँखें कुछ पृष्ठों पर प्रदीप्त हो उठती हैं। यही है चमत्कार का कारण। यही है जीवन में परिवर्तन लाने का कारण। छिपे हुए, सोये हुए आध्यात्मिक संस्कार और वासनाएँ तुरन्त ही एकाएक प्रकट हो कर, गतिशील हो कर सामने आ जाते हैं। इस बीसवीं शताब्दी में सारे विश्व की असंख्य आत्माएँ गुरुदेव की ज्ञान-शिक्षा से एकाएक प्रकाशित होने का कारण बन कर, प्रबोधन पा कर

परिवर्तित हो गयी हैं। सारे संसार में हजारों-हजारों की संख्या में मनुष्य उनकी कृपा-शक्ति से, उनकी ज्ञान-शक्ति की शिक्षाओं से रूपान्तरित हो गये हैं।

तदुपरान्त भी तो उन चिनगारियों को हवा देनी चाहिए। लौ को जलाये रखने के लिए ईंधन की आवश्यकता है। यदि जलने के लिए ईंधन बुझ (जल) गया है, तो आग बुझ जायेगी और बस राख की ढेरी रह जायेगी। पुनः उसमें ईंधन झोंकने की आवश्यकता है। यह सदा चलते रहने वाली शाश्वत प्रक्रिया है। यह ऐसा नहीं है कि जैसे तुमने अँगीठी जलाये रखने वाली अग्नि में ईंधन एक-साथ डाल दिया, वह निरन्तर जलता रहेगा। नहीं, इसमें ऐसा नहीं होता।

गुरुदेव का संन्यास-दिवस होने के कारण हमें विचार करना चाहिए कि यह संन्यास है क्या? संन्यास से क्या होता है? गुरु महाराज के इस विषय में सुनिश्चित विचार थे। वे कहते थे कि केवल सिर मुँड़वा लेने से और भगवा वस्त्र धारण कर लेने से तुम संन्यासी नहीं बन सकते, स्थान-परिवर्तन से तुम संन्यासी नहीं बन सकते। एकान्त में आ कर दूर पहाड़ियों की चोटियों पर गुफाओं में बैठ कर जंगलों में संन्यास नहीं मिलता। यदि इस बाहरी परित्याग या संन्यास के साथ-साथ निरन्तर आन्तरिक परित्याग या संन्यास का सिलसिला बना कर नहीं रखा, अपने मन की आन्तरिक त्याग की झूठी धारणाओं का अन्त नहीं किया—"मैं यह शरीर हूँ, मैं एक मानव प्राणी हूँ, मेरा शारीरिक व्यक्तित्व है, मैं मनोवैज्ञानिक व्यक्ति हूँ, मैं मस्तिष्क हूँ, मैं भाव हूँ, मैं भावनाएँ हूँ, मैं विचार हूँ, मैं इच्छा हूँ, मैं स्मृति हूँ, मैं लालसा हूँ, मैं कल्पना हूँ।" इनका अन्त करना चाहिए।

यह सारे विचार अविद्या रूप हैं। इन झूठी धारणाओं का त्याग कर दो। इन्हें अस्वीकार कर दो। सच्चाई की पुष्टि बार-बार करो। संन्यास का सार है—देहाध्यास का त्याग। स्थूल से ले कर सूक्ष्म पर्यन्त—स्मृति और कल्पना, भविष्य की कल्पनाएँ करना और भूत के साथ एकत्व स्थापित करना अथवा इनकी स्मृति बनाये रखना। इनका त्याग।

गुरुदेव बड़े सुनिश्चित विचार के थे। वह मानते थे कि आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि जंगलों में जा कर रहो,

किसी गुफा में जा कर अपने को छिपा लो अथवा पर्वत की चोटी पर जाओ। बस, आवश्यकता इस बात की है कि अपने झूठे विचारों का त्याग करो, मानव-व्यक्तित्व के साथ झूठी पहचान का त्याग करो। इसलिए अहं का त्याग आवश्यक है, अहंकार और अभिमान का त्याग। इच्छाओं का त्याग, आसक्ति का त्याग, ममता का त्याग, 'मैं' और मेरेपन का त्याग।

भगवद्‌गीता के पूरे अठारह अध्यायों में बार-बार ज्ञान की शिक्षा दी गयी है—निर्मम, निर्मोह और आसक्ति (मैं और मेरेपन से छुटकारा, आसक्ति और मोह से छुटकारा) के विषय में बल दे कर कहा गया है। इस प्रकार सच्चा त्याग, सच्चा संन्यास अपने झूठे विचारों को समाप्त करना है। "मैं एक मानव व्यक्ति हूँ, मैं एक शरीरधारी व्यक्ति हूँ, मैं मानसिक रूप का व्यक्ति हूँ, मैं भावुक हूँ, मैं एक बुद्धिमान् प्राणी हूँ, मैं ऐसा प्राणी हूँ जो ईश्वर से भिन्न है।" यह सब अज्ञान है। यह बन्धन है। यह संसार है। यह माया है। यह प्रपंच है। यह व्यक्तिवादी पन है। इन सबका परित्याग ही वास्तविक संन्यास है।

अज्ञान के कारण ही परित्याग का अहंकार आता है, इसकी पहचान कर लेने पर ही संन्यास आता है। अहंकार से ही स्वार्थवृत्ति आती है, इसका परित्याग करना है, इसे पहचानना ही संन्यास है। आसक्ति और अहं का एक दूसरा पक्ष ही है जिसमें 'मैं' और 'मेरे'-पन की भावना आती है, उसका परित्याग ही संन्यास है। अहं की पहचान के लिए अगणित इच्छाओं की सेना की पंक्ति लगी हुई है, उन इच्छाओं का परित्याग ही संन्यास है। आसक्ति और स्वार्थ का त्याग ही संन्यास है।

एक बार यदि इच्छा का त्याग कर दिया जाये, तो उसके पास कोई संकल्प ही नहीं रह जायेगा। परमेश्वर के चरणों में, अपरोक्षानुभूति प्राप्त करने के लिए भक्ति के अतिरिक्त उसे कोई और इच्छा नहीं रह जायेगी। यह विचार चेतना में दृढ़ता के साथ स्थापित हो जाता है कि 'जो-कुछ भी घटित होता है, उसके लिए मैं तो आपके हाथ का खिलौना मात्र हूँ, आप ही सब-कुछ करते-कराते हैं।' केवल तभी मन में कोई संकल्प नहीं रहता। इसे ही संन्यास कहते हैं। इसे ही वास्तविक परित्याग की स्थिति कहते हैं।

गुरु महाराज की प्रेरणा से आज की प्रातः इस सत्य पर विचार किया गया जिसमें हम सभी समान रूप से भागी रहे हैं। ईश्वर की कृपा आपके ऊपर हो! ईश्वर करे, उन सर्वशक्तिमान् की कृपा से आप आध्यात्मिकता के पथ पर वास्तविक साधना का जीवन व्यतीत करने वाले एक सच्चे साधक बन जायें। ईश्वर करे, एक सच्चे भक्त बन जायें और एक वास्तविक त्यागी बन जायें।

१९

एक उपहार—गुरुदेव के लिए

उस दैवी सत्ता के लिए श्रद्धास्पद श्रद्धांजलि जो सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, शाश्वत सत्य है। वही अपरिवर्तशील, अनश्वर, अक्षय आत्मा हैं जिनके पीछे और उनसे परे यह सदा परिवर्तनशील, अस्थायी और नश्वर प्रपंच का प्रवाह है। यह विश्व जिसे हम सच्चा मानते हैं, वह एक नाम और रूपों में नष्ट होने वाला क्षणभंगुर प्रपंच है।

हम उस सत्ता को प्रणाम करते हैं जो इस बाह्य दृश्य जगत् के पीछे निहित उसका आधार है, जैसे कि चलचित्र का परदा जिस पर चित्र दिखाये जाते हैं, वह क्षणिक चित्रों का आधार है। उस पर पड़ती हुई छाया बड़ी सत्य लगती है, वह दर्शकों को अपने आकर्षण में बाँधे रखती है। दर्शक उनसे भ्रमित होने के लिए खर्च करके वहाँ जाते हैं। पर इस अनित्य छाया के खेल का कोई आरम्भ भी है और अन्त भी है तथा सदा परिवर्तनशील भी है। जब परदा सदा एक-सा बना रहता है। यह आरम्भ में था और अन्त में रहेगा तथा यह ऐसा ही बना भी रहेगा, किन्तु दर्शक चित्र देखने में ऐसे डूबे रहते हैं कि इन्हें अपनी भी सुध-बुध नहीं रहती तथा इनका ध्यान परदे के ऊपर तो जाता ही नहीं। उस महान् अन्तर्यामी, सर्वव्यापक, नित्य उपस्थित सत्य को श्रद्धा के साथ प्रणाम!

गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की आध्यात्मिक उपस्थिति के लिए प्रेममयी श्रद्धांजलि। उन्होंने हमें अप्रत्यक्ष ज्ञान के प्रति जागरूक बनाया। उन्होंने हमारे अन्तर्चक्षुओं को खोल कर हमें सत्य को पहचानने के योग्य बनाया। निश्चित रूप से इस प्रकार की जागरूकता गुरु की महान् अनुकम्पा से ही प्राप्त होती है। उन्होंने अज्ञान में सोये हुओं को जगा कर, हमें इस परिवर्तित रूप-रंग के पीछे छिपे सत्य को देखने योग्य बनाया। गुरु ही ऐसे व्यक्ति हैं जो

सच्चे साधक, जिज्ञासु, मुमुक्षु योगी की सर्वोच्च भलाई और उसके सर्वोच्च कल्याण की, गहराई से कामना करते हैं।

वर्ष में आषाढ़ पूर्णिमा के दिन गुरुपूर्णिमा आती है। उस दिन समस्त भारत में सहज रूप से यात्रा करके अपने गुरु के पास या गुरु-स्थान पर शिष्य पहुँचते हैं। वह गुरु के निकट बैठ कर अपनी इच्छा की पूर्ति करते हैं। उन्हें श्रद्धा के साथ भेंट देते हैं, तथा उनसे उद्दीपक (जीवद्) अन्तःप्रेरणा प्राप्त करते हैं जिससे उन्हें दुःख से परे शाश्वत आनन्द के साम्राज्य तथा अन्धकार से परे प्रकाश के साम्राज्य की यात्रा के लिए नूतन प्रेरक शक्ति प्राप्त होती है।

उन्होंने जो-कुछ गुरु से पाया है, उसके लिए अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करने के लिए, आभार प्रकट करने के लिए वे मूर्त रूप में अपनी श्रद्धा प्रकट करने की इच्छा भी रखते हैं। वे उसे गुरु-दक्षिणा कहते हैं, एक विशिष्ट भेंट जो गुरु को देना चाहते हैं। अब गुरु-दक्षिणा क्या है, जो गुरु को विशेष रूप से प्रसन्न करेगी?

एक गुरु, गुरु-दक्षिणा के रूप में अपने शिष्य से निश्चित रूप में यही चाहता है कि अपनी साधना में सच्चा और गम्भीर होने के नाते आध्यात्मिकता के महान् आदर्श—त्याग, विरक्ति, विवेक, अभ्यास, आध्यात्मिक साधना आदि के प्रति अपने-आपको वह पुनः समर्पित कर दे। अपने आदर्शों के प्रति गहन भक्ति और पूर्ण रूप से कृतसंकल्प, गुरु के दर्शाये हुए पथ पर दृढ़-संकल्प हो कर दृढ़ता के साथ आगे बढ़ें, आदर्शों के पालन में संलग्नता, गुरु के निर्देशों का पालन करना। हम प्राचीन सन्तों के वंशज हैं। उन्होंने जिन आदर्शों को हमारे सामने रखा है, उनका पालन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करें—यही गुरु-दक्षिणा के रूप में गुरु अपने शिष्य से चाहता है।

इस सन्दर्भ में हमें एक प्राचीन कहावत याद आती है—"चिकित्सक अपने-आपको निरोगी करो।" सर्वप्रथम, अपने कार्य से प्रारम्भ करो, जहाँ तुम हो, अपने भीतर, नवीनीकरण हेतु कार्य करो, पुनर्जन्म के लिए कार्य करो, अपने ही भीतर एक नयी शक्ति के जागरण हेतु कार्य करो। एक नया मन, नवीन हृदय, आभ्यन्तर में एक नया व्यक्ति।

गुरुपूर्णिमा का महत्त्व इसलिए भी है कि अपने नवीनीकरण का यह एक अवसर है। एक प्रसिद्ध पक्षी है जिसे स्वप्निक कहते हैं। विशेषकर प्राचीन मिस्र में उसे सूर्य की पुजारिन के रूप में जाना जाता था। ऐसा माना जाता है कि एक समय में एक ही स्वप्निक का अस्तित्व होता है, जो करीब-करीब पाँच सौ वर्षों तक जीवित रहती है। अपने-आपको स्थायी बनाने के लिए, अपना अण्डा सेने के लिए यह अपना घोंसला नहीं बनाती है। पर घोंसले के बदले सुगन्धित डालियों की एक सुगन्ध युक्त चिता की अग्नि प्रज्वलित करके उसके ऊपर अपना अण्डा देती है। यह लपटों में ही नष्ट हो जाता है। पर वह दीखता ऐसा ही है, पर देखते-ही-देखते उस भस्मीभूत राख में से एक चमकता हुआ नया स्वप्निल पक्षी रहस्यमय रूप से निकल आता है।

इस पक्षी के विषय में इस प्राचीन विश्वास का, हर एक आध्यात्मिक साधक के लिए एक गहरा अर्थ है। जो अपने पुराने स्व की राख में से, जिसका आधार अनाध्यात्मिक आत्मा से है, जिसका सम्बन्ध अज्ञान से जुड़ गया है, जो इन्द्रियों के विषयों से आसक्ति और उसके भोग में लिप्त होते हैं, वह अपनी इच्छाओं के वशीभूत हो कर अपने शारीरिक व्यक्तित्व को, शारीरिक लक्षणों और मनोभावों को मूर्त रूप मान लेता है—उससे ऊपर उठ कर एक चमकदार नया व्यक्ति निकल कर आता है। पूर्व-व्यक्तित्व का विनाश होने पर, पूरी तरह से उसको नष्ट करके, समाप्त करते हुए, अपने-आपको पुन: उत्पन्न करके, अपना काम यहाँ से पुन: शुरू करो। गुरुदेव कहा करते थे—"इस छोटे 'मैं' को नष्ट करो, जीने के लिए मरो, दिव्य जीवन यापन करो।" निश्चित रूप से यही गुरु-दक्षिणा है। यह नवरत्नों से भी मूल्यवान् है, यह सोने और चाँदी से भी मूल्यवान् है। इस प्रकार की गुरु-दक्षिणा से गुरु प्रसन्न हो जायेंगे।

इसलिए गहराई से इस पर चिन्तन करो। इस महत्त्वपूर्ण, सार्थक और अत्यावश्यक विचार पर चिन्तन करो। इसे स्वयं से प्रारम्भ करो, एक नया व्यक्ति बन जाओ। स्वप्निल पक्षी की भाँति हो जाओ। इस नवीनीकरण से चमक उठो। इसे ही अपनी गुरु-दक्षिणा होने दो। ईश्वर भी प्रसन्न होंगे, गुरु भी

आनन्दित हो उठेंगे और समस्त भ्रातृभाव को भी लाभ पहुँचेगा। इस सबसे ऊपर तुम भी अपनी ऐसी दक्षिणा दे कर बहुत लाभान्वित होगे।

परमात्मा और गुरु तुम्हें पूर्ण गम्भीरता और सच्चाई के साथ इस पर विचार करने के लिए प्रेरित करें। इस पर गम्भीरता से विचार करके उसे कार्य रूप में परिणत करो।

२०

भगवद्-दर्शन

जैस-जैसे हम गुरुपूर्णिमा के महान् दिवस के पास पहुँच रहे हैं, मैं उनको प्रेमपूर्वक श्रद्धा समर्पित करता हूँ जिनके बारे में हमारे महान् पूर्वजों ने प्राचीन काल से ले कर अब तक घोषित किया—"हमने उस सत्ता को देखा है जिसका ध्यान करने से मर्त्य अमर हो जाता है। उनको जानना ही मोक्ष पाना है। और कोई पथ नहीं है!" उनको श्रद्धा के साथ प्रणाम। अन्तरात्मा में बसने वाले वह ईश्वर आप सभी के हृदय में निवास करते हैं। उन्हीं के कारण आपके शरीर चलते-फिरते मन्दिर हैं। ईश्वर करे, आपके अन्दर यह जागृति आये कि ईश्वर का अस्तित्व आपके हृदय में तथा आपके चारों ओर सब कहीं है। इसलिए सबके साथ आपका व्यवहार ईश्वर का आदर करने के रूप में होना चाहिए। वह आपके अन्दर तथा आपके चारों ओर व्याप्त हैं। ईश्वर करे, सारी सृष्टि में व्याप्त देवत्व के प्रति आपकी श्रद्धा हो।

प्राण शक्ति पवित्र हैं, इसलिए सब प्राणियों के साथ आदरपूर्वक व्यवहार करो। सब प्राणी दिव्यता के निधान हैं; क्योंकि परमात्मा की उपस्थिति सबके अन्दर है, इसलिए इस स्थिति को पहचानो। अपने व्यवहार को उच्च और उदात्त रूप में प्रकट करो। सबके प्रति दयालु रहो। सबके प्रति आदर भाव रख कर उनके साथ उचित व्यवहार करो। सारे जीवित प्राणियों की पवित्रता, शुद्धता, पुण्यता का आदर करो। तुम्हारे विचार और वाणी तथा कर्म में पवित्रता हो। अपने मन में अच्छे, उच्च और उदात्त विचारों को लाने का प्रयत्न करो। अपने सभी साथियों के प्रति तुम्हारे मन में सद्भाव और शुभ कामनाएँ होनी चाहिए। तुम्हें प्रतिदिन सबके साथ नम्रता और सुसभ्यता का व्यवहार करना चाहिए। कभी किसी के प्रति बुरी धारणा पैदा मत करो। कभी किसी के लिए दुर्भाव मत लाओ। कभी किसी के ऊपर व्यंग्य मत करो। कभी किसी की पीठ

पीछे निन्दा मत करो, उसके बारे में कपोलकल्पित कहानियाँ मत रचो। ये तत्त्व सब प्राणियों में ईश्वर के वास की मूल धारणा के विपरीत हैं।

सभी मनुष्य हमारी श्रद्धा, शुभेच्छा और आदर पाने के योग्य हैं। दूसरों की विशेषताओं का आदर करो। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आये हुए सारे अतिथियों के चरण स्पर्श श्री कृष्ण भगवान् ने बिना किसी कारण के नहीं किये थे। लक्ष्मण जी का सीता जी के मुख की ओर न देखना बिना किसी कारण के नहीं हुआ था। बिना किसी कारण के ही श्री रामकृष्ण परमहंस जी हरिजनों की कुटिया में झाड़ू नहीं लगाया करते थे। हमारे आचार-व्यवहार और हमारी मनोवृत्ति का आधार सभी प्राणियों के प्रति ऐसा होना चाहिए कि ईश्वर का निवास सबमें समान रूप से है तथा सारे विश्व के प्रति हमारे भ्रातृभाव का आधार भी यही होना चाहिए।

एक छोटी-सी चौपाई में सन्त तुलसीदास जी ने इस भाव को कह दिया है जिसे मैं कहना चाहता हूँ—"**सियाराममय सब जग जानी, करहु प्रणाम जोरि जुग पानी।**" यह जान कर कि सारे संसार में मेरे इष्टदेव श्री सीता रामचन्द्र जी का निवास है, मैं हाथ जोड़ कर उनके सामने झुकता हूँ।" श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के ग्यारहवें अध्याय में श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को जब यशस्वी विश्वरूप-दर्शन कराया, तब उसने यही अनुभव किया। विश्वरूप-दर्शन करके अर्जुन कुछ नहीं कर सका। बस, झुक-झुक कर श्रद्धायुक्त विस्मय के साथ नमित होता रहा। वह नहीं समझ सका कि किस ओर उसे नमित होना है। सभी जगह उसे ईश्वर-ही-ईश्वर दिखायी दे रहे थे, इसलिए उसने दशों दिशाओं में नमन किया। उसने कहा—"मैं आपको सामने से, पीछे से, दायें से, बायें से, ऊपर से, नीचे से तथा चारों कोनों से, मैं सब ओर से प्रणाम करता हूँ।" "**सर्वत: पाणिपादम्**" (हाथों से ले कर पैरों तक जो सर्वत्र विद्यमान है)।

हमारी दृष्टि का उद्देश्य भी यही होना चाहिए। यही हमारी पहुँच होनी चाहिए। हमारा भाव, हमारा व्यवहार हमें आध्यात्मिक अन्वेषक और साधक बन कर पूर्णतया अपने जीवन में ईश्वर का विश्व-दर्शन करना चाहिए। इसके

लिए हमें अपनी दृष्टि को स्थिर करके विशेष अध्ययन, ध्यान और मनन करना चाहिए।

आन्ध्र प्रदेश के एक सन्त थे। उन्हें ईश्वर के दर्शन हो चुके थे। उन्होंने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम था 'व्यावहारिक वेदान्त'। उन्होंने कहा है कि वेदान्त का सम्बन्ध तुम्हारे अध्ययन-कक्ष या ध्यान-कक्ष से नहीं है, इसका सम्बन्ध तुम्हारे दैनिक व्यवहार-क्षेत्र से है। ऐसी दृष्टि विकसित करनी चाहिए। तुम्हारा जीवन इस सत्य पर आधारित होना चाहिए। तुम्हारी आन्तरिक भावना और तुम्हारा भाव सत्य के अनुरूप होना चाहिए। दूसरों की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए आप इसे अपने तक ही सीमित रख सकते हैं। इसका प्रदर्शन मत करो। नहीं तो यह अहंकार की श्रेणी में भी आ सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि दूसरे इसे जानें; पर अपनी जागृत अवस्था में व्यवहार में इस जागरूकता को बनाये रखना चाहिए; मैं ईश्वर में हूँ, ईश्वर मुझमें हैं, ईश्वर सबमें हैं, मैं ईश्वर के साथ व्यवहार कर रहा हूँ। सर्वस्व उसकी उपस्थिति से उत्कृष्ट हो जाता है। इस अद्वैतभाव को सदा बनाये रखो। हमारा महान् आदेश : "**भावाद्वैतं सदा कुर्यात्**" (सभी के साथ सदा ऐक्य भाव रखना चाहिए)।

हमारे उपनिषदों ने साररूप में यह सत्य हमारे सामने प्रकट किया है—"**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**" (यह सब ब्रह्म है), इसे कभी नहीं भुलाना है। यह सदा हमारे मन में एक महान् प्रकाश के रूप में चमकता रहना चाहिए कि ईश्वर अभी भी यहीं हैं। यह एक रहस्यात्मक केन्द्रीय तथ्य है। संसार में अधिक-से-अधिक मनुष्यों में यह विचार पुष्ट होता जा रहा है; पर वह उसे व्यवहार में नहीं ला रहे हैं—"मैं प्रकाश में हूँ। प्रकाश मुझमें है, मैं ही प्रकाश हूँ।" "**यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति...**" (जो मुझे सर्वत्र देखता है और सर्वस्व मेरे अन्दर देखता है. . .), यह ऐसा अचूक पथ है जिससे कभी भी ईश्वर के प्रति जागरूकता से अलग नहीं हो सकते, सदा ईश्वर में रहने का एक रहस्यमय पद उन्होंने हमारे लिए उद्घाटित किया था।

गुरुपूर्णिमा के अवसर पर हमारे व्यवहार का आधार इस प्रकार का होना चाहिए। मैं गुरुदेव को प्रेम के साथ प्रणाम करता हूँ जिन्होंने इस सच्चाई को

अनेकों बार हमारे सामने प्रकट किया है—''मेरे मन में राम, बाहर राम, भीतर राम, ऊपर राम, नीचे राम, पीछे राम, आगे राम, दायें राम, बायें राम, सब कहीं राम हैं।'' गुरुदेव ने सर्वोच्च अद्वैत अनुभवों को बड़ी सामान्य भाषा में हम सबको समझाया है जिससे हम सहज रूप से इसे समझ सकें।

ईश्वर सारे प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं; इसलिए सभी में ईश्वर के दर्शन करो और उनकी सेवा करके, उसे ईश्वर की पूजा मान कर उनके प्रति समर्पण कर दो। यह केवल कर्मयोग नहीं है। यह सर्वोच्च वेदान्त और उपनिषदों की घोषणा है—''**ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्**'' (विश्व में जो-कुछ भी अचल या चल है, उसमें ईश्वर का निवास है)। तुम उनसे कैसे, कभी भी दूर हो सकते हो? तुम जहाँ-कहीं जाओगे, वह वहाँ है—''**तद् दूरे तद्वन्तिके**'' (यह आत्मा दूर भी है, निकट भी)। वह सब कहीं है।

ईश्वर करे, परमेश्वर और गुरु तुम्हारे ऊपर अपनी कृपा और आशीर्वाद की वर्षा करें और तुम्हें वह तुम्हारे जीवन के प्रत्येक दिन यह अनुभव कराते रहें कि तुम उस सत्य के लिए जागरूक हो तथा उसमें अपना जीवन व्यतीत कर रहो हो। गुरु और ईश्वर से अनुनय-विनय के साथ मेरी यही प्रार्थना है।

अपने मन को ऐसा बना लो कि इस आन्तरिक जागरूकता को कभी अपनी दृष्टि से ओझल मत होने दो, सार्वभौम उपस्थिति की जागरूकता के अभ्यास में हो सकता है तुम सौ बार भूल कर सकते हो, हजार बार भूल सकते हो, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। अपने दैनिक जीवन में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अभ्यास के रूप में इसका पालन करो। इस पर डटे रहो। एक दिन तुम्हें सफलता मिलेगी; जब तक तुम्हारे लिए सहज न हो जाये, तब तक इसे कभी मत छोड़ो।

२१

आदेश-पालन ही गुरु का आदर

यदि तुम किसी व्यक्ति का आदर करते हो, तो जिस पथ पर वह तुम्हें चलाना चाहते हैं, अपनी दिनचर्या और अपनी शिक्षाओं के द्वारा उन्होंने जो पथ दिखाया है, तो तुम उनकी आज्ञा और निर्देशों का पालन भी करना चाहोगे। उनकी इच्छा के विरुद्ध नहीं, बल्कि पूरी तरह से उनके अनुकूल रह कर उनके प्रति सम्मान प्रकट करने का यही सबसे व्यावहारिक और प्रामाणिक ढंग है।

जिन भक्तों को ईश्वर के प्रति भक्ति और आदर होता है, वे ऐसा ही करते हैं। वे ईश्वर की इच्छा के अनुकूल रहने के लिए पूर्ण प्रयत्न करते हैं। वे ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध नहीं जाते। आदर, भक्ति तथा उनकी इच्छा के विरुद्ध जाना दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। एक ही समय में एक ही व्यक्ति दो प्रकार का व्यवहार नहीं कर सकता। यदि आदर है, तो आज्ञाकारिता भी है। यदि आदर है, तो उसकी इच्छा को अपने विचार, शब्द और कर्म का विषय बनाना होगा। यदि तुम कहते हो कि हम आपका आदर करते हैं; पर हम यह नहीं करेंगे, इसका अर्थ है कि कहीं कुछ भ्रान्ति है। वहाँ अवश्य ही आन्तरिक विरोध है।

इसी प्रकार गुरु के साथ भी है। हमारा जीवन गुरु से प्रेरित होना चाहिए। हमारा जीवन गुरु की शिक्षा और उनकी इच्छा के अनुकूल होना चाहिए। उसी के अनुरूप हम गुरु के प्रति अपना आदर भाव प्रकट करेंगे। ऐसा हमें प्रतिदिन करना चाहिए। हमें गुरु की शिक्षाओं के अनुसार पूर्ण रूप से उनकी शिक्षाओं का पालन करते हुए जीवन यापन करना चाहिए। वह केवल प्रतिदिन ही नहीं, प्रत्येक घण्टे, सुबह से ले कर सन्ध्या तक निरन्तर करना चाहिए।

शिष्यत्व के लिए इस प्रकार के अनुकूल जीवन के लिए हमें सदा जागरूक रहना चाहिए। यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह सारतत्त्व है। इस अनुकूलता से ही हमें उनका आशीर्वाद प्राप्त होगा। तब निश्चित रूप से हम दिन-प्रति-दिन

अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते जायेंगे। गुरु की शिक्षा शिष्य के जीवन में सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कराके उसके जीवन को सब प्रकार से मंगलमय बना देगी।

ऐसी स्थिति आने के लिए सच्चाई, लगन और परिश्रम के साथ बिना रुके प्रयास करना चाहिए। हमारी सर्वोच्च भलाई और कल्याण इसी में है। ईश्वर करे, परमेश्वर की दैवी कृपा और गुरु का आशीर्वाद हमें ऐसा करने और इस प्रकार का जीवन जीने के योग्य बनायें!

२२

स्वर्ग और नरक सब हमारे भीतर

सार्वभौम समस्त सत्यों में से एक सत्य हमें पता चलता है, जिसे सभी उपदेशों में समान रूप से लक्ष्य कर सकते हैं, वह है कि स्वर्ग और नर्क मनुष्य के मन के भीतर, उसकी चेतना के भीतर ही होता है। हमारा बड़े-से-बड़ा शत्रु हमारे बाहर कहीं नहीं है, प्रत्युत वह हमारे भीतर से शत्रुता कर रहा है। इसी प्रकार हमारा सबसे बड़ा मित्र हमारी माँ, पिता, मित्र, सम्बन्धी, गुरु, मार्गदर्शक, ईश्वर, धन-दौलत, बुद्धिमानी—सब हमारे मन के भीतर ही हैं। महान् विरोधाभास! महान् सत्य! होते हुए भी इस सत्य को महान् आत्माओं ने सिद्ध करके इस मूल्यवान् अमूल्य पैतृक सम्पत्ति को मानव-जाति को अपनी लिखित शिक्षाओं के रूप में देने के लिए, वे उसे अपने पीछे छोड़ गये हैं। गुरुदेव ने भी ऐसा ही किया है।

ईश्वर करे, इस महान् मौलिक रहस्य का हमारे लिए क्या तात्पर्य है, हम इसे समझने का प्रयास करें। हमारा आध्यात्मिक जीवन, हमारा योग, हमारी साधना और हमारा कर्म किस रूप में चलना चाहिए, इसका ज्ञान हमें होना चाहिए। हमें अपने रूपान्तरण की विधि और उस क्षेत्र की जानकारी होनी चाहिए। हमें यह अनुभव कर लेना चाहिए कि मानव-स्वभाव की यही विशेषता है, यही मानव को उसका जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त कराने में भी सहयोगी होता है और यही मानव के जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित रखवाने का कार्य भी करता है।

सारे महान् शिक्षकों ने इस विषय में सर्वथा इसी प्रकार के सत्य के बारे में कहा है कि 'तुम्हारी साधना का क्षेत्र तुममें ही है। आध्यात्मिक जीवन तुममें है, ईश्वर का निवास तुममें है। वह सब-कुछ भी जो तुम्हें ईश्वर से दूर रखता है, उनके अनुभवों से वंचित रखता है, वह भी तुममें ही है। इतना होते हुए भी कुछ

अबोध मानव मन और इन्द्रियाँ बाहर की ओर भागती हैं, कोई भी आत्मकेन्द्रित नहीं होतीं, सभी बाहर की ओर जाती हैं। और जिस महत्त्व के स्थान और क्षेत्र पर हमारा ध्यान जाना चाहिए, उस पर नहीं ले जातीं।'

हम संसार से कुछ अधिक ही जुड़े हुए हैं और संसार भी हमसे लिप्त है। हम बाहरी दृश्यों में गहराई से लिप्त हैं तथा जो महत्त्वपूर्ण है, जहाँ हमारा ध्यान पूर्ण रूप से जाना चाहिए, उसकी हम अवहेलना करते हैं। हमें यहाँ महत्त्वपूर्ण कार्य करना है, पर हम कहीं और लिप्त हैं।

हम सब इसे अच्छी तरह से जानते हुए भी इस स्थिति को बनाये रखना चाहते हैं। यह बड़े दुःख का विषय है। हम बुद्धिमान् हैं, हम शिक्षित हैं, तो जिस घड़ी हमें पता चलता है कि हमें यह नहीं करना चाहिए या यह करना चाहिए, उसी क्षण हमें उसे सुधार लेना चाहिए। साधक की सच्ची आकांक्षा का लक्षण यही है।

इसीलिए वर्ष में एक बार हमें साधना सप्ताह में भाग लेने का अवसर मिलता है, जब परम पावन गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी से हमारा सीधा सम्बन्ध स्थापित हो कर हम उसे पुनः पुनरुज्जीवित और उसका नवीनीकरण कर लेते हैं। हमें उस अवसर को खोने नहीं देना है। हमें ऊपर उठ कर अपने अन्तर मन में देखना, अपने अन्तर मन में जाना और अपने अन्तर मन में खोजना चाहिए।

ईश्वर करे, परम परमेश्वर की दिव्य कृपा और पावन गुरुदेव का आशीर्वाद हमारे साथ रहे। जब हम हिमालय की तलहटी में गंगा के किनारे पवित्र उत्तराखण्ड के वातावरण में इस एक ही महत्त्वपूर्ण विषय पर साधना करने के लिए यहाँ आये हैं, उसमें हमें सफलता मिले। बस, यही एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है जिसके लिए ईश्वर ने अपनी कल्पनानुसार, अपनी इच्छा से हमारी रचना की कि हम आध्यात्मिक रूप से अपनी क्षमता के अनुसार इसे कार्यान्वित करें। ईश्वर का आशीर्वाद आप सभी को प्राप्त हो!

२३

हमारे जीवन में गुरुदेव

आराध्य दिव्य उपस्थिति को सादर प्रणाम! हम आपके शाश्वत, असीम अस्तित्व के अभिन्न अंग हैं। हम अनिवार्य रूप से आपसे जुड़े हुए हैं। हम आपसे अपना सम्बन्ध भूले बैठे हैं। आप हमारे आदि, मध्य और अन्त हैं। आप हमारे सर्वस्व हैं। भूलवश हमने स्वयं को आपसे दूर कर लिया है। इसी कारण हम आनन्द, शान्ति और प्रकाश से वंचित रह रहे हैं जो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार और हमारा अपना स्वरूप है। हमने इस आत्मानुभव की स्थिति से स्वयं को वंचित कर लिया है और हम अप्रामाणिक, झूठे, बनावटी अनुभवों से भरा जीवन जी रहे हैं जिसमें प्रेम और घृणा, हँसना और रोना, उत्सुकता और तनाव, भय और बन्धन, लड़ना-झगड़ना, आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति, स्वार्थभाव, क्रोध और ईर्ष्या भरी पड़ी है। यह कृत्रिम अवस्था है। यह विषम अवस्था है। यह हमारे लिए स्वाभाविक नहीं है, कृत्रिम है।

इस शान्त वातावरण में, इस क्षण, इस नीरव प्रात:काल में हमारे प्रिय पूजनीय गुरु भगवान् स्वामी शिवानन्द जी की पावन उपस्थिति में हम उनके चरणों में अपनी श्रद्धांजलि और प्रणाम समर्पित करते हैं। हम अपने हृदयतल से, मानवीय मन से, प्रार्थना करते हैं कि यह वियोग, यह प्रतिकूलता, आपसे दूर भागने की इस प्रवृत्ति का अन्त होना चाहिए। सारे कष्ट, विषाद, दुःख, हानि, दुर्दशा, भ्रम, सम्मोहन आदि स्थितियों का मूल कारण अपने स्वरूप की जागरूकता के प्रति, आपके साथ हमारे शाश्वत सम्बन्धों के प्रति सुषुप्ति का कारण, हमारा आपको भूल जाना ही है। आपकी कृपा से उसका अन्त हो जायेगा।

ईश्वर करे, हम पुन: आपके साथ अपनी आन्तरिक दिव्य शाश्वत एकता बनाये रखें। कोटि-कोटि अगणित अर्धसत्यों और प्रकट रूपों के मध्य आप ही

केवल सत्य हैं। ऐसी जागृति आने पर ही हमारा शोक आनन्द में, उत्सुकता और व्याकुलता शान्ति में, भ्रम और अज्ञान बुद्धिमानी में तथा अपूर्ण अस्तित्व पूर्णत्व में अर्थात् ब्रह्मानन्द में परिणत हो जायेगा।

इस ब्राह्ममुहूर्त में हम प्रार्थना करते हैं : **''असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय।''** इस वियोग को समाप्त करो, इसके लिए आपने स्पष्ट रूप से कहा है : **''तम् विद्याद्-दु:ख-संयोग-वियोगं संज्ञितम्''**—कष्ट के साथ संयोग की समाप्ति को योग कहते हैं। योग से सारे कष्ट दूर हो जाते हैं, सारी विपदा समाप्त हो जाती है, ताप-त्रय समाप्त हो जाते हैं। अब रोने-विलाप करने के दिन गये। वहाँ तो आनन्द है, प्रसन्नता है। कृपया हमें उस योग का उपहार दीजिए।

श्रीमद्भगवद्गीता के अमर ज्ञान की शिक्षाओं का यही आह्वान है जिसमें सारे सन्देशों, सभी शिक्षाओं, सभी ईश्वरीय आदेशों में यही कहा गया है कि तुम ही नारायण हो और अर्जुन के माध्यम से नरों को आह्वान है—**''तस्माद्योगी भवार्जुन''** और स्वामी शिवानन्द जी के रूप में आपने पुन: यह आह्वान किया है—''आओ, आओ, योगी बन जाओ, तुम क्यों रोते और विलाप करते हो? तुम क्यों इस बन्धन को दूर तक खींचना चाहते हो? आओ, योगी बन जाओ।'' ऐसा उनका आह्वान था। बीसवीं शताब्दी के आधुनिक मानव के लिए श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने सनातन आह्वान की पुनरावृत्ति की है।

पूजनीय आध्यात्मिक उपस्थिति, गुरुदेव आप ही हमारे प्रकाश और जीवन के मार्गदर्शक हैं। आप अपने आह्वान से हमें बार-बार इसी प्रकार सावधान करते रहिए। आपके चरणों में हमारी यही प्रार्थना है। उन सभी साधक आत्माओं के लिए जो आपकी उपस्थिति में, आपकी गुरुकृपा से आकृष्ट हो कर हर दिन की प्रात: वेला में आपके आश्रम के इस समाधि हाल में यहाँ उपस्थित हुए हैं, उनके लिए आपसे यही प्रार्थना है।

प्रकाशवान् आत्माओ! हम पुण्यतिथि की वार्षिक आराधना के निकट हैं। गुरुदेव अपने पीछे जो दायित्व हमारे ऊपर सौंप कर गये हैं, हम उसी पर

चिन्तन करते रहे हैं। गंगा के किनारे स्थापित मूल्यवान् अमूल्य आश्रम के रूप में हमें आपने जो सुविधा दी है, हम उस पर विचार करते रहे हैं। यह एक वास्तविकता है, यह एक अनुभव है; ठोस, साकार एक सारगर्भित तथ्य है। कोई इसे नकार नहीं सकता। यह भवन भक्ति, ज्ञान, ध्यान, कर्मयोग, परोपकार और सेवा की सुविधा प्रदान करता है तथा यहाँ पर ज्ञान-गंगा में स्नान करने के लिए प्रेरक, आत्म-जागृत करने वाला, प्रकाशित करने वाला, अनुदेश देने वाला आध्यात्मिक साहित्य है। उन्होंने हमें जीवन के आदर्श और दृष्टान्त भी दिये, जिन्हें वे 'दिव्य जीवन' कहते थे। यह जीवन केवल स्थूल शारीरिक जीवन नहीं अथवा सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक जीवन नहीं दिव्य जीवन है, एक ऐसा जीवन जो हमारे स्वरूप से विशेषित है, हमारे पूर्णतया आन्तरिक स्वभाव से विशेषित, एक ऐसा जीवन जो केवल हमारी अनावश्यक उपाधियों की ही अभिव्यक्ति नहीं है, प्रत्युत एक ऐसा जीवन है जो देवत्व की अभिव्यक्ति है, जो हम सबका आभ्यन्तर सत्य है। उन्होंने हमें आदेश और सन्देश दिया—"तुम जिसके लिए आये हो, अपना जीवन दिव्यता से व्यतीत करो, यदि तुम अपनी उपाधियों को प्रकट करते रहोगे, तो तुम अपने-आपको प्रकट नहीं कर रहे हो।"

देवत्व की ओर अग्रसर होने के लिए धर्मशास्त्रों के सारतत्त्व को सुव्यवस्थित स्वरूप दिया। गुरुदेव ने कहा : "उसकी नींव है—सत्य और दया तथा सार्वभौम प्रेम। आकार है—सतत निःस्वार्थ सेवा, भक्तिपूर्ण आराधना, अनुशासन, एकाग्रता, ध्यान, सतत आत्म-निरीक्षण, आकांक्षा, जिज्ञासा, मुमुक्षुत्व, विचार, विवेक, अभिव्यक्ति से परे सत्य की प्रकृति का निरीक्षण, नित्य परिवर्तनशील, मिथ्या नाम और रूप (जो मात्र अभिव्यक्ति हैं) से परे सच्चिदानन्द तत्त्व में लीन होना; क्योंकि वह नित्य है, शाश्वत है, ज्योतिर्मयी आत्म-चेतना से उद्भासित है, ज्ञान स्वरूप है, प्रकाश स्वरूप है और जो वास्तव में अत्यन्त प्रिय है, आनन्द स्वरूप है।"

एवंविध, सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य की नींव पर उन्होंने सेवा, भक्ति, ध्यान और आत्मज्ञान का एक उत्कृष्ट आकार हमें प्रदान किया है। पर उनकी

एक अनोखी प्रेरणा हमें हमारी एक नयी पहचान के रूप में मिली है। उन्होंने कहा—"तुम यहाँ केवल एक यात्री के समान घूमते रहने के लिए नहीं हो, कहीं खाई में गिरने के लिए नहीं हो, पाँचों इन्द्रियों रूपी डाकुओं से घात लगा कर लुटने के लिए नहीं हो; बल्कि उससे हट कर तुम यहाँ सर्वोच्च ईश्वर से मिल जाने के लिए हो। तुम उनके सान्निध्य में रहो। जीवन का वास्तविक अर्थ यही है। ईश्वर से बिछुड़ने और एक बार फिर उनसे मिलने की यात्रा है। तभी दुःख आनन्द में परिणत होगा। दुःख से संयोग समाप्त करने के लिए योगी बन जाओ।"

इस प्रकार उन्होंने हमें ऐसी पहचान दी है—"तुम सभी योगी हो, तुम्हें योगी के समान जीवन यापन करना है। जीवन ही योग है। उनसे पुनः एकत्व प्राप्त करने की प्रक्रिया ही जीवन है। वह संयोग, वह आन्तरिक सम्बन्ध जिसने तुम्हारे ईश्वर होने के दैवी स्रोत से टूटी हुई कड़ी को खो दिया है। इसलिए योगी के रूप में रहने के लिए अपने-आपको जागरूक रखो।"

और यह नयी पहचान वास्तविक रूप में व्यावहारिक जीवन पर आधारित थी। केवल अपने-आपको योगी मान लेना ही पर्याप्त नहीं है। व्यावहारिक योगी बनो। योग-साधना का अभ्यास करो। साधक बनो। और कुछ बनने के स्थान पर योगी बनो। चाहे तुम वकील, इंजीनियर, डाक्टर, प्रोफेसर, शिक्षक, टैक्सीचालक, व्यवसायी या दुकानदार हो, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। साधक बनो। मेरे प्रिय बच्चो! सच्ची साधना करो, साधना करो, सच्चे साधक बनो, अपने-आपको आध्यात्मिक साधना में व्यस्त रखो। अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन का इसे अंग बन जाने दो। दिन का प्रारम्भ साधना के साथ करो और अन्त भी साधना के साथ करो। दिन-भर के सारे कार्य-कलाप सब साधना के भाव से पूरे करो—"**यत् यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्**" (मैं जो-कुछ भी कर्म करूँ, हे ईश्वर ! मैं सब आपको समर्पित करके करूँ। यही मेरी पूजा है)।

बीसवीं शताब्दी की अखिल विश्व की भाग्यशाली मानव-जाति के लिए गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी का यही अनोखा उपहार है। और आप सबमें

सबसे भाग्यशाली वे हैं जो इस प्रकार के उपहार के लिए सीधे-सीधे उनके सामने थे तथा उन्होंने उस प्रकार की साधना का जीवन-निर्वाह करने का निश्चय किया। तुम्हीं साधक हो, तुम्हीं योगी हो। उन्होंने इसी रूप में नया जीवन प्रदान किया है। भ्रान्त पहचान को हटा कर यही नयी पहचान उन्होंने आपको दी : "मैं यह हूँ, मैं वह हूँ, मैं अमुक व्यक्ति हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं ब्राह्मण-क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य-शूद्र हूँ, मैं ब्रह्मचारी-संन्यासी-वानप्रस्थी हूँ।" इन सबसे ऊपर उन्होंने आपकी पहचान करायी—"मैं योगी हूँ, मैं ईश्वर से अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहता हूँ। मैं साधक हूँ; मेरा जीवन साधना के लिए है। मेरा जीवन साधना से भरा हुआ होना चाहिए। यदि साधना मेरे से छिन गयी, तो मैं शून्य हूँ। उसे मेरे जीवन का अन्त समझो, मेरे जीवन में कुछ नहीं बचा समझो। मैं शव के समान हूँ।" उन्होंने इस प्रकार की पहचान हमें साधक, योगी, भक्त, परोपकारी, ध्यानी, वेदान्ती बनने के लिए दी। वेदान्ती बन जाओ। हाड़-मांस के इस पिंजरे में से ओंकार की ध्वनि की गूँज चारों ओर फैल जाने दो। वह यही चाहते थे।

इस प्रकार उन्होंने हममें नयी चेतना प्रदान की, पूर्ण रूप से ईश्वर के साथ सम्बन्ध की नयी पहचान दी, सीधे-सीधे ईश्वर के साथ जुड़े रहने की नयी चेतना जगायी। पर उस सबसे ऊपर उन्होंने हमें जो पहचान करायी थी, वह थी—"योगी के समान जियो, साधक के समान जियो।" यही तुम्हें उनसे उत्तराधिकार के रूप में मिला है। यही उन्होंने अपने पीछे छोड़ा है। अमूल्य निधि, एक मूल्यवान् थाती जिसका मूल्य जाँचा नहीं जा सकता, उसे सोने-चाँदी और अमूल्य रत्नों के रूप में आँका नहीं जा सकता। वह अतुल्य है, अमूल्य है।

इस प्रकार सम्मिलित रूप में हमें गुरुदेव के चरणों में आदरपूर्वक प्रणाम करके उस महापुरुष को प्रेम के साथ श्रद्धांजलि अर्पित करनी चाहिए, जिन्होंने प्राचीन घोषणा का प्रतिनिधित्व किया, जिसे 'गीता' में भी सुन सकते हैं। उन ज्ञान-उपदेशों को उन्होंने इस बीसवीं शताब्दी में पुनः जागरित करके योगी

वाणी प्रदान की—''आओ, आओ, योगी बन जाओ; इसी जीवन में आत्मोपलब्धि, ईश्वरोपलब्धि प्राप्त करो।''

इसीलिए गुरुदेव हमारे लिए आये थे। इसीलिए वह उन लोगों के सदा अपने बने रहेंगे जो सच्चाई के साथ इस पर मनन करते हैं तथा यह खोजने का प्रयास करते हैं कि हम उनके कौन हैं, हम किस रूप में उनसे सम्बन्धित हैं, उन्होंने अपने जीवन और उपदेशों के रूप में हमारे लिए क्या किया। इस महासमाधि दिवस पर हम इस मास की चौबीस तारीख को उस व्यक्ति के जीवन और उनकी शिक्षाओं के रूप में मनाने की तैयारी कर रहे हैं। हमें पूर्ण रूप से उनके गुणों की प्रशंसा करनी चाहिए कि वह व्यक्ति कौन है जिसके महासमाधि दिवस का आयोजन हम गुरुपूर्णिमा के पश्चात् की नवमी को करते हैं। आप सबको ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त हो!

२४

जीवन का महत्त्व

हम जीवन में चिन्तन कभी नहीं छोड़ते। हम सदा बहिर्मुखी हो कर बाहरी क्रियाओं में लिप्त रहने से कभी नहीं रुकते। उसी को हम वास्तविक जीवन मानते हैं। हम एक क्षण के लिए भी जीवन-स्रोत से बाहर आ कर, किनारे पर खड़े हो कर जीवन को उस कोण से देखने के लिए भी नहीं रुकते।

किनारों की गति कभी आगे बढ़ने की नहीं होती। किनारे कभी परिवर्तित नहीं होते। नदी का प्रवाह निरन्तर होता रहता है; पानी निरन्तर बदलता रहता है। केवल कुछ क्षण के लिए भी तुम उसी नदी को पुन: नहीं देख सकते। एक क्षण पहले जो नदी तुम्हारे सामने थी, वह अब वहाँ नहीं है। तुम्हारे सामने नदी का कोई और रूप है। पहले वाला रूप तो चला गया।

ऐसा ही जीवन के साथ भी होता है। तुम भी नित्य परिवर्तित हो रहे हो। यदि तुम नदी में से बाहर आ कर, किनारे पर खड़े हो कर उसकी गति का निरीक्षण करते हो, तभी तुम उसे तथा उसके प्रवाह को अच्छी तरह से समझ सकते हो। तुम्हें कुछ देर के लिए रुकना पड़ेगा और जीवन पर विचार करना पड़ेगा। तुम्हें निरन्तर भागने की गति को थोड़ी देर के लिए रोकना ही होगा।

जुलाई १९६३ के अन्तिम दिन हमने गुरुदेव की षोडशी पुण्यतिथि के अवसर पर बड़े भव्य रूप से आराधना की। १४ जुलाई १९६३ से पहले की अपेक्षा पहली अगस्त १९६३ से हमारा जीवन सर्वथा भिन्न प्रकार का था। हमने उस नये जीवन का सामना कैसे किया? क्या हम उस नये जीवन का सामना कर पाये? उस समय हमारे मन की अवस्था कैसी थी? उस समय कौन से विचार और भाव हमारे मन में भरे पड़े थे? हमने अपने भविष्य का आकलन किस रूप में किया?

अनेकों वर्षों से हम उस एक ही नाटक के खेल को, समाधि पर बड़े भव्य रूप से पूजा करके खेल रहे हैं। हम उसी दिन के वातावरण को पुन: निर्मित करते हैं। हम उस अनुभव को छोड़ कर फिर से परिवर्तित हो कर भविष्य की ओर बढ़ते जाते हैं। जैसा कि हमने पहली जुलाई १९६३ को किया था, उस दिन और आज के दिन में बड़ा अन्तर है। उस समय लग रहा था कि अब हमें अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा, उस समय हमने अनुभव किया था कि हमें आत्म-निर्भर होना पड़ेगा; क्योंकि हम अपने भाग्य के स्वयं विधाता थे, हम स्वयं अपने भविष्य को गढ़ने वाले थे। हमें अपने-आपको गुरुदेव की शिक्षाओं और उनके उदाहरणों के आधार पर अपने उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने के लिए, उस कार्य को सम्पन्न करने के लिए व्यस्त रहना था। हमें अपना भविष्य आध्यात्मिक बनाना था; क्योंकि हमारा भविष्य समय की सीमा में बँधा हुआ नहीं था। यह ऐसा भविष्य था जो हमारे आध्यात्मिक विकास के रूप में होना था।

उस दिन का आयोजन हर वर्ष होता है। उस खेल को फिर से खेला जाता है। हम उस महत्त्वपूर्ण क्षण से मुक्त होने का प्रयास करते हैं। पर उस आयोजन के घट चुकने के बाद क्या वह हमें भावशून्य छोड़ता है? जैसे हम पहले थे? या फिर वह हमारे भीतर कुछ और भाव छोड़ कर जाता है? इस सब पर विचार करना है। यदि विचार करने के पश्चात् हमें लगता है कि कोई नयी जागृति हममें नहीं आयी है, कोई नयी आकांक्षा हममें जागृत नहीं हुई है, तब फिर ऐसे आयोजन, मात्र यान्त्रिक क्रिया के समान हैं जिसे हम बस प्रतिवर्ष मनाते चले जायें। समस्त बाह्य दिखावट के बाद आन्तरिक रूप से पूरी रिक्तता है। यह सब स्वचालित रूप से पुनरावृत्ति के रूप में चलता रहता है, पर वह हमें कहीं आगे नहीं ले जाता तथा उससे हमारा कुछ भी उत्थान नहीं होता, तो उस दिन के आयोजन का कोई लाभ ही नहीं रहता। वार्षिक रूप से इस प्रकार के आयोजन के पीछे हमारे पूर्वजों ने जो उद्देश्य रखा था, वह पूरा नहीं हो सकेगा। उस उद्देश्य को हानि पहुँचेगी।

कल का दिन ऐसा ही था। ईश्वर करे, आप उसके महत्त्व को समझें। ईश्वर करे, आप इस परम्परा के पीछे की भावना को समझ जायें। ईश्वर करे, आप इस प्रकार वार्षिक रूप से मनाये जाने वाले आयोजन के उद्देश्य को समझ जायें। ईश्वर करे, आप अपने लिए तथा अपने जीवन के लिए इसके महत्त्व को समझ जायें। ईश्वर करे, आप जीवन के महत्त्व को समझ जायें। यही एक वस्तु है जिसका हमारे अपने जीवन में हमें प्रभावपूर्ण ढंग से चिन्तन करना चाहिए, जीवन सफलतापूर्वक जीना चाहिए। उसका ज्ञान प्राप्त करके उसके अनुरूप जीवन जीना ही बुद्धिमत्ता है। सद्गुरु भगवान् इस रूप में आपके जीवन के लिए गहराई के साथ आपको बुद्धिमत्ता प्रदान करें और आप उसके अनुरूप जीवन यापन कर सकें!

२५

क्या गुरु का कभी देहावसान होता है?

इंग्लैण्ड के राजतन्त्र में एक महान् परम्परा है कि 'सिंहासन कभी रिक्त नहीं रहेगा; देश कभी भी बिना राजा के नहीं रह सकता।' मरणासन्न राजा के अन्तिम श्वास लेते ही तुरन्त उत्तराधिकारी को राजा बना दिया जाता है और घोषणा की जाती है—"राजा की मृत्यु हो गयी है। राजा की दीर्घायु हो!" यह अयुक्ताभास लगता है, पर नहीं : राजा की मृत्यु हो गयी है, पर राजा अनुपस्थित नहीं है, क्योंकि उत्तराधिकारी ने उस राज्य के राजा के रूप में स्थान पा लिया है।

इस घोषणा पर विचार करो, "राजा की मृत्यु हो गयी है, राजा की दीर्घायु हो।" जब लौकिक व्यवस्था में राजा एक क्षण के लिए भी अनुपस्थित नहीं रहता, तो क्या आध्यात्मिक क्षेत्र में इस प्रकार का अभाव रह सकता है? क्या उनकी उपस्थिति की खोज होती है? क्या हम इस सोच के लिए हैं कि हम बिना गुरु के हैं, गुरु का देहावसान हो गया है? गुरु था और अब नहीं है? क्या हम इंग्लैण्ड की सकारात्मक परम्परा से किसी प्रकार कम हैं? क्या लौकिक तन्त्र एक पग आगे है और हम एक पग पीछे हैं? यह चिन्तन हास्यास्पद है कि ऐसा भी हो सकता है।

गुरु कभी गतप्राण नहीं हो सकते; क्योंकि वह अपने शिष्यों के माध्यम से जीते हैं। वह इसीलिए इतना जीवन्त हैं कि वह अपने आदर्शों, अपने विचार, दृष्टि-प्रवृत्ति और धर्मबुद्धि के रूप में अपने शिष्यों के माध्यम से अपना जीवन व्यतीत करते हैं। जीवन के लक्ष्यों और उद्देश्यों को पाने के लिए निरन्तर अथक परिश्रम करते रह कर शिष्य अपने गुरु को जीवित रखते हैं। मोमबत्ती का चमकता हुआ प्रकाश दूसरी मोमबत्ती को प्रकाश देने पर उसका प्रकाश कभी कम नहीं होता। यह स्वयं बुझ कर कभी दूसरी मोमबत्ती के माध्यम से पूर्ण प्रकाश के साथ प्रकाशित रहती है।

इसका ध्यानपूर्वक मनन करो। तुम ही वह व्यक्ति हो जिसके माध्यम से गुरु जीवित हैं। यह गौरव की बात है। तुम्हें यह सुविधा मिली है। यह एक बड़े सौभाग्य की बात है। यह एक उत्तरदायित्व भी है; यह एक कर्तव्य है; यह एक सत्य है जिसे समझ कर उसे सदा मन में रखना है—"मुझे उसी प्रकार का जीवन-निर्वाह करना चाहिए, जैसी गुरु ने मुझे शिक्षा दी थी। मुझे उसी प्रकार का जीवन जीना चाहिए, जैसा मेरे गुरु जीते थे।" पर...

किसी भी तरह से 'लेकिन' तो सदा रहता ही है। तुम अपनी पहली घोषणा को फिर से 'लेकिन' नहीं कर सकते; लेकिन गुरुदेव ने वस्तुतः स्वयं अनेकों बार कहा है—"जो मैंने किया है, उसे मत करो; पर जैसा मैं कहता हूँ, वैसा करो। जो मैं तुमसे कहता हूँ, वैसा करो। मैंने तुम्हें कुछ निर्देश दिये हैं, उनका पालन करो। मेरी नकल करने की आवश्यकता नहीं है। तुम मेरी समानता कर सकते हो। तुम मेरे स्वभाव के अनुरूप अपना स्वभाव, चरित्र, मेरे-जैसी उदात्त आदर्श दिनचर्या, मेरे-जैसा आध्यात्मिक व्यक्तित्व बना सकते हो। पर मेरी नकल मत करो। स्पर्धा करो। जिज्ञासा करो।"

नकल करना और स्पर्धा करना, यह दो शब्द हैं। प्रत्येक शिष्य को इन दोनों के बीच के भेद को समझ लेना चाहिए। शंकराचार्य ने अपने सिर पर अपने कपड़े को एक प्रकार से रखा था। आज बहुत से व्यक्ति उस प्रकार से अपने सिर पर कपड़ा रख कर उनकी नकल करते हैं। इसे शिष्यत्व नहीं कहते, इसे आध्यात्मिक समानता नहीं कह सकते; उन्होंने अपनी पुस्तक 'विवेकचूडामणि' और 'आत्मबोध' लिखते समय ऐसा नहीं सोचा होगा कि वह उसे इस रूप में लेंगे। उन्होंने पहनावे की नकल करने के लिए नहीं लिखा होगा। यदि इस रूप में गुरु के समान रहने का निश्चय करेंगे, तो आपको बुरी तरह से असफल होना पड़ेगा।

गुरु तुम्हारे हृदय में निवास करते हैं, उनका उदात्त आशीर्वाद, उनकी आध्यात्मिक शिक्षाओं की गूँज तुम्हें अपने भीतर आध्यात्मिक विकास के रूप में करनी चाहिए। उनके चरित्र और आचरण की उदात्तता तुम्हारे मन में बसनी चाहिए। उनका दिव्य स्वभाव तथा जैसा दिव्य जीवन उन्होंने जिया है, वैसे ही

तुम्हें रहने के लिए अपना मन बनाना चाहिए। तुम्हें देख कर ही तुम्हारे गुरु के देवत्व की पहचान हो जाये, ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहिए।

गुरुदेव ने इसीलिए कहा है—"मैंने तुमसे जो-कुछ कहा है, वह करो। वह मत करो जो मैं करता था; क्योंकि मैं उसे दूसरे स्तर से करता था।" गुरुदेव ने यह भी कहा था—"आदर करने की अपेक्षा आज्ञा-पालन अच्छा है।" इसी प्रकार यदि शिष्य अनुकरण और स्पर्धा दोनों के भेद को जानता है, तो उसे उत्साह के साथ अनुकरण और आज्ञा-पालन करना चाहिए, तब गुरु का देहावसान कभी नहीं होगा। जब तक आप सब उनके-जैसे सच्चे संघर्षरत, सदा अपने विचारों, शब्दों और कार्यों से उनकी शिक्षाओं के सारतत्त्व को ग्रहण करके दिव्य जीवन के पथ पर चलने के लिए तत्पर हैं, तब तक गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी जीवित रहेंगे।

कौन कह सकता है कि स्वामी शिवानन्द जी थे और अब नहीं हैं। वह हैं तथा सदा रहेंगे। क्यों? क्योंकि आप सभी उनका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, उनका प्रकाश अब आपका प्रकाश है; उनका उत्तम पक्ष, उनका दिव्य जीवन सभी कुछ अब आपका अंग है। इसलिए वह जिस प्रकार से रहते थे, उसी स्वरूप को उनके शिष्य, सैकड़ों-सहस्रों व्यक्तियों को उस प्रकार से रहने की प्रेरणा दे रहे हैं।

यह एक बहुत बड़ी सुविधा है। यह एक महान् गुरु-सेवा है। आप भी इसी प्रकार से स्वयं को व्यस्त रखें। ईश्वर करे, आप हर चरण पर विवेक के साथ उत्साहपूर्वक उनका अनुकरण करते रहें। ऐसा न हो कि उनकी नकल करते हुए कहीं मार्ग से भटक न जायें।

यदि इंग्लैण्ड के लिए राजा नहीं मर सकता, तो आध्यात्मिक संसार में गुरु भी कभी नहीं मर सकता। शिष्य गुरु के प्रकाश को सुरक्षित रखता है। गुरु की प्रेरणा, ज्ञान की शिक्षाएँ अनन्त काल तक मानव-समाज के सभी मनुष्यों में पूरी तरह से गुरु को उपस्थित रखेंगी।

गुरु अपने प्रत्येक शिष्य के माध्यम से प्रकाशित हो कर जीवित रहते हैं। इसीलिए आप सभी स्वामी शिवानन्द जी के आदर्श और दिव्य जीवन के

जीवित प्रकाश हैं। ईश्वर करे, परमेश्वर और गुरुदेव की कृपा और आशीर्वाद से आप बड़े प्रभावशाली ढंग से पूर्णतया सफलता के साथ सारी मानव-जाति के कल्याणार्थ ऐसा करने में सफल हों!

२६

उपासना नहीं, आज्ञा-पालन

भारत की पवित्र धरती के प्राचीन आत्मज्ञ मनीषियों और सन्तों ने यह घोषणा की थी कि तुम्हारे जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य, तुम्हारे अस्तित्व का प्रयोजन मोक्ष-प्राप्ति है। मोक्ष—शारीरिक और सांसारिक बन्धनों से, जो कष्टप्रद हैं। वे इसे मोक्ष कहते थे। इसे प्राप्त करने के लिए वे कहते थे कि तुम्हें परिश्रम करना पड़ेगा, तुम्हें ऊपर उठने के लिए कुछ करना होगा, तुम्हें आवश्यक प्रयास करने होंगे।

इसलिए उन्होंने सर्वोच्च प्राप्ति को प्रयास से मिला दिया, जिससे जीवन सफल और पूर्ण हो सकता है। तुम्हें प्रयास करना चाहिए! आप सभी प्राणियों के लिए यही उनकी घोषणा है। आपको प्रयास करना चाहिए, पुरुषार्थ करना चाहिए। सर्वोच्च अवस्था प्राप्त करने के लिए यदि प्रयास ही साधन है, अभ्यास ही साधन है, साधना ही साधन है, तो हम शान्त नहीं बैठ सकते। हमें आवश्यक प्रयास करने चाहिए, ऐसी उक्ति है।

पुनश्च, इसके लिए क्या आवश्यक है, यह सारे शास्त्रों, सारी शिक्षाओं और सारे सन्तों की कही गयी बातों का सार है। उन्होंने अनेक साधनों की व्याख्या की है : किस प्रकार अपने मनोभावों, विचारों, अपने मस्तिष्क की शक्ति, बुद्धि, समझदारी, विवेक, खोज और परीक्षण करके, किस माध्यम से तुम उन्नति कर सकते हो तथा किस प्रकार अपनी शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से, नाम के माध्यम से तथा सभी के सम्मिलित प्रयास से तुम उसे साध सकते हो। सारे शास्त्र पृथक्-पृथक् प्रकार से हमें बताते हैं; परन्तु सभी यही कहते हैं कि तुम्हें ही सब-कुछ करना है, उसे तुम केवल अभ्यास से ही पा सकते हो।

दूध में मक्खन है। जब तक आवश्यक प्रयास नहीं करोगे, मन्थन नहीं करोगे, तब तक दूध-दूध ही रहेगा। उसमें से मक्खन कभी नहीं निकल सकता।

यह तो तभी निकलेगा, जब तुम आवश्यक प्रयास करोगे। प्रयास करने पर दूध की ऊपरी सतह पर वह आ जाता है। तब तुम सरलता से उसे निकाल सकते हो। यह एक चेतावनी है।

प्रयास के साथ-साथ तुम्हें आवश्यक कार्य करना है—तुम्हें पुरुषार्थ, अभ्यास, साधना करनी है। जो तुम्हारी सफलता में बाधक है, तुम्हें वह कुछ नहीं करना है। यदि जीवन में सफलता चाहते हो, तो तुम्हें क्या करना है? यदि तुम्हारा प्रयास हितकर हो, उसके लिए तुम्हें यह भी देखना होगा कि तुम्हें वह कार्य नहीं करने हैं जो तुम्हारी सफलता के प्रयत्न में बाधक होंगे।

ऐसा नहीं हो सकता कि एक ओर तो आप अपने पेट के अलसर की चिकित्सा करा रहे हैं और दूसरी ओर शराब भी पी रहे हैं, एक ओर आप मधुमेह का इलाज करा रहे हैं और दूसरी और मन भर कर मिठाई खा रहे हैं, एक ओर आप क्षयरोग का इलाज करा रहे हैं और दूसरी ओर सिगरेट पिये जा रहे हैं। क्योंकि आप अपने को स्वस्थ रखने के लिए जितने प्रयास कर रहे हैं, उसके लाभ मिलने के स्थान पर वह सब विफल हो रहे हैं।

हमारे पूर्वजों के मन में सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त करने की लालसा थी। दिव्य रूप से पूर्ण व्यक्ति बनने के लिए और इस प्यास को बुझाने के लिए, स्वयं को पूर्ण रूप से इस कार्य के प्रति समर्पित करके वे एकान्त-वास के लिए वन गये। वहाँ गहन तपस्या की। उनका आहार केवल पत्तियाँ और पानी ही था। उन्होंने ऐसा कुछ नहीं खाया, जिससे उनके मनोभावों को उत्तेजना मिले : थोड़ा-सा भी अचानक प्रलोभन मिलने से इस प्रकार के व्यक्तियों का आध्यात्मिक क्षेत्र में पतन हो सकता है, तो फिर उन लोगों का क्या होगा जो हर प्रकार का गरिष्ठ भोजन करते हैं, नरम गद्दे-तकिये पर सोते हैं, सारी सुख-सुविधाओं में रहते हैं। कोई तपस्या नहीं, कोई मिताहारिता नहीं, कोई आत्म-दमन नहीं, कोई आत्म-वंचना नहीं; कोई प्रार्थना, व्रत, उपवास नहीं, कोई जागरण नहीं? फिर तुम कैसे अपेक्षा रख सकते हो कि ऐसा व्यक्ति साधक हो सकता है। जो ऐसा जीवन यापन कर रहा है, जिसमें इन्द्रिय-तोष, इच्छाओं की पूर्ति, अच्छा

भोजन, सुख-सुविधा सब-कुछ है, क्या उसका पतन नहीं हो सकता? क्या तुम आशा कर सकते हो कि ऐसे मनुष्य प्रकाश प्राप्त करेंगे ?

साधक के लिए जो निर्देश दिये गये हैं, उसके विपरीत यदि कोई अच्छा गरिष्ठ खाना खा कर, अच्छे कपड़े पहन कर, अच्छी सुख-सुविधा में रह कर, विलासिता का जीवन व्यतीत करके आत्मोपलब्धि पा लेता है, तब तो हिमालय भी हिन्द महासागर में तैर सकता है। इसी सन्दर्भ में प्राचीन संस्कृत श्लोक में कहा गया है : विश्वामित्र और पराशर-जैसे मुनि जंगल में ध्यानमग्न रह कर केवल वायु, पत्ते तथा पानी का सेवन करके तपस्या में लीन रहते थे। यदि प्रलोभन मिलने पर इनके-जैसे मनुष्य का पतन हो सकता है, तो क्या तुम सोच सकते हो कि जो पूर्ण सुख-सुविधापूर्ण जीवन व्यतीत करता है, अच्छा भोजन करके आत्मोपलब्धि कर सकता है? यदि वे प्राप्त कर सकते हैं, तो महान् आश्चर्य की बात है! फिर तो कुछ भी असम्भव नहीं है, सब-कुछ हो सकता है। आग की लपटें नीचे की ओर बढ़ेंगी। सूर्य पश्चिम से उदित हो कर पूर्व में अस्त हो सकता है। गंगा का प्रवाह हिमालय की ओर होगा। हिमालय को सागर में फेंक दिया जायेगा, वह खुशी-खुशी उसमें तैरता रहेगा। ऐसा इस श्लोक में कहा गया है।

मुक्ति पाने के लिए प्रयास, पुरुषार्थ, अभ्यास, साधना के साथ-साथ आत्म-संयम और आत्म-निरोध का अभ्यास भी करना चाहिए। ऐसा सभी महान् पुरुषों ने कहा है तथा शास्त्रों ने भी यही बताया है। वे हमें बताते हैं कि हमें क्या-क्या करना चाहिए, क्या नहीं।

महर्षि पतंजलि का ज्ञान यहीं से प्रारम्भ होता है। उन्होंने यम-नियमों की सूची दी है। उनका कहना है : **अहिंसा**—कभी किसी को कष्ट मत दो। **ब्रह्मचर्य**—भोग-विलास, निम्नवृत्तियों में डूबे नहीं रहना। आदर्श बनो, सूक्ष्म बनो, सत्त्वगुण में ऊपर उठो। **सत्य**—सदा सच बोलो। इसका अर्थ यह भी है कि कभी झूठ मत बोलो। ऐसा नहीं है कि तुम अपनी सुविधानुसार कभी सच बोल लो और कह दो कि मैं तो पातंजल योगसूत्र के आधार पर अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। जब वे कहते हैं कि सच बोलो, इसका अर्थ है—सत्य,

केवल सत्य। यह झूठ के साथ-साथ नहीं चल सकता। जब तुम्हारी सुविधा है, तब बोल दिया। तुम 'कभी यह, कभी वह' का खेल नहीं खेल सकते।

जीसेस मछुआरे से जो कहते हैं, उसका तात्पर्य भी यही है—''उठो, मेरा अनुगमन करो।'' यह एक बड़ा ही सरल वाक्य है; पर सारगर्भित है—''आओ, आओ! जैसा तुम कर रहे हो, वैसा करने से रुको! इस स्थिति का अन्त कर दो! इसे बदल डालो! अपना रूपान्तरण करो! उठो! इससे बाहर निकल आओ! अब मैं तुमसे कहता हूँ : कुछ और बनो। मेरे पीछे चलो। मेरे-जैसे बनो। जैसा मैं करता हूँ, वैसा करो। मैं तुम्हारे सामने एक उदाहरण हूँ। मेरे चरणचिह्नों पर चलो। जैसे मैं जी रहा हूँ, वैसे जियो। मेरे पीछे-पीछे चलो। मैं तुम्हें सिखा रहा हूँ कि कैसे जीना है। अपनी सनक और कल्पना के सहारे नहीं, मेरा अनुसरण करो।''

इस सार्थक और अर्थपूर्ण घटना के बहुत पहले सारी मानव-जाति के लिए और एक शिक्षक भी अपने शिष्यों से इस प्रकार का व्यवहार करने के लिए कहता था। उन्होंने उनसे बार-बार करने के लिए कहा, तब शिष्य का उत्तर था : ''**करिष्ये वचनं तव**—हाँ, मैं आपकी आज्ञानुसार कार्य करूँगा, मैं आपके शब्दों का पालन करूँगा, आपके आदेशों का पालन करूँगा।'' और वह व्यक्ति जिसकी उपस्थिति में हम इन तथ्यों पर, इन सत्यों पर विचार कर रहे हैं, यह भी वही व्यक्ति है जिसने कहा था—''आदर करने के स्थान पर आज्ञा-पालन अच्छा है।''

तो जब जीसेस कहते हैं—''उठो, मेरा अनुगमन करो'', हमें सोचना चाहिए—हम अब तक जैसे थे, क्या हम उससे ऊपर उठ रहे हैं? क्या हम उसका पालन कर रहे हैं? वह कौन-सा धार्मिक पथ है जो हमें स्वर्ग के साम्राज्य की ओर ले जायेगा? यह वही पथ है जिस पर हमारे सभी प्राचीन महानुभाव चल चुके हैं—''**महाजन येन गतः स पन्थः।**'' क्या तुम इस पर चल रहे हो? क्या तुम इस आदेश का पालन कर रहे हो? तब यही वह दिन है, यही वह सत्य है जिस पर तुम्हें गम्भीरता से सोचना है।

यदि आराधना को सफल बनाना है, यदि भक्ति को सफल बनाना है, यदि आदर को, प्रार्थना को और श्रद्धा को सफल बनाना है, तो आज्ञा-पालन करना चाहिए। गुरु के वचन को ग्रहण करना चाहिए। हम ऐसा कर रहे हैं अथवा नहीं ?

गुरुदेव कहा करते थे—"दिन के अन्त में जब शैया पर सोने के लिए जाते हो, उससे पहले अपनी परीक्षा करो, अपने मन में झाँक कर देखो, गहराई से सोचो, अपने भीतर जा कर खोजो, आत्म-परीक्षण करो।" वे कहा करते थे कि ऐसा प्रतिदिन करना चाहिए। आध्यात्मिक दैनन्दिनी भी रखनी चाहिए। अपने-आपको सुधारने का एक रजिस्टर रखना चाहिए। आत्म-शुद्धि के लिए वे जो उद्धरण देते थे, वह था : "**उद्धरेदात्मनात्मानम्**"—आत्मा से आत्मा का उद्धार करना चाहिए। इसलिए आपको स्वयं ही अपना सुधार करना है। कोई आपकी अशुद्धियों की ओर संकेत तो दे सकता है; पर वह उन्हें सुधार नहीं सकता। तुम्हें ही प्रयास करके अपने-आपको सुधारना है। उन्होंने अपने बीस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक निर्देशों के अन्त में यही कहा था—"सारी आध्यात्मिक साधनाओं का सार यही है। यह तुम्हें मोक्ष की ओर ले जायेगी। यह सारे नियम—आध्यात्मिक तोपों का पालन दृढ़ता के साथ करना चाहिए। तुम्हें अपने मन के साथ मृदुलता नहीं दिखानी चाहिए।"

यदि आप गुरुदेव के निर्देशों का पालन कठोरता से, दृढ़ता के साथ नहीं करते और यदि आप अनुभव करते हैं कि कोई आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो रही है, आपके मन में शान्ति नहीं है, पहले के जैसा कूड़ा-कचरा मन में भरा पड़ा है, तब तुम किसी को दोष नहीं दे सकते। न गंगा, न हिमालय, न ऋषिकेश को। तुम इस बिल्ववृक्षों से आच्छादित वनों के पवित्र वातावरण को दोष नहीं दे सकते। तुम भगवान् विश्वनाथ और इस भजन हाल में होने वाले नाम-संकीर्तन को दोष नहीं दे सकते। तुम समाधि मन्दिर और आध्यात्मिक पुस्तकों से भरे हुए पुस्तकालय को दोष नहीं दे सकते।

तो फिर किसे दोष दिया जाये? तुम अपने-आपको दोष देना नहीं चाहोगे। तुम्हें अपनी अवज्ञा को दोष देना चाहिए। तुम आत्म-स्वरूप हो;

इसलिए तुम्हें दोष नहीं दिया जा सकता—"**अहं ब्रह्मास्मि**"—इस प्रकार यदि तुम अपने को दोष देना नहीं चाहते, तो अपने पापों की चूक और उसे करने को दोष दे दो। उसके बाद उन पापों को करना बन्द कर दो। और उन पापों के लिए अपने-आपको सुधारने का प्रयत्न करो। कोई-न-कोई तो अपने ऊपर दोष लेगा ही। कहीं-न-कहीं तो कारण होगा ही। यदि चलने में परेशानी हो रही है, तो यह समझना चाहिए कि जूता काट रहा है, या फिर तुम्हारे पैर में काँटा चुभा है, जब तक कोई कारण नहीं है, तब तक उसका प्रभाव पता नहीं चल सकता। उसे खोजो। समस्त आश्चर्यजनक उदात्त शिक्षाओं के होते हुए भी तथा ऐसा आश्चर्यजनक वातावरण होने पर भी हम अनुभव करें कि हमारा आध्यात्मिक विकास नहीं हो रहा है, तब यह तो निश्चित है कि इसका उत्तरदायित्व इस पवित्र वातावरण को नहीं है। और श्री कृष्ण, जीसेस, चिदानन्द को दोष देने से भी कोई लाभ नहीं है। सबसे पहले अपने जीवन को देखो।

"उठो, और मेरा अनुगमन करो।" क्या तुम महान् पुरुषों का अनुसरण कर रहे हो? "**करिष्ये वचनं तव**"—ओ भगवान्, मैं आपके वाक्यों का पालन करूँगा, मैं आदेश को मानूँगा। "आदर करने की अपेक्षा आज्ञा-पालन उत्तम है", गुरुदेव कहते थे, "सच्ची साधना करो, मेरे प्रिय बच्चो, सच्ची साधना करो, यदि तुम ब्रह्म-विचार नहीं करते, तो किस प्रकार तुम मन की सच्ची शान्ति की अपेक्षा कर सकते हो? यदि तुम योग-साधना नहीं करते, तो तुम किस प्रकार सच्ची शान्ति की अपेक्षा कर सकते हो?"

मेरे प्रिय साधको! ईश्वर के भक्तो! धर्मपरायणो! सत्संगियो! आज अनुभव करो कि सफलता और असफलता के उद्गम का तुम्हें अपने अन्तर में, अपने स्वभाव में, अपने जीवन में तथा जो जीवन तुम जिस प्रकार से जी रहे हो, तुम्हारा आचरण, तुम्हारा चरित्र और तुम्हारे कार्य, तुम्हारे दिन-प्रतिदिन का जीवन, इन्हीं सबमें तुम्हें खोजना है।

संसार में जहाँ-कहीं आध्यात्मिक प्रगति में कुछ कमी हो रही हो, उसमें तुम उसके कारण को नहीं खोज सकते। तुम्हें अपने अन्दर खोजना है। चिन्तन

करो। मनन करो। व्याख्या करो। विनीत बनो। सरल बनो। अपने प्रति ईमानदार रहो। सच्चे बनो। निष्कपट बनो। परिश्रमी बनो। गम्भीर बनो। सच्चाई का साथ दो।

स्वामी शिवानन्द जी से कहने के लिए आज का दिन सबसे अनुकूल है, समय भी उचित है। ''हाँ, पावन गुरुदेव! जिस प्रकार मैं आपका आदर करता हूँ, ठीक उसी प्रकार मैं आपकी आज्ञा का पालन भी करूँगा, मैं कठोरता से आपके आध्यात्मिक निर्देशों और शिक्षाओं का पालन करूँगा। जो-कुछ भी आवश्यक है, वह सब-कुछ मैं करूँगा। जो नहीं करना है, उससे बचूँगा। इस प्रकार मैं एक अच्छा शिष्य, एक पूर्ण योगी, सच्चा साधक बनूँगा। तत्पश्चात् मैं आनन्दित हो जाऊँगा, पूरी तरह से आनन्दमग्न हो जाऊँगा।''

२७

स्वर्णिम शिक्षाएँ

सौभाग्यशाली आत्माओ! प्रकाशित आत्माओ, आप सभी समस्त सीमाओं, समस्त अपूर्णताओं और उन समस्त सांसारिक चेतना के बन्धनों से बँध कर जो पतन की ओर जा रहे हैं, वह हमारे लिए अस्वाभाविक हैं, वह हमारी वास्तविक स्थिति नहीं हैं, वह हमारी सच्ची अवस्था नहीं हैं। आप मुमुक्षु हैं, उससे मुक्त होने के लिए आप सब बड़े आतुर हैं, आपको मुक्ति पाने की लालसा है, मुक्त हो जाने की प्रज्ञा की आकांक्षा है, योगाभ्यास और आध्यात्मिक जीवन में व्यस्त हैं, ईश्वर के प्रेमी और धार्मिक हैं, दिव्य जीवन के भक्त हैं और गुरुदेव स्वामी शिवानन्द महाराज का अनुगमन करने वाले हैं।

आज गुरुवार है, यह गुरु का दिन है और सुखद अभ्यास के लिए तथा गुरु के प्रति भक्ति उत्पन्न करने के लिए तथा उसके लिए हमारी उत्सुकता प्रकट करने के लिए तथा यदि दिखाने के लिए कि हम गुरु के प्रति भक्ति में वास्तविक रूप से सच्चे, उत्सुक और गम्भीर हैं, यह हमारे लिए लाभदायक होगा कि हम आगे के बीस दिनों में गुरुदेव द्वारा प्रदत्त महत्त्वपूर्ण बीस आध्यात्मिक निर्देशों में से प्रतिदिन एक का अभ्यास करना आरम्भ कर दें। सहस्रों-लाखों, असंख्य भाषाओं में उन निर्देशों को सारे संसार को देने के लिए हमारे लिए उन्हें प्रकाशित करना असम्भव है। यह बड़ी विचित्र धारणा है कि हम सबसे विशिष्ट हैं, हमें उन निर्देशों को पढ़ना नहीं है और न ही गहराई से उनसे परिचित होना है और उनका अभ्यास करने की तथा उन्हें अपने जीवन में उतारने की हमें आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार का विचार क्यों उदित होता है? क्योंकि हम गुरुदेव के निकट हैं, हम उनकी सेवा कर रहे हैं। इसलिए उनके नियमों को हमारे लिए गम्भीरता

से पालन करने की आवश्यकता नहीं है। गुरुदेव को कोई परेशानी नहीं है कि हम उनके बीसों नियमों का पालन करें या न करें। हम तो उनकी सेवा कर रहे हैं।

इसे माया कहते हैं। यह माया की दिखायी देने वाली प्रयोगात्मक प्रयोगशाला है। यही माया है। गुरु के निर्देशों का उल्लंघन करने तथा दम्भपूर्ण निश्चय करने की, कि हमारी सेवा हमें उनके निर्देशों से मुक्ति दिला कर विशेष रूप से बड़ा महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बना रही है।

ठीक है। यदि इस प्रकार का विचार तुम्हारे मन में जड़ पकड़ता है, तो यह तुम्हारे लिए सर्वनाश का कारण है। यह गुरुदेव को किसी भी प्रकार प्रभावित नहीं करेगा। वे कुछ नहीं खोयेंगे। क्योंकि उनके पास खोने के लिए कुछ है ही नहीं। बहुत समय पहले ही उन्होंने अपना सब-कुछ त्याग दिया तथा सर्वस्व पा लिया और जो-कुछ उन्होंने पाया है, वह कभी खो नहीं सकते। फिर भी उनके पास खोने के लिए कुछ नहीं है। क्योंकि उन्होंने स्वेच्छा से सब-कुछ त्यागा है। मित्र, सम्बन्धी, गृह, सम्पत्ति, धन, यश, सुविधा, सुरक्षा, गुणगान, कीर्ति, चाटुकारिता। उन्होंने सब-कुछ छोड़ दिया और कामनाहीन तथा स्वामित्वहीन हो गये। सत्तर वर्ष पहले जब वे यहाँ आये थे, तब उनकी केवल एक ही इच्छा थी—वृक्ष के नीचे बैठ कर, ईश्वर के नाम-जप में डूब जायें तथा ईश्वर में पूर्ण रूप से खो जायें।

इसलिए यदि हम उनकी स्वर्णिम शिक्षाओं का पालन करने के लिए, उनके दिव्य प्रबोधनों और उनके प्रेमपूर्ण आध्यात्मिक निर्देशों का पालन करने के लिए समझदार हैं जो हमें महान् शुभाकांक्षा और इस महान् इच्छा से दिये गये हैं कि हम आध्यात्मिक अनुभव और आनन्द-प्राप्ति के प्रगति-पथ पर और ऊँचे उठते चले जायें। तब वह हमारे और ईश्वर के मध्य तथा हमारे और गुरु के मध्य में आने वाली समस्त बाधाओं को दूर कर देंगे। इस प्रकार उदात्त ऊँचाइयों पर पहुँचने के लिए, उचित संकेत प्राप्त करने के लिए, हम एक ऐसे प्रशस्त मार्ग का निर्माण करेंगे जिससे गुरु की कृपा अबाध रूप से हमें प्राप्त हो सकेगी।

यदि हम उनकी शिक्षाओं का पालन नहीं करते, तो हम अपने लिए घोर विपत्ति को निमन्त्रित करते हैं। वह विपत्ति न स्वामी शिवानन्द, न दिव्य जीवन

संघ के लिए होगी। यदि विपत्ति आनी है तो पहले हमें, पश्चात् शिवानन्द आश्रम के लिए आयेगी। इससे आध्यात्मिक प्रोत्साहन पाने की आकांक्षी आत्माओं के लिए वह कम प्रभावशाली केन्द्र हो जायेगा। इस प्रकार का विपरीत प्रभाव शिवानन्द आश्रम पर पड़ सकता है। किन्तु तुम्हारा तो पूर्णरूपेण नाश हो जायेगा; पर स्वामी शिवानन्द जी किसी प्रकार प्रभावित नहीं होंगे। वह अपरिवर्तनशील पूरी तरह से पूर्णता, सर्वोच्च सौभाग्यशाली, असीम शान्ति और अवर्णनीय आनन्द की स्थिति में स्थापित हो चुके हैं। वे उस स्थिति में नहीं, पर वे स्वयं वह स्थिति हो गये हैं (He is that state)।

स्वामी शिवानन्द शुद्ध सच्चिदानन्द हैं। स्वामी शिवानन्द पूर्ण आनन्द हैं। इसे चिदानन्द नहीं, यह तो शास्त्र कह रहे हैं। यह श्रुतिवाक्य है। वेद भगवान् कहते हैं—"**ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति**"—ब्रह्म को जानने वाला निश्चित रूप से ब्रह्म ही हो जाता है। "**आनन्दं ब्रह्मेति व्याजनात्**"—वह ब्रह्म निश्चित रूप से आनन्द है, और उसका अनुभव ही आनन्द है। संसार जिसे 'शिवानन्द' कहता है, वह ऐसी ब्रह्म की अवस्था है जहाँ वे शाश्वत हो गये हैं। इसलिए हम जो-कुछ भी अपने जीवन में करते हैं, उससे हम ही प्रभावित होते हैं; पर वह, ब्राह्मी-स्थिति में रहने वाले स्वामी शिवानन्द को प्रभावित नहीं करेगी।

इसलिए बुद्धिमानी इसी में है कि हम अपने सर्वोच्च हित के लिए इस जीवन का सदुपयोग करें। और यदि सर्वोच्च हित के लिए नहीं, तो कम-से-कम अपने हित के लिए तो काम करें; क्योंकि कोई दूसरा हमारे हित के लिए कुछ नहीं कर सकता। वे तो केवल सहायता कर सकते हैं। एक कहावत है जो सारे विश्व के मानव-विवेक के अनुभवों को प्रकट करती है—"ईश्वर उन्हीं की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं।"

योगवासिष्ठ नाम का एक महान् शास्त्र है। जो सहस्रों पृष्ठों में हमें यही समझाता रहता है कि वास्तव में यह जगत् केवल हमें दिखायी दे रहा है, यह कल्पना की कल्पित वस्तु है, यह मन की रचना है, इसमें कोई स्थायी सत्य नहीं है, यह स्वप्न की अपेक्षा, कम वास्तविक है। यह शास्त्र अन्त में यही कहता है कि वह अनुभव प्राप्त करने के लिए तुम्हें प्रयास करना चाहिए, पुनः-पुनः प्रयास

करना चाहिए। नहीं तो वह अनुभव तुमसे दूर, बहुत दूर ही रहेगा। फिर तुममें कुण्ठा, निराशा, ग्लानि भर देगा, फिर तुम रोओगे, विलाप करोगे, अपनी छाती पीटोगे, अपना सिर दीवार से मारोगे। यदि तुम संसार को सत्य मान कर भी उस सर्वोच्च अनुभव को पाने के लिए ऊपर उठना चाहते हो, तो प्रयत्न करो। बिना कष्ट उठाये कुछ नहीं पाया जा सकता। ऊपर उठो और प्रयत्न करो, पुरुषार्थ करो। योगवासिष्ठ की अन्तिम धारणा, अन्तिम सन्देश पुरुषार्थ करने का है। जहाँ तक आपका सम्बन्ध आपसे है, पुरुषार्थ ही अन्तिम घोषणा, निर्देश और दिशासूचक है।

योगवासिष्ठ कह सकता है कि सब-कुछ कल्पित है। सब-कुछ स्वप्न से भी अधिक सत्य से कम है। यह वही कह सकता है जो इसे जानता है। पर योगवासिष्ठ आपसे कहता है कि प्रयत्न करो, बिना कष्ट उठाये कुछ नहीं पाया जा सकता, सद्विचार रखो, सत्संग करो, साधना करो।

इसलिए इस प्रातःकाल का सम्मिलन आपकी ओर से छोटे-से पुरुषार्थ के लिए हुआ है। थोड़ा-सा प्रयास करो। समझदार बनो। अपनी वर्तमान स्थिति और पूर्ण ब्रह्म के अनुभव के अन्तर को पहचानो। उस पूर्ण ब्रह्म को कितना महत्त्व देना है, उस अनुभव को योगवासिष्ठ तुम सबको बता सकता है। उस अनुभव में न भूख लगती है न प्यास, न कोई थकावट न पीड़ा, न कोई उल्लास न उदासी, न कोई रोग न वृद्धावस्था, न कोई दुःख न कोई सीमा। यदि तुम उस अवस्था में पहुँच गये हो, तभी तुम योगवासिष्ठ को पढ़ने का साहस कर सकते हो, दूसरों को शिक्षित कर सकते हो, घोषणा कर सकते हो। अन्यथा नहीं।

मैं तुम्हें योगवासिष्ठ की शिक्षा नहीं दे रहा; पर मैं तुम्हारे समक्ष घोषणा कर रहा हूँ कि योगवासिष्ठ का पहला निर्देश है : साधना करो, सही दिशा में जाने का प्रयत्न करो। इससे तुम्हें कुछ हानि नहीं होगी। पुरुषार्थ करो।

इसलिए मैं आपसे गम्भीरता के साथ अनुनय-विनय करता हूँ कि तुम आज के बाद से बीस दिन तक विशेष रूप से एक बात का प्रयत्न करो कि तुम गुरुदेव के महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक बीस निर्देशों का पालन करो, उनका अध्ययन करो, उनका चिन्तन करो, उनका सब प्रकार से विचार करो, उनका

अच्छी तरह से अवलोकन करो और खोजने का प्रयास करो कि तुम किस प्रकार से उनसे सम्बन्ध रखते हो। किस सीमा तक वह तुम्हारे जीवन के अंग हैं। क्योंकि वही निश्चित करेगा कि तुम कितने प्रतिशत उनके अनुगामी हो। आप शिष्य हो सकते हो; पर उनके अनुगामी नहीं हो सकते। आप उनके पीछे नहीं चल रहे हैं। इसका अर्थ है कि आपका शिष्यत्व अभी आपसे कुछ और आशा रखता है; क्योंकि यदि हम शिष्य या भक्त हैं, पर उनका अनुगमन नहीं करते, तब हमरा शिष्यत्व हमसे बहुत-कुछ उपेक्षा रखता है और हमारी भक्ति हमसे बहुत-कुछ चाहती है। वह पूर्ण मन से पूर्णता के साथ होनी चाहिए—सर्वथा पूर्ण!

हमें अगले बीस दिन के लिए बहुत विशेष साधना के लिए अपने को तैयार करना चाहिए। गुरुदेव के महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक निर्देशों का सावधानी से अध्ययन करके उन्हें अपने जीवन का अंग बनाना है। तभी आप गुरुदेव श्री स्वामी शिवानद जी के विशुद्ध प्रामाणिक, वास्तविक सच्चे शिष्य, भक्त और अनुगामी होने के पथ पर चल सकते हैं। वे सभी आध्यात्मिक साधकों को प्रेम किया करते थे और वे आपसे भी प्रेम करते हैं, क्योंकि आप आध्यात्मिक जीवन में हैं। वास्तव में वे आपसे बहुत प्रेम करते हैं, इसलिए बहुत प्रेम करते हैं कि आप न केवल आध्यात्मिक साधक हैं प्रत्युत साधक-रूप में आप भारत के इस पावन दिव्य भाग के, उनके पवित्र आश्रम में रह रहे हैं। बहुत ही विशेष रूप से वे आपके प्रति महान् प्रेम रखने वाले हैं।

जैसा कि भगवान् श्री कृष्ण ने श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के बारहवें अध्याय के अन्तिम भाग में कहा है : सभी मुझे प्रिय हैं, किन्तु ओ अर्जुन! मेरे भक्त! आप मुझे बहुत प्रिय हैं। और उन्हें यह बतलाने की जरूरत नहीं थी कि अर्जुन उनका सबसे प्रिय था; क्योंकि उन्होंने उसके प्रति प्रेम ने अनेकों बार सिद्ध कर दिया था। ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन को योग के अनुभव कराते समय उनका अर्जुन के प्रति विशेष प्रेम सामान्य से अधिक था, आसाधारण रूप से महान् था, इसका परिचय उन्होंने दे दिया था।

इसी प्रकार स्वामी शिवानन्द जी को भी किसी को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि वे अनेकों बार प्रचुर मात्रा में सिद्ध कर चुके थे तुमको अपने जीवन से पूर्णतया यहाँ खींच कर, तुम्हें इस आश्रम में रख कर, तुम्हारे चारों ओर आश्चर्यजनक आध्यात्मिक वातावरण में तुम्हें घिरा रख कर, तुम्हें सब प्रकार की सुविधाएँ भक्तियोग, ध्यानयोग, जपयोग, ज्ञानयोग, संकीर्तन योग, सेवायोग दे कर। सब-कुछ, सारी सुविधाएँ दे कर बड़े विरल रूप से आध्यात्मिक विकास करने वाला, उसे प्रकट करने वाला, उसे प्राप्त कराने वाला इतना उर्बर और सम्पन्न क्षेत्र तुम्हें कहीं मिल सकता है? जितना पवित्र भारत के पावन उत्तराखण्ड में दिव्य माँ गंगा के दक्षिण तट पर स्थित शिवानन्द जी के 'शिवानन्द आश्रम' में ही मिल सकता है।

यदि देखने के लिए तुम्हारे पास आँखें हैं, तभी तुम देख सकते हो; यदि सुनने के लिए तुम्हारे पास कान हैं, तभी सुन सकते हो और समझ सकते हो कि तुमसे क्या कहा गया है। और यदि तुम वास्तविक आध्यात्मिक साधक हो, तब तुम इस सत्य का अनुभव कर सकते हो कि तुमसे प्रतिक्षण क्या कहा गया है। क्या तुमसे यह कहा गया है कि वहाँ मन भटक सकता है, वहाँ थोड़ी अपूर्णता हो सकती है और परेशानी या कुछ और भी हो सकता है? गुलाब की झाड़ियों में काँटों के समान कुछ अतिरिक्त भावावेश भी हो सकते हैं। हो सकता है, कभी-कभी सबसे अमूल्य वस्त्र पर भी धब्बे लग सकते हैं। तुम्हें उसकी धुलाई तथा ड्राइक्लिनिंग करानी पड़ सकती है। वह आवश्यक है। पर उसके मूल्यवान् होने की वास्तविक अवस्था कभी नहीं बदल सकती। हीरे को भी रगड़ने और साफ करने की आवश्यकता है यदि उस पर धूल जम गयी हो; पर हीरा तो सदा हीरा ही रहेगा।

इस प्रकार, यह एक आश्रम है जो आपको आत्म-साक्षात्कार और विकास के लिए पूर्ण रूप से अनेकों प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कर रहा है। यह पूर्णतया सत्य है। बिना किसी मतभेद के यह सच है। बिना किसी शंका के यह सच है। यदि आप अपने-आपको सच्चा साधक और सच्चा जिज्ञासु मानते हैं, तो यह आश्रम आपको सारी सुविधाएँ प्रदान करता है।

इसलिए यह आपके हाथ में है कि आप अपने जीवन के इस काल को भव्य और महिमामय तथा महान् बनायें। यह आपके हाथों में है। अपनी सामर्थ्य और योग्यता के अनुसार इसे पूर्ण करें। ईश्वर ही हम सबसे ऐसा करने की अपेक्षा रखते हैं। वह हमसे ऐसी अपेक्षा नहीं रखते कि हम उन्हें छोड़ कर आगे बढ़ जायें तथा और कुछ असम्भव करते रहें। ईश्वर तथा गुरु वास्तव में हमसे अपेक्षा रखते हैं कि हम सबके लिए तथा अपने लिए जो-कुछ भी सम्भव है, उसके अनुरूप सब-कुछ अच्छे-से-अच्छा करें।

इस प्रकार हम बहुत-कुछ आपस में बाँट चुके हैं। अन्तर्वासी जानते हैं कि कितना ग्रहण किया गया है। इससे अधिक मैं और आपकी सहायता नहीं कर सकता; क्योंकि यह मेरे हाथ की बात नहीं है। अब तो रस्सी का अन्तिम छोर आपके हाथ में है। आपको बाँटा जा चुका है। यह पूरी गम्भीरता के साथ, पूरी सच्चाई के साथ, पूरी विनय के साथ आपको बाँटा जा चुका है। इसलिए कोई प्रयास मत छोड़ो। स्वामी शिवानन्द जी ने जो अत्यन्त मौलिक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक निर्देश दिये, जिन्हें उन्होंने सदा के लिए सारी मानव-जाति के लिए अपने उत्तरदान (legacy) के रूप में छोड़ा है, उसका अध्ययन करने का श्रीगणेश कर दो, उनका अभ्यास करना आरम्भ कर दो।

२८

दिव्य जीवन की झलक

जब भक्त और यात्री गण यहाँ आ कर इस सेवक से आशीर्वाद लेते हैं, तब उसे हँसी आ जाती है। जब तक ईश्वर ने अपनी दिव्य कृपा की वर्षा उन पर न की होती, जब तक गुरुदेव ने अपरिमित रूप से उन्हें आशीर्वाद न दिया होता, तब तक उनके लिए हिमालय की तराई के गंगा नदी पर स्थित इस पवित्र उत्तरकाशी की यात्रा कर पाना असम्भव था। भारत के हर कोने में बसे करोड़ों मनुष्यों की यह कामना रहती है कि उनके जीवन-काल में कम-से-कम एक बार उनकी यहाँ आने की आकांक्षा पूरी हो जाये। यदि वे उत्तर भारत में आते हैं, तो पावन गंगा नदी में एक बार डुबकी लगा लेने पर उनका सपना पूरा हो जाता है। उसके बाद ही वे अपने-आपको बड़ा सौभाग्यशाली मानते हैं। तब उन्हें लगता है कि जीवन व्यर्थ नहीं गया।

इसीलिए में उनसे कहता हूँ—"तुम्हारे पास सब-कुछ है जिसकी तुम्हें आवश्यकता है। अब समय आ गया है कि तुम्हें अपने जीवन का उपयोग करना चाहिए। अपने सर्वोच्च लाभ के लिए उसका उपयोग करो। ईश्वर की बड़ी असीम दिव्य कृपा तुम्हारे ऊपर है। गुरुदेव ने तुम्हें आशीर्वाद भी बहुलता से मुक्त रूप से दिया हुआ है। अब यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम उसे न केवल समझदार बन कर, बल्कि सक्रिय रूप से समझदार बन कर पहचानो। पहले से ही तुम्हारे जीवन का अंग बन चुके आशीर्वाद को अपने व्यवहार में लाओ।"

गुरुदेव की दिव्य दृष्टि के रूप में अभी सबसे बड़ा आशीर्वाद हमारे सामने आया है। दिव्य गुणों से भरा हुआ, दिव्य रूप से जीवन व्यतीत करने का उनका यह बड़ा ही महान् देदीप्यमान आदर्श है। यह एक ऐसी दृष्टि, ऐसा आदर्श और व्यावहारिक शिक्षा है जो वास्तव में महानतम उपहार है, एक महानतम आशीर्वाद है।

तुम्हारा हृदय दया से पूर्ण होना चाहिए, तुम्हारा जीवन और व्यवहार सच्चाई से परिचालित होना चाहिए, तुम्हारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व से उच्च कोटि की पवित्रता झलकनी चाहिए। तुम क्या हो और तुम्हें क्या होना चाहिए, तुम्हारे वचन और कर्म सब सर्वोच्च प्रकार के गुणों से भरे होने चाहिए। सदा सच्चाई पर अडिग रहो, सत्य में जियो, सच्चा व्यवहार करो, सच्चाई में बँधे रहो। तुम्हारा हृदय सदा ईश्वर द्वारा रचित छोटे-छोटे जीव—चींटी, मक्खी, कीड़े-मकोड़े, यहाँ तक कि तुम्हारे पैर के नीचे की घास तक के लिए भी करुणा से भरा हुआ होना चाहिए।

धर्म को अपना सर्वोच्च अलंकार बनाना चाहिए। तुम्हारे पूरे जीवन से धर्म, तुम्हारे विचार, वचन और कर्म सभी से प्रकाश की दीप्ति चमक कर सामने आनी चाहिए। इसी आदर्श के लिए जियो, इसी आदर्श को प्राप्त करने का सदा प्रयास करना चाहिए। यहाँ तक कि इस आदर्श के लिए मरण भी श्रेयस्कर है। मनुष्य ऐसे कुत्सित जीवन में ऐसा कौन-सा महान् सौभाग्य और सम्मान पाना चाहता है जहाँ कलह, ईर्ष्या, जलन, लोभ, घृणा, क्रोध, बदला लेने की भावना तथा मन में क्षुद्रता हो? मनुष्य अपने प्रत्येक कार्य, विचार, अपने जीवन में तथा अपने रहन-सहन में सब कहीं ईश्वर का प्रतिबिम्ब देख सके, इसकी अपेक्षा इससे बड़ी और कौन-सी सुविधा कोई पा सकता है? इससे संसार भी ईश्वर के दर्शन कर सकता है।

वास्तव में यह एक विशेषाधिकार है, सबसे बड़ा सौभाग्य, सर्वोच्च सम्मान है। स्वार्थभाव का नाश करके, अपने प्रत्येक क्षण, घण्टे, दिन, सप्ताह, महीने, साल सभी को निःस्वार्थ भाव से भर दो। अपने को भक्ति से भरने के लिए सदा प्रेम में स्थित रहना चाहिए, दिव्य प्रेम का जीता-जागता सक्रिय केन्द्र, सर्वोच्च सत्य के प्रति समर्पित, इससे ऊँची और कौन-सी कामना करेगा कोई?

हमें सदा आत्म-परीक्षण में सजग रहना चाहिए। अपने कार्य में अपने को दक्ष बना लेना, अपनी इन्द्रियों का दमन करके दिन-प्रतिदिन अपने चंचल मन को शान्त कर लेना, उषाकाल के प्रशान्त समय में शान्ति से बैठ कर जब मन

स्थिर हो जाये तब उसे अपने अन्तर की ओर ले जा कर, इसकी किरणों को समेट कर सत्य पर केन्द्रित करके आन्तरिक शान्ति की स्थिति में रहना चाहिए। आन्तरिक दिव्य अवस्थिति के साथ विचारना, ध्यान क़रना, सदा सत् और असत्, सत्य और सत्याभास के बीच के भेद को पहचानना तथा वस्तुओं की वास्तविक प्रकृति के विषय में गहन ज्ञान प्राप्त करना तथा सदा शारीरिक चेतना के बन्धन से ऊपर उठ कर धीरे-धीरे अदृष्ट सूक्ष्म अमर्त्य सत्य के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। सदा अपनी आध्यात्मिक उन्नति की इन प्रक्रियाओं में व्यस्त रहना चाहिए। इससे हट कर और कौन-सा ऐसा कार्य है जिसमें मनुष्य अपने-आपको लिप्त रखना चाहेगा ?

बाहरी जीवन के इस क्षुद्र जगत् में क्या रखा है? पत्रिका और समाचार-पत्र पढ़ लेना। इसके विपरीत, यहाँ की कृपापूर्ण सौभाग्यशाली स्थिति है। इस पवित्र समाधि हाल में यहाँ बैठ कर गुरुदेव की उपस्थिति में उनके द्वारा प्रेरित इन शब्दों को आप सुन रहे हैं। बाह्य संसार में झाँक कर तो देखो कि वहाँ क्या किया जा रहा है, वहाँ क्या हो रहा है और तुलना करो कि तुम कहाँ हो—यहाँ का जीवन, यहाँ का वातावरण, यहाँ का वायु-मण्डल, यहाँ का परिवेश कैसा है!

यहाँ का वातावरण उदात्त है। यहाँ का वायु-मण्डल पवित्र और पावन है तथा आध्यात्मिकता से भरा हुआ है। यह कलियुग में सत्ययुग के समान है। पृथ्वी पर स्वर्ग है। यहाँ का सौन्दर्य, पवित्रता, मांगलिकता और कृपा-दान का तथा यहाँ क्या प्राप्त करना है, उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिए। इसकी भरपूर प्रशंसा करनी चाहिए। इसका पूरा लाभ उठाना चाहिए। बाहरी तत्त्वों को प्रभावहीन कर देना चाहिए। अन्तःकरण दूषित नहीं होना चाहिए।

प्रतिदिन आप स्तुति करते हैं—**"नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे। सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटियुगधारिणे नमः"** (उन असीम परमात्मा को नमन है जिनके हजारों रूप हैं, उनके हजार पैर, आँखें, सिर और हाथ हैं। उन असीम सत्ता को प्रणाम है जिन्हें हजारों-नामों से पुकारा जाता है, जो हजारों-करोड़ों

जीवन-चक्रों को नियन्त्रित करते हैं। **''तत्सर्वं व्याप्य नारायण: स्थित:''** (इस प्रकार अन्तर और बाहर जो-कुछ भी है, उस सबमें सर्वोच्च सत्ता की व्याप्ति है)।

क्या तुम उसका खण्डन करोगे जो तुम्हारे अन्दर है, क्या तुम उस महान् तथ्य को, उस यशस्वी सत्य को छिपा सकते हो, क्या तुम अपने चारों ओर के समस्त संसार को छिपा सकते हो? क्या तुम अपनी दृष्टि के लिए अपने-आप मोतियाबिन्द बन जाओगे ? क्या तुम अपने लिए अपने-आप ठोकर खाने के लिए गति-कुण्ठन-स्थान बना लोगे? क्या तुम अपने महान् मित्र, महान् सहायक, उद्धारक की इस पुकार का उत्तर दोगे—**''उद्धरेदात्मनात्मानम्''** (मनुष्य को अपने-आप स्वयं ही ऊपर उठने दो)? क्या तुम ईश्वर के साथ सहयोग करोगे? दिन-प्रतिदिन के जीवन के लिए जो महान् सत्य हमारे समक्ष उद्घाटित हुआ है, उससे अधिकतम लाभ उठाने के लिए क्या तुम अपने अस्तित्व की पूर्ण शक्ति लगा दोगे?

यदि हम अपने और ईश्वर के बीच में मन को आने देंगे, तो निश्चित रूप से यह हमारी सबसे बड़ी भूल होगी। **''मन एव मनुष्यानां कारणं बन्ध मोक्षयो:''** (मन ही मानव के बन्धन और मोक्ष का कारण है)। जो-कुछ भी घटता है, उसका कारण हमारा मन ही है; मित्रता भी हमारे मन से शत्रुता भी, बन्धन भी हमारे मन से मुक्ति भी।

अन्य सर्वस्व—सब-कुछ धार्मिक अनुष्ठान, घण्टा बजाना, शास्त्रों का अध्ययन, भगवन्नाम का संकीर्तन, संगीत, नृत्य सब अपने अन्तर को सुधारने, रूपान्तरित करने के लिए हैं जिसके कारण तुम्हारे अन्दर से तुम्हें प्रकाश, जागृति, जागरूकता, पवित्रता, सही निर्णय तथा बाधाओं को पार करने की शक्ति मिल सकती है। यही तुम्हें अन्तर्दृष्टि प्रदान करने में सहायक होंगे। तुम्हारी अपनी सत्ता के अन्दर से मुक्ति प्राप्त करने की पूरी प्रक्रिया की दिशा में कार्य करने के लिए यह उपकरण प्रदान करेंगे। यही उसका एकमात्र अर्थ, महत्त्व और प्रासंगिकता है।

ज्योतिर्मय आत्मन्! सर्वोच्च की आकांक्षा करने वाले सब इसे निश्चित रूप से समझ लो कि तुम जो-कुछ भी हो और जो-कुछ भी तुम कल होगे, अन्ततः उस सबको निर्धारित करने वाला न ईश्वर है न दानव, उसे तो आपका अन्तर, आपकी अपनी सत्ता निश्चित करती है। उसी के अन्दर पाण्डव भी निवास करते हैं और कौरव भी। उसी के अन्दर राम भी हैं रावण भी। उसी के अन्दर प्रकाशित दीप्तिमान् सूर्य का प्रकाश भी है, ज्ञान-सूर्य का सूर्योदय और साथ-ही-साथ अज्ञान का घोर अन्धकार भी है। इस उद्देश्य के लिए हम जो सहायता प्राप्त करते हैं, वह है हमारा उचित चुनाव करना, उसी से हम सही दिशा में मुड़ सकते हैं और सही दिशा में चलते चले जायेंगे।

गुरुदेव ने हमें दिव्य जीवन की दृष्टि, दिव्य जीवन का आदर्श प्रदान किया है। उन्होंने हमें व्यावहारिक अध्यात्म की शिक्षा दी। हमारे जीवन को दिव्य बनाने के लिए उन्होंने महान् साहस, महान् सुविधा प्रदान की। दिव्य जीवन यापन को सार्थक बनाने के लिए निःस्वार्थ भाव और सेवा, भक्ति, पूजा, अनुशासन, ध्यान के साथ-साथ निरन्तर प्रश्न-परिप्रश्न पूछना, विवेक, अनुसन्धान और तेजस्वी होना तथा उच्च चरित्र, आचरण और कठोर रूप से निष्ठावान्, सत् से बँधे रहने वाले उपादानों के प्रयोग पर बल दिया।

अपने-आपको अत्यन्त सक्रिय रखने के इस महान् उपहार को जिसे हमारे प्रिय पूज्य गुरुदेव ने तुम्हारे सामने रखा है। वह मनुष्य-जीवन को सर्वोच्च मार्गदर्शन देने के लिए ही इस धरती पर आये थे। हम बड़े भाग्यशाली थे जो हम उनके अति-निकट रह कर उनके दिव्य व्यक्तित्व के सान्निध्य का अवसर प्राप्त कर सके।

इस उज्ज्वल लक्ष्य की ओर जाने के लिए ईश्वर तुम्हें गति प्रदान करें! उस महान् प्राप्ति में ईश्वर तुम्हारे ऊपर अपनी कृपा की वर्षा करें और तुम्हें सफलता प्रदान करें! अपने सर्वोच्च लक्ष्य की ओर जाने की ललक रखो—कहीं दूर, बहुत दूर भविष्य में नहीं; बल्कि अभी, इसी घड़ी में सौभाग्य का मुकुट धारण करो!

२९

पवित्रता के लिए सेवा, तुच्छ अहं का नाश

"सबकी सेवा करो। सबसे प्रेम करो। मानव की सेवा ही ईश्वर की पूजा है। मानव की सेवा से बढ़ कर और कोई महान् योग नहीं है।" गुरुदेव की ये महान् उक्तियाँ हैं। वे कर्मयोग की साक्षात् मूर्ति थे। जब वे युवा थे, तब उन्होंने अपने माता-पिता की सेवा की। अपने विद्यार्थी-जीवन में उन्होंने अपने गुरु की सेवा की। उन्होंने मलाया में कुप्पुस्वामी के नाम से अपने रोगियों की सेवा की।

एवंविध, सेवा ही उनका जीवन था। साधु होने पर भी पूर्णतया एकान्तवास में रह कर, किसी से न बोल कर, अपनी गहन साधना-तपस्या-ध्यान में अन्तर्मुखी हो करके अध्ययन में लीन रह कर भी वह दिन में एक घण्टे या उससे भी अधिक के लिए लक्ष्मणझूला के एक छोटे-से औषधालय में काम किया करते थे। निःस्वार्थ सेवा के साक्षात् रूप तथा पूर्णतया प्रशिक्षित डाक्टर होते हुए भी वे रोगियों और दुःखी जनों, यात्रियों और निकट स्थानों पर रहने वाले साधुओं के लिए बड़े आदर्श सेवक थे। घटनाएँ बताती हैं कि किस सीमा तक वे लगन से अपनी सेवा में सौ प्रतिशत पूर्ण थे।

प्रारम्भिक दिनों में गुरुदेव ने एक पुस्तक लिखी थी 'कर्मयोग का अभ्यास'। आरम्भिक दिनों से ले कर अपने जीवन के नितान्त अन्त तक वे यही चाहते थे कि सभी निःस्वार्थ सेवा से ही अपने हृदय को पवित्र करने का प्रयास करें। उन्होंने कहा था—"जीवात्मा और परमात्मा के मध्य की दुस्तर बाधा अहंभाव है।" उनकी छोटी-सी कविता का आरम्भ है—"अन्तर में तुम्हारे ईश्वर छिपा है। तुम्हारे अन्तर में एक अमर आत्मा है। तुम्हारे अन्तर में आनन्द का सागर है। तुम्हारे अन्तर में प्रसन्नता के झरनों का प्रवाह है।" उन्होंने सबसे महत्त्वपूर्ण शब्दों को जोड़ा—"इस तुच्छ अहं का नाश करो, जीने के लिए मरो। दिव्य जीवन जियो।"

इसका अर्थ यही है कि दिव्य जीवन का सार तुच्छ 'अह' के नाश में है। दिव्य जीवन का सार अहं के पूर्ण त्याग, नि:स्वार्थ भाव से पूर्ण समर्पण, आत्म-केन्द्रित जीवन का पूर्ण त्याग तथा सभी में ईश्वर के दर्शन करके, सभी के प्रति नि:स्वार्थ सेवा के लिए पूर्ण रूप से समर्पित रहने में है।

सेंट फ्रांसिस की सबसे प्रभावशाली और सरल प्रार्थना है, जिसके अनुरूप उनका जीवन था। उस प्रार्थना की अन्तिम पंक्ति है—''तुच्छ 'अह' को मारने के लिए ही हम शाश्वत जीवन जीने के लिए पैदा हुए हैं।'' उसके बाद—''मैं तभी मुक्त होऊँगा, जब 'मैं' का अन्त होगा।'' यह तभी सम्भव है, जब 'मैं'-पन लुप्त हो जाता है। वास्तविक आध्यात्मिक मुक्ति के अनुभव तक पहुँचने के लिए केवल 'मैं'-पन का लोप आवश्यक है।

आत्मोपलब्धि के पश्चात्, प्रकाश-प्राप्त मनीषी बनने के बाद तथा हिमालय के महान् प्रकाश के रूप में उभरने के बाद गुरुदेव जीवन-भर नि:स्वार्थ भाव से निर्धनों की सेवा, दु:खियों, रोगियों, विपत्ति में पड़े हुओं की सेवा, आध्यात्मिक आकांक्षी और साधकों की सेवा, सारी मानव-जाति की सेवा, सारे संसार की सेवा करते थे। वह सेवा भिन्न-भिन्न प्रकार से नानाविध सेवा थी। उनका पूरा जीवन ही नि:स्वार्थ सेवा का एक निरन्तर स्रोत था। यहाँ तक कि एक प्रकार से उन्होंने अपने बारे में सोचना भी बन्द कर दिया था। बस, वे दूसरों के विषय में ही सोचा करते थे। वे दूसरों के लिए यही सोचा करते थे—''मैं दूसरों के लिए किस प्रकार लाभकारी सिद्ध हो सकता हूँ, किस प्रकार मैं सेवा कर सकता हूँ?'' अन्तिम दिनों तक भी गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने ऐसा ही जीवन व्यतीत किया।

गुरुदेव ने अपने हाथ से लिखे हुए अठारह आत्मकथात्मक काव्य-पत्रों में घोषणा की है—''मैं सेवा के लिए जीता हूँ, भूखों को मैं खिलाता हूँ, नंगों को कपड़ा देता हूँ, पतितों को सहारा देता हूँ, जो विपत्ति में पड़े हुए हैं उनको सान्त्वना देता हूँ। मेरे जीवन का है यही एक लक्ष्य।'' यदि कोई उन्हें जानता था, तथा कोई कभी उनके साथ रह चुका था, और कोई भी जिसे पहले उन्होंने कहीं देखा था, वे उन्हें तुरन्त पहचान लेते थे और कहते थे—''देखो! यह है

नि:स्वार्थ सेवा के लिए समर्पित मानव।'' शास्त्रों में सिद्ध पुरुषों के लिए जो-कुछ लिखा है, उन्होंने उन वाक्यों को अक्षरश: सिद्ध कर दिया। गीता के शब्दों में, ''सारे प्राणियों के कल्याण के लिए उत्सुक रहो।'' साथ ही उन्होंने बोध प्राप्त कर लिया। उन्हें जीवन में जो-कुछ करना था, वह सब उन्होंने अच्छी तरह से कर लिया था। उन्हें कोई इच्छा नहीं थी; क्योंकि ईश्वर को प्राप्त कर लेने के बाद सारी इच्छाएँ अपने-आप पूरी हो जाती हैं।

ऐसे जीवन की उपमा मिलनी दुर्लभ है। उच्च, उदात्त, नि:स्वार्थ भाव, पूर्ण, रहस्यमय, ईश्वर के सारे प्राणियों की नि:स्वार्थ सेवा के लिए समर्पित। ऐसे थे गुरुदेव, हमारे लिए वह एक आदर्श रूप थे। वे नि:स्वार्थ भाव तथा नि:स्वार्थ सेवा के मूर्त रूप थे। निष्काम कर्मयोग को प्रतिपादित करने वाले वे महान् व्यक्ति थे। उन्होंने निर्भय हो कर घोषणा की—''मानव की सेवा ईश्वर की पूजा है।'' इस प्रकार हम उन्हें श्रद्धांजलि देते हैं। उनका आशीर्वाद हम सबके लिए हो!

३०

देश स्वतन्त्र है, क्या हम स्वतन्त्र हैं?

अनित्य में नित्य तत्त्व निहित है। अपरिवर्तनशील परिवर्तनशील के पीछे छिपा है। जो इसका अनुभव करता है, वह निश्चित रूप से उसकी पहचान कर सकता है। दूसरों के पास दृष्टि तो है, पर देख नहीं पाते। "**विनश्यत्स्वविनश्यन्तं य: पश्यति स पश्यति**" (जो नाशवान् में अविनाशी को देखता है, वही देखता है)।

उस सत्ता का विस्तार सर्वत्र है, वह सर्वत्र विद्यमान है। वह तुम्हारे अपने स्व के रूप में तुम्हारे अन्दर निवास करती है—वह सभी मनुष्यों में समान रूप से निवास करती है—राजा में, भिखारी में, शिक्षित और अशिक्षित में, पापी और निर्दोष में, बच्चे में, साधु और पापी में। वह मिट्टी और सोने में भी समान रूप से निवास करती है, अमृत और विष में भी। वही देखता है जो परमात्मा को समस्त प्राणियों में समान रूप से देखता है।

वास्तविक दृष्टि वही है जिसके द्वारा हम उन्हें सभी वस्तुओं में देख सकते हैं। और सबसे अधिक तो यह है कि तुम उन्हें अपने अन्दर देख सको। यह सर्वोच्च निधि है। यह महान् अनुभव है। देवत्व से कम कुछ नहीं। वे स्वयं शरीर धारण करते हैं। जैसा कि अन्तर में निवसित अपनी उपस्थिति के विषय में श्री कृष्ण भगवान् दृढ़ता और निश्चय के साथ कहते हैं—"ओ अर्जुन! मैं आत्मा रूप में प्रत्येक प्राणी के अन्तर में निवास करता हूँ। मैं ही सारे प्राणियों का आदि, मध्य और अन्त हूँ।" यही वह दृष्टि है जो मुक्ति दिलाती है। यही वह सत्य है जो मुक्ति दिलाता है, यही महान् अनुभव है जो जन्म-मरण के चक्र से सदा के लिए मुक्ति दिलाता है। यदि तुम मुक्त होना चाहो, तो उसके लिए यही दृष्टि है।

"ईश्वर अन्दर और बाहर सभी वस्तुओं में, सब कहीं है"—इस तत्त्व की इस दृष्टि का श्रीगणेश करके उसका सम्पादन एक महान् आत्मा ने किया, जिनका जन्म आज १५ अगस्त के दिन हुआ था। कारागार से मुक्त होने के बाद उन्होंने अपने ब्रह्माण्डीय चेतना के अनुभवों को सबमें बाँटा। वे कोई संन्यासी नहीं थे, कोई साधु नहीं थे, कोई मठाधीश नहीं थे, वे महान् मनीषी अरविन्द घोष थे।

उन्हें तभी मुक्ति मिल गयी थी, जब वे शारीरिक रूप से कारागार में बन्द थे। उन्हें ब्रह्माण्डीय स्वरूप की दृष्टि तभी प्राप्त हो गयी थी, जब वे कारागार में बन्द थे। उसी ने उनकी सम्पूर्ण चेतना का रूपान्तरण कर दिया। वे अपने प्रिय इष्टदेव केवल कृष्ण को ही देखते रहते थे। उससे उनके पूरे व्यक्तित्व में आनन्द का प्रवाह हो जाता था। वे ईश्वर-प्रेरित व्यक्ति हो गये थे। अपने आन्तरिक अनुभव के कारण उनके मुख पर दीप्ति का तेज दिखायी देता था। उनका कृष्ण सब कहीं व्याप्त था—वह उनकी कारा-कोठरी की सलाखों में, दूसरे कैदियों में, कारागार के रक्षकों में, हथकड़ियों में, वह अन्दर-बाहर सब कहीं थे।

उसी समय उन्होंने घोषणा कर दी कि भारत पुन: एक बार अपनी प्राचीन महिमा को प्राप्त करके उन्नति करेगा। अरविन्दो का देहान्त १९४९ में हो गया था। भारत को स्वतन्त्रता मिलने के दो वर्ष पश्चात्। अब प्रश्न यह उठता है कि भारत स्वतन्त्र हो गया है, क्या भारतीय स्वतन्त्र हैं? यह तुम्हें अपने-आपसे पूछना है कि स्वतन्त्रता क्या है? और उससे विपरीत की स्थिति क्या है? वह दासता, वह बन्धन स्वतन्त्रता नहीं है? वह कौन-सी स्वतन्त्रता है जिसे भारत के मनीषी, सन्त उसकी संस्कृति के किस आदर्श का विकास करना चाहते थे कि प्रत्येक भारतीय को क्या प्राप्त करना है?

उत्तर है : शाश्वत स्वतन्त्रता से कम कुछ नहीं, पूर्ण मुक्ति। जीवन का सबसे बड़ा आदर्श परम पुरुषार्थ मोक्ष है, मुक्ति है। और सबसे महान् मुक्ति क्या है? अन्तिम मुक्ति है, अपने-आपसे मुक्ति, अपनी भ्रान्ति से मुक्ति जिसमें मनुष्य वास्तव में जो है नहीं, अपने-आपको वह समझता है; अनात्मा से पहचान बनाने से मुक्ति तथा जीवन की सारी अपूर्णताओं—जैसे अहं भाव, स्वार्थ

भाव, स्वार्थी इच्छाएँ, ललक, उनसे मुक्ति। हम पहले तो अपने शत्रु पैदा करते हैं, फिर दुःखी होते हैं।

इन शत्रुओं का निर्माण हमने इसलिए किया है; क्योंकि हम जो हैं नहीं, उसकी कल्पना कर बैठे हैं। हमारी वास्तविकता से हट कर हमने अपने-आपको कुछ और मान लिया है तथा उसे सन्तुष्ट करने के लिए इसकी आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रयास में रहते हैं। हम उसे इन्द्रिय-सन्तोष देना चाहते हैं। हम उसकी सब प्रकार की इच्छाओं को पूरा करने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाते हैं। हमारा सारा जीवन इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। बस, हम निरन्तर छोटी-छोटी झूठी अहं-चेतना और अनात्मा की इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास करते रहे हैं। हम अपने सम्पूर्ण जीवन को, ईश्वर-प्रदत्त उपहार को मृगमरीचिका, कल्पना, असत् के प्रति प्रेम के रूप में उपयोग करने में व्यतीत करते रहते हैं।

मानव व्यक्ति की यह अहं-चेतना कि 'मैं अमुक व्यक्ति हूँ, मैं ऐसा व्यक्ति हूँ, मैं यह चाहता हूँ, मुझे इसकी आवश्यकता है, मैं यह पाना चाहता हूँ, यही मुझे प्रसन्न कर सकता है, तभी मैं तृप्त होऊँगा', यही महान् बन्धन है। मुक्ति तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है, पर इस मुक्ति के लिए सारे बन्धन के कारण ये ही हैं, बाधक तत्त्व हैं।

इसीलिए उन्होंने कहा है कि यदि मुक्ति प्राप्त करनी है, तो पहले अपनी अपेक्षाओं, इन्द्रियों के आवेगों तथा इन्द्रियों की क्षुधा से मुक्ति प्राप्त करो। यहीं से मुक्ति का आरम्भ होता है, वह कहीं हिमालय की कन्दराओं में नहीं, न ही कृत्रिम रूप से बनाये हुए वातावरण में कहीं है। मुक्ति आरम्भ होती है इच्छाओं से मुक्ति मिलने पर, उसकी अपनी लालसा से अपने नगण्य सम्मोहनों से। **''जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्''** (ओ अर्जुन! इच्छा-रूपी शत्रु को जीतना कठिन है, तुम उसे मार डालो)।

मन में अनन्त इच्छाओं की पंक्ति ही तुम्हारे शत्रु हैं, जो तुम्हारी शान्ति हरण करके तुम्हें अपनी दासता के बन्धन में बाँध लेते हैं। यही वह कुरुक्षेत्र है जहाँ तुम्हें लड़ाई लड़नी है। यहीं पर युद्ध प्रारम्भ न हो पर्वत की चोटी को कोई अर्थ नहीं। मोक्ष के लिए साधना यदि जहाँ हो वहीं से प्रारम्भ न की तो गुफा का

भी कोई लाभ नहीं; क्योंकि तुम स्वयं को इस समय जो समझते हो, वही तुम्हारी समस्या है, वही बन्धन है। यही तुम्हारा बन्धन है, यही तुम्हारा संसार है, यही प्रपंच है और यही तुम्हारा माया-जाल है।

मन की लालसा, उसकी कल्पनाओं और इन्द्रियों से ऊपर उठना ही साधना है। यही मुक्ति है, अपने जीवन को इसी में व्यस्त रखना है। अपने अन्दर से ही मुक्ति के लिए प्रयास करना है। अपनी इच्छाओं की ललक और इन्द्रियों की भूख से मुक्ति पाना ही अपने-आपसे मुक्ति पाना है।

यह अनुभव घने जंगल में या किसी गुफा में, किसी अन्धविश्वास के कारण चुपचाप नहीं हुआ है। यह अभी यहीं तुम्हारे निज स्वरूप की सर्वोच्च चोटी से, तुम्हारे अन्तर मन की गुफा में से पाया जाना है, जिसकी घुमावदार ऊँची-से-ऊँची चोटी के आगे इस समस्त बाहरी संसार की हिमालय और एवरेस्ट की चोटी भी कुछ नहीं है। अचम्भित बना देने वाली ऊँचाइयाँ यहीं हैं। सबसे गहन एकान्त यहीं है। सबसे महान् मौन यहीं है। मन की गुफा यहीं है।

इसलिए भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के दिन अपने अन्दर झाँक कर अपने-आपसे पूछो—"क्या मैं स्वतन्त्र हूँ?" उस महान् सन्त के जन्म-दिवस पर, जिसने कारागार की अपनी कोठरी में अपनी स्वतन्त्रता के लिए प्रयास किया और उसे प्राप्त किया, अपने अन्दर झाँक कर अपने से पूछो—"क्या मैं स्वतन्त्र हूँ?" कब तुम उनके समान मुक्त होओगे? उन्होंने कभी किसी गुफा में प्रवेश नहीं किया। उन्होंने अपनी मौन अवस्था में, अपने हृदय की गुफा में जा कर, उस योग का विकास करके, बीसवीं शताब्दी को महान् प्रकाश दिखाया। हम उनकी उदात्त स्मृति के लिए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। हम स्वतन्त्र भारत के प्रति सम्मान प्रकट करते हैं जिसने मानव-अस्तित्व के सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में मुक्ति का ज्ञान दिया। यह भारत ही है जिसने हमें सर्वोच्च साधना की सुविधा प्रदान की जिससे हम मुक्त होने की अपनी इच्छा-पूर्ति कर सकें। सभी अन्य साधनाओं के अर्थ, उनके मूल्य और महत्त्व तभी हैं, जब हममें मुक्त होने की तीव्र इच्छा हो। नहीं तो उसका कोई महत्त्व नहीं है।

हमारी मुक्ति की लालसा कल्पना की कल्पित वस्तु नहीं है। हम हजारों, लाखों अन्य वस्तुओं की लालसा करते हैं। अल्पकाल में तुरन्त ही जिन लक्ष्यों

को पाया जा सकता है, हम उनकी लालसा करते हैं। जो क्षणभंगुर, अनित्य, नित्य परिवर्तित, जिसके कोई मूल्य नहीं हैं, धूल के समान शुष्क उस अल्प की कामना हम करते हैं; सम्पूर्ण की नहीं। हम अपने-आपको किस प्रकार भारतवर्ष के बच्चे तथा महान् सन्त अरविन्द घोष तथा उनके समान अन्य अनेकों के वंशज और उत्तराधिकारी कह सकते हैं। हम उनसे किस प्रकार अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। शायद हम उन्हें कालवश पाने में सफल हो गये हैं, पर तत्त्व के रूप में, आदर्श के रूप में, आध्यात्मिक विशेषता, आध्यात्मिक प्रेरणा के रूप में नहीं। हमें साररूप में पाने का प्रयास करना चाहिए, केवल कालवश नहीं।

भारत के स्वतन्त्रता-दिवस तथा बाहरी बन्धन से स्वतन्त्र कराने वाले पाण्डिचेरी के महान् सन्त अरविन्दो के जन्म-दिवस पर हमारा यही सहयोग होगा। आज ही श्रावण मास का अन्तिम सोमवार है। ब्राह्ममुहूर्त अथवा उससे भी पहले प्रात: उठ कर हजारों की संख्या में भक्त जन सड़क पर आँधी-पानी में चल कर, अनेकों प्रकार की असुविधा उठा कर, पहाड़ों पर चढ़ कर नीलकण्ठ महादेव की आराधना के लिए जाते हैं। क्या हर प्रकार की असुविधा उठा कर, सारी परेशानियों का सामना करके, अपने-आपको पूरी तरह से थका कर, निढाल हो कर पहुँचने की ऐसी प्रेरणा तुममें भी है? ऐसा विश्वास, ऐसी तीव्र लालसा ही भारत की आध्यात्मिकता है। यदि हम कभी भी कुछ भी प्राप्त करते हैं, कुछ भी उपार्जित करते हैं, हमें अपने-आपको उसका हिस्सा बनाना होगा।

"श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्" (जिस मनुष्य में पूर्ण रूप से विश्वास की भावना है, वही ज्ञान प्राप्त करता है)। तुम्हारी तीव्र लालसा और विश्वास के अनुरूप ही तुम्हारा जीवन बनता है। ईश्वर से प्रार्थना है कि तुम जो पाना चाहते हो, उसे प्राप्त करके समृद्ध हो जाओ! ईश्वर करे, स्वतन्त्रता केवल तुम्हारे विचार का विषय ही न रह कर, वह तुम्हारी हथेली पर सरस फल के रूप में एक जीवन्त अनुभव के रूपं में हो जाये! ईश्वर करे, तुम्हारा अपना परम पुरुषार्थ स्वतन्त्रता के लिए हो! ईश्वर की ऐसी दिव्य कृपा आपके ऊपर हो, जिससे आप सबको उनका आशीर्वाद मिले!

३१

द डिवाइन इन्श्योरेंस कम्पनी

बहुत दिन पहले जब इस आश्रम में केवल सात-आठ सहवासी ही रहते थे, गुरुदेव ने बच्चों के लिए एक विद्यालय की स्थापना की। उस विद्यालय का नाम रखा 'शिवानन्द प्राइमरी स्कूल'। इसका उद्घाटन १९४२ में हुआ। विद्यालय जिस कक्ष में चलता था, वह प्रेस-भवन के पहले कक्ष में था, उसके पीछे जहाँ से आप अब प्रेस-भवन में प्रवेश करते हैं। उसी कक्ष के पास एक और छोटा-सा कक्ष था जिसमें अध्यापक रहते थे। वे अध्यापक आदरणीय मैठानी जी थे। वे शिवानन्द आयुर्वेदिक फार्मेसी कारखाने के अवकाश-प्राप्त मैनेजर थे। उनके १२ से ले कर १५ तक शिष्य थे तथा वे 'मास्टर जी' कहलाते थे। उनके अनेकों शिष्य अभी भी इसी क्षेत्र में रहते हैं।

गुरुदेव अक्सर उनकी कक्षा में पहुँच कर शिष्यों को चार पंक्तियों का छोटा-सा भाषण या तो 'योग' पर या 'दिव्य जीवन' पर दे दिया करते थे। उनका एक भाषण था—"आज मैं तुम्हें भक्तियोग पर भाषण दूँगा। भक्तियोग दिव्य प्रेम है। मीरा के समान गाओ, यही मेरा भाषण है।" अन्य एक भाषण था— "अपने जीवन का बीमा ईश्वर के साथ करो। हो सकता है, और दूसरी कम्पनियाँ डूब जायें; पर दिव्य बीमा कम्पनी (द डिवाइन इन्सोरेंस कम्पनी) नहीं डूब सकती। यही मेरा भाषण है।"

इस प्रकार आप भी अपने जीवन का बीमा ईश्वर के साथ कीजिए। अपने जीवन का बीमा, जीवन बीमा निगम, या किसी और ऐसी निजी कम्पनी से न करके ईश्वर के साथ कीजिए। कोई भी कम्पनी डूब सकती है, यहाँ तक कि बैंक और बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियाँ डूब जाती हैं। उनमें डाले हुए धन को आप खो सक़ते हैं; पर 'दिव्य बीमा कम्पनी' कभी नहीं डूब सकती।

एक मुस्लिम फकीर की कहानी है। उसकी झोपड़ी आँधी-पानी में नष्ट हो गयी। वह दिल्ली के निकट रहता था। बादशाह अकबर की उदारता प्रसिद्ध थी। वह उनके पास आया। उस समय बादशाह प्रार्थना कर रहा था, जैसा कि फकीर सुन सका, बादशाह और अधिक धन, बड़ी सेना आदि पाने की प्रार्थना अपने ईश्वर से कर रहा था। कुछ देर सुनने के बाद फकीर वहाँ से धीरे से चला आया। बादशाह को लगा था कि कोई उसके निकट था। उसने अपने अंगरक्षक को भेज कर फकीर को यह जानने के लिए बुलवा भेजा कि वह आखिर क्या चाहता था। फकीर से जब पूछा गया, तो उसका उत्तर था—"मैं आपसे कुछ माँगने के लिए आया था; परन्तु जब देखा कि आप स्वयं किसी के कुछ माँग रहे हैं, तब मैंने सोचा कि अवश्य ही वह सत्ता इतनी महान् होगी कि मेरा बादशाह भी उससे कुछ माँग रहा है, तो मैं स्वयं ही क्यों नहीं उस सत्ता से माँग लूँ। कोई उनसे मेरे लिए कुछ माँगे, क्यों न मैं ही उस महान् सत्ता से अपने-आप माँग लूँ।"

यह विचार आज प्राप्तः ही मेरे मन में कौंधा; क्योंकि उत्तर भारत और पंजाब आदि में यह परम्परा रही है कि इस पूर्णिमा पर बहनें अपने भाई की कलाई में चमचमाती हुई राखियाँ बाँधती हैं। यदि किसी के भाई न हो, तो वे कभी-कभी निंकट- सम्बन्धी या किसी मित्र को अपना भाई मान कर उसे राखी बाँधती हैं। इससे यह मित्र उसका शुभचिन्तक, रक्षक और जब उसे आवश्यकता पड़े, तब उसका सहायक हो जाये। वह उसके लिए उसकी सुरक्षा, अभय, संरक्षण और सहायता का आश्रय हो जाता है। वे इस चमचमाते हुए विभिन्न प्रकार के रेशमी और जरी के धागों को रक्षा-सूत्र कहते हैं।

आज ही रक्षाबन्धन है। यह वह दिन है, जब बहन अपनी सुरक्षा, संरक्षण, सहायता और अभय का आश्वासन पा लेती है कि 'मैं अकेली नहीं हूँ, मैं सुरक्षित हूँ।'

अभी-अभी मेरे मन में यह विचार आया कि किसी मानव को अपना संरक्षक, सहायक, अभयदाता औ़र सुरक्षा प्रदान करने वाला मानने की अपेक्षा क्यों न अपने रक्षा-सूत्र को सर्वोच्च सत्ता को बाँधा जाये? जैसा कि गुरुदेव ने कहा है— "अपने जीवन का बीमा अपने ईश्वर के साथ करो। दिव्य बीमा

कम्पनी कभी नहीं डूब सकती।'' यदि तुम मानव की अवश्यम्भावी दुर्बलताओं और दोषों को जानते हुए भी उस पर निर्भर करते हो, तब तुम्हें अनुभव होगा कि जब तुम्हें किसी से सहायता की आवश्यकता होगी, ठीक उसी समय वह व्यक्ति भी ऐसी ही स्थित में होगा, जब उसे भी किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता होगी। हो सकता है, उसे तुमसे अधिक सहायता की आवश्यकता हो। ऐसा ही होता है जगत् में। अर्जुन के साथ भी ऐसा ही हुआ : एक ऐसा व्यक्ति जिसके ऊपर सारी सेना पूरी तरह से निर्भर थी, एकाएक दु:खी हो कर विलाप करने लगा। उस समय यदि किसी महिला ने अर्जुन के हाथ पर रक्षा-सूत्र बाँधा होता, उसके पास वह सहायता के लिए जाती, तो उसे क्या सहायता मिल सकती थी? वह तो अधीर हो कर क्षतिग्रस्त स्थिति में हिम्मत हार बैठा था।

यदि तुम शत-प्रतिशत सुरक्षा, अबाधित पूर्ण आश्वासन के साथ निश्चित सहायता, सहारा और शक्ति के साथ सुरक्षा चाहते हो तो इसके लिए, इससे भी अधिक पाने के लिए ईश्वर को अपना रक्षक बनाओ। ''**त्वमेव सर्वं मम देव देव।**'' तब तुम पूरी तरह से सुरक्षित रहोगे। उसके लिए वे घोषणा करते हैं : ''**कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति**—ओ अर्जुन, इसे अच्छी तरह से समझ लो कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता, मैं उन्हें कभी दु:खी नहीं होने देता।'' जब वे ऐसा कहते हैं, इसका अर्थ है कि वे सर्वव्यापक हैं। उनका आश्वासन शत-प्रतिशत पूर्ण रूप से निश्चित है। इसीलिए संस्कृत के प्रसिद्ध श्लोक की अन्तिम पंक्ति में कहा गया है : ''**अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम; तस्मात् कारुण्य भावेन, रक्ष रक्ष महेश्वर, रक्ष रक्ष जनार्दन** (मुझे कहीं भी शरण नहीं मिल सकी, केवल आपके चरणों में ही मुझे शरण मिल सकती है। इसलिए दया करके रक्षा कीजिए। ओ सर्वोच्च स्वामी! रक्षा कीजिए। ओ स्वामी जनार्दन, मेरी रक्षा कीजिए।)।''

समय के साथ-साथ हमारे पुराण और शास्त्र अनेकों घटनाओं से इसे सिद्ध करते रहे हैं कि सत्य है तथा पूर्णतया सत्य है। और अन्य सारे अवलम्बन असफल हो सकते हैं; पर दिव्य अवलम्ब कभी असफल नहीं हो सकता।

द्रौपदी, मार्कण्डेय, सावित्री सभी ने यह सिद्ध करके दिखा दिया। भारतीय आध्यात्मिक इतिहास के सन्दर्भ में ही यह केवल सिद्ध नहीं होता। पूरी तरह से रहस्यमय मानव-समुदाय वह चाहे पश्चिम में हो या संसार के किसी भी भाग में क्यों न हो, सभी के जीवन में यह सिद्ध हो चुका है कि ईश्वर का अवलम्बन कभी असफल नहीं होता।

इसलिए विश्वास करने वाले के मन में तथा भक्त के मन में यह धारणा होनी चाहिए—"जब मेरे रक्षक ईश्वर हैं, तब मुझे क्या चाहिए? यहाँ तक कि यदि संसार की सारी धन-सम्पत्ति मेरे पास हो, पर ईश्वर न हों तथा मेरे पास कुछ भी न हो, मेरा सब-कुछ खो गया हो, मेरा सब-कुछ लुट गया हो, पर मेरे पास ईश्वर खड़े हैं, तब चाहे सारा संसार मेरा विरोधी हो जाये, मेरे पास सब-कुछ है।"

"जाको राखे साईंया मार सके ना कोई"—जिसकी रक्षा ईश्वर करते हैं, कोई उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता, यहाँ तक कि कोई एक बाल भी टेढ़ा नहीं कर सकता। महान् भक्तों और रहस्यवादियों के यह अपने अनुभव हैं। ईश्वर के ध्यान में लीन रहने वाला वास्तविक समर्पित भक्त और रहस्यवादी जिसके ईश्वर ही सब-कुछ हैं, वे ही उसके सर्वेसर्वा हैं, उसकी धन-दौलत हैं, एकमात्र सहारे, शक्ति, सहायक सब-कुछ हैं—"जब आप मेरे साथ हैं, तो मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

ओल्ड टेस्टामेंट के एक भक्तिगीत में कहा गया है :

ईश्वर ही मेरी भेड़, मेरा गड़रिया, मेरे गुरु हैं मुझे कोई अभाव नहीं है।
हरे-भरे चरागाहों में उन्होंने मुझे लेंटने का अवसर दिया।
वे स्थिर जल के निकट से मेरा मार्गदर्शन करते हैं।
वे मेरी आत्मा का पुनरुद्धार करते हैं।
वे मुझे धार्मिक पथ पर ले जाते हैं।
अपने नाम के लिए।

चाहे मैं घाटियों में मृत्यु की छाया में चलता हूँ।
मुझे किसी अनिष्ट का भय नहीं।

क्योंकि तुम मेरे निकट हो।
तुम्हारी छड़ी, तुम्हारा सहारा।
मुझे सुविधा प्रदान करते हैं।

तुम मेरे सामने एक मेज तैयार करते हो।
मेरे शत्रुओं की उपस्थिति में।
तुम मेरे सिर को तेल से अभिषिक्त करते हो।
मेरा प्याला छलकने लगता है।
निश्चित रूप से परोपकार और करुणा मेरे पीछे चलते हैं।
मेरे जीवन के सारे दिन।
मैं अपने स्वामी के घर में रहूँगा।
सदा के लिए।

इसी प्रकार पैगम्बर ईश्वर की सुरक्षा के विषय में कहते हैं, जब वह मनुष्य के साथ मित्रवत् व्यवहार करता है : "जब तक वह मेरे पास हैं, मुझे किसी पदार्थ का अभाव नहीं है। वह मुझे अपराजेय बना देते हैं। मैं मृत्यु की घाटी में अभय हो कर घूमता रहता हूँ। वह मुझे सहारा देंगे। मेरे शत्रु मुझ तक नहीं पहुँच सकेंगे।" तब मनुष्य को डरने की आवश्यकता नहीं है। अभय हो कर रहो!

अन्य शास्त्रों, जैसे महाभारत, रामायण और पुराणों में इस प्रकार के आश्वासन यहाँ-वहाँ दिये गये हैं। जब किसी ने सच्चे भक्तों के जीवन में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया है, उन्हें कई बड़ी रोमांचकारी घटनाओं का सामना करना पड़ा है, तब अपनी भूल का आभास करके उन्होंने उसके लिए पश्चात्ताप किया है। महान् भक्त राजा अम्बरीष के जीवन में किसी ने हस्तक्षेप करने का प्रयास किया। वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। उसे भी अपने अहंकार का मूल्य चुकाना पड़ा। उन्हें भी अम्बरीष के सामने झुक कर विनय के साथ उसकी खिचड़ी खानी पड़ी। क्योंकि उसने उसके जीवन में हस्तक्षेप किया, जिसने पूरी तरह से ईश्वर के हाथों में अपने-आपको सौंप दिया था।

इस प्रकार किसी की कलाई पर रक्षा-सूत्र बाँधने की इस प्रक्रिया के विचार ने एक नयी दिशा में सोचने का अवसर दिया है। क्या यह शत-प्रतिशत अच्छा नहीं है कि सर्वोच्च सत्ता को अपना संरक्षक, सहायक, रक्षक, भाई तथा

आपात् बन्धु बनाया जाये? अपूर्ण और नश्वर मानव-सत्ता को अपना बनाने की अपेक्षा आप इससे अच्छी और कौन-सी बुद्धिमानी का कोई कदम उठा सकते हैं?

गुरुदेव ने अपने भाषण के द्वारा ठीक इसी प्रकार की शिक्षा दी है : "अपने जीवन का बीमा ईश्वर के साथ करो, वे विश्वसनीय हैं।" इसलिए पूरे विश्वास और श्रद्धा के साथ, सच्चाई, ईमानदारी के साथ ईश्वर को अपना सर्वेसर्वा बना लेना। तब तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं है। तुम पूरी तरह से सुरक्षित रहोगे। तुम्हें किसी प्रकार की हानि नहीं उठानी पड़ेगी।

अनेकों भक्तों के ऐसे ही अनुभव हैं। आज तक भी जो सत्य घटित होता रहा है कि जो दृढ़ विश्वासी और ईश्वर के सच्चे भक्त हैं, जो आत्म-निवेदन और आत्म-समर्पण करते हैं, उनके जीवन के लिए भी वह सदा सत्य रहेगा। जब तक आकाश में सूर्य, चन्द्र और तारे चमकते रहेंगे, यह वास्तविकता रहेगी। इसे कभी मिटाया नहीं जा सकता। इसे असत्य नहीं ठहराया जा सकता। इसे बार-बार सिद्ध किया जा चुका है। यह शाश्वत सत्य है : जो ईश्वर पर निर्भर करता है, उसे कभी हानि नहीं पहुँचती।

इसलिए यदि तुम पूर्ण निश्चय के साथ विश्वसनीय, अचूक, पूरी तरह से संरक्षक, सहायक, शुभचिन्तक चाहते हो, तो उन पर निर्भर रह सकते हो। वह तुम्हारे लिए हर परिस्थिति में सारी कठिनाइयों और समस्याओं के लिए हर समय पूर्णता, विश्वसनीयता पूर्ण रूप से निश्चित और अच्छी तरह से योग्य सहायक होंगे। मनुष्य की ओर से कभी कुछ सम्भव और कभी कुछ असम्भव हो सकता है; पर ईश्वर के लिए कभी कुछ असम्भव नहीं है।

इसलिए तुम जो सबसे बड़ा काम कर सकते हो, वह यह है कि तुम्हें अपना रक्षाबन्धन दिव्य माँ, पिता, बहन, मित्र, सहायक, पोषक, शुभचिन्तक, संरक्षक और सुरक्षा को बाँधना है। इससे अधिक बुद्धिमानी और क्या होगी? इसलिए सर्वशक्तिमान् ईश्वर के संरक्षण में, उनके निश्चित और विश्वसनीय संरक्षण में हमें बुद्धिमान् आनन्दित और मुक्त हो जाना चाहिए। वे हमारे सबसे निकट और प्रिय हैं।

३२

दिव्य आगमन

जैसे-जैसे श्री कृष्ण जन्माष्टमी का शुभ दिन समीप आता जा रहा है, वैसे-वैसे हम भी दिव्य आगमन की ओर बढ़ रहे हैं। वह अपने में असाधारण है। असाधारण इस रूप में है; क्योंकि वहाँ हर प्रकार के खण्डनात्मक और अकल्पनीय तत्त्व दोनों एक-साथ मिल कर आ रहे हैं, क्योंकि परम परमेश्वर आदि नारायण स्वयं भगवान् कृष्ण के रूप में आने वाले हैं। हमें सन्देह होता है कि जब श्री कृष्ण का आगमन हुआ, उस समय चारों ओर देवत्व से हीन, सब तरफ तामसिक और राजसिक वृत्तियाँ, सब-कुछ अनाध्यात्मिक और आसुरी वृत्तियाँ भरी पड़ी थीं। तब ऐसा क्यों और कैसे घट सका!

दूसरी ओर ऐसा कहा जाता है कि जब भगवान् बुद्ध का आगमन हुआ, उस समय सब-कुछ सुन्दर और धार्मिक हो गया था। यद्यपि उस समय फूलों के खिलने का मौसम नहीं था, फिर भी वृक्ष फूलों से लद गये तथा जिन वृक्षों पर फल आते थे, वह पूरी तरह से फलों से भर गये। सरोवरों में कमल खिल उठे। नदियों का पानी जो मटमैला था, वह पारदर्शक स्वच्छ हो गया था। सभी ओर सुगन्धित ठण्ढी हवाएँ चल रही थीं। सब-कुछ धार्मिक, सब-कुछ सुन्दर—**'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** हो गया था। भगवान् राम का जन्म भी जब हुआ था, तब भी आश्चर्यजनक धार्मिक वातावरण हो गया था।

पर भगवान् कृष्ण का जब जन्म हुआ, उस समय की परिस्थितियाँ बहुत विपरीत थीं, चारों ओर दिव्यता से हीन, बहुत ही अनाध्यात्मिकता व्याप्त थी। उनका जन्म कारागार में हुआ। उनके माता-पिता दोनों को दीवारों के साथ बेड़ियों से बाँधा हुआ था। उनके हाथ भी हथकड़ियों से बँधे थे। सबसे दूर हटा कर उनको कारागार की बन्द कोठरी में रहना पड़ा था। उस पर ताला पड़ा रहता था तथा बड़े ही निर्दय रक्षक वहाँ की पहरेदारी करते रहते थे। श्रावण मास की

घनी अँधियारी मेघाच्छादित अर्ध रात्रि थी, घनघोर वर्षा हो रही थी। भगवद्गीता में जो-कुछ अमंगल बताया गया है—रात्रिकाल़, कृष्ण पक्ष, सूर्य का दक्षिणायन होना—वह सभी लक्षण उस समय पर थे।

उस समय भगवान् कृष्ण को सब प्रकार से अमंगल का सामना करना पड़ा। फिर ऐसी सारी अमांगलिक परिस्थितियों में भी एक यशस्वी दिव्य उपलब्धि थी। सारी विपरीत स्थितियाँ, उस समय सारी आसुरी शक्तियों पर विजय पाने के लिए, उनका अन्त करने के लिए उनका आगमन हुआ। ध्यान देने योग्य सबसे महत्त्व की एक बात यह थी कि दारुण अमंगल, विपरीत, आसुरी, अँधियारी परिस्थितियाँ होने पर भी, जिन्हें निराशाजनक भी कह सकते थे, देवकी और वासुदेव का विश्वास कभी नहीं डगमगाया।

वे पूर्ण रूप से निश्चिन्त थे कि अब तक जो-कुछ विपरीत रहा है, वह दैवी आगमन से सब-कुछ पूरी तरह से ठीक हो जायेगा। उनके मन में परम श्रद्धा थी। उनके हृदय में महान् विश्वास था। दैवी आश्वासन के प्रति पूर्ण विश्वास और श्रद्धा थी। उन्होंने सारी विपरीत स्थितियों को उसी के सहारे सहन किया। उनका विश्वास कभी डगमगाया नहीं। उन्हें ईश्वर में पूर्ण विश्वास था। उसी ने सारी दु:ख की परिस्थितियों में संघर्ष करने के लिए अविचल रखा। अन्ततः सौभाग्य से उन्हें मुक्त होने का अवसर प्राप्त हुआ। भगवान् के हाथों से ही वे बन्धन-मुक्त हुए।

हो सकता है कि यह एक संकेत है कि आध्यात्मिक साधक, भक्त, ईश्वर को पाने की इच्छुक आत्मा को किस प्रकार दृढ़ विश्वास में सुस्थिर हो जाना चाहिए। चाहे कितनी ही विपरीत परिस्थितियाँ क्यों न हों, चाहे कितने ही निराशाजनक लक्षण क्यों न हों, अन्ततः दृढ़ता के साथ ईश्वर में पूर्ण विश्वास रखते हो, उनके प्रति श्रद्धा, भक्ति तथा दैवी आदेश का पालन करते हो, तो विजय तुम्हें ही मिलेगी। तुम सारी बाधाओं को पार करके मुक्त हो कर भगवद्-स्वरूप प्राप्त कर लोगे। भगवान् कृष्ण को स्वयं कारागार में आना पड़ा। उन्होंने बेड़ियों को काट कर उन्हें मुक्त कर दिया। कृष्णावतार की यही विशेषता है। आरम्भ से ले कर अन्त तक वे असाधारण रहे।

सर्वोच्च स्वामी, जिनका जन्म विपरीत परिस्थितियों में हुआ, महान् विपत्ति और संकट की काली अँधेरी रात, सब पर विजय पा कर वे आये। उन्होंने बन्धन में रहने वाले अपने माता-पिता को बन्धन-मुक्त किया। ईश्वर करे, इस दैवी कृपा की वर्षा आपके ऊपर भी हो तथा आपको उनका आशीर्वाद प्राप्त हो! अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत् से सत् की ओर, मृत्यु से अमृतत्व की ओर जाने वाली तुम्हारी यात्रा में तुम्हें सफलता मिले! यही मेरी विनीत प्रार्थना है।

३३

शुभारम्भ

पूज्य परम प्रिय गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी महाराज की आध्यात्मिक उपस्थिति के लिए प्रेमपूर्वक प्रणाम, जिन्होंने कृपा करके हम सभी आध्यात्मिक साथियों को इस प्रातःकालीन घड़ी में, यहाँ इस शान्त, पवित्र समाधि हाल के मन्दिर में आकृष्ट किया है। उनकी गुरु-कृपा हम सबको प्राप्त हो!

मेरे पास इस सरल सत्य की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने के लिए अवसर भी है और कारण भी है कि गुरु-कृपा का सुस्पष्ट फल हम सबको उत्तराखण्ड में इस पवित्र आश्रम के रूप में मिला है। यह तपोभूमि है, भोगभूमि नहीं है। यह स्थान तपस्या, तितिक्षा और संयम के लिए है। जैसा कि महात्मा गान्धी ने कहा है, यह स्थान सादा जीवन उच्च विचार के लिए है।

इस स्थान पर दिये जाने वाले निर्देशों की दिशा में यदि हम अपने समय और जीवन का सदुपयोग नहीं करते, तो हम गुरुदेव, उनके जीवन और उनकी कृपा के प्रति अन्याय करते हैं। यदि हम उनकी कृपा और उसके महत्त्व को पहचान नहीं पाते, तो हमारी बड़ी शोचनीय दशा होगी। इस प्रकार की कमी को शास्त्रों ने गम्भीरता से लिया है।

उससे भी बुरी दशा वह होगी, जब ऐसे स्थानों पर उनका आचरण अनाध्यात्मिक, अदैविक होता है। उनका जीवन, आध्यात्मिक जीवन की सामान्य अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं होता, इससे वे अपने लिए घोर विपत्ति का अवसर उत्पन्न करते हैं। भविष्य के लिए वे अपने जीवन में अधिक दुःख को निमन्त्रित करते हैं। एक कहावत है : **"अन्यक्षेत्रे कृतं पापं, पुण्यक्षेत्रे विनश्यति; पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति"** (अन्य स्थानों पर किये गये पाप पुण्यक्षेत्र में नष्ट हो जाते हैं; लेकिन पुण्यक्षेत्र में किये गये पाप वज्र

के समान दुरूह हो जाते हैं)। इसका अर्थ है—उन्हें धोया नहीं जा सकता। क्या किया जाना चाहिए क्या नहीं, इस ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए दृढ़ता के साथ कहने का यही एक अच्छा ढंग है।

''**कालक्षेपो न कर्तव्यः।**'' समय व्यर्थ ही नष्ट नहीं करना चाहिए; क्योंकि समय बड़ा मूल्यवान् है। आध्यात्मिक साधना के अभ्यास, वैराग्य, विवेक, भ्रातृत्व, सहन-शक्ति, परस्पर सद्भाव और परोपकार, योग-भक्ति-वेदान्त का अभ्यास, गीता-ज्ञान-उपदेश और उपनिषद् के उद्बोधन के अतिरिक्त हम यहाँ और कुछ करने के लिए नहीं आये हैं। हम केवल वही करने के लिए आये हैं। यह स्थान उसी के लिए है।

और सब दिनों की अपेक्षा आज का दिन किसी कार्य के शुभारम्भ के लिए अत्यन्त मांगलिक दिन है। भगवान् श्री गणेश को समर्पित करने का दिन है, वे कार्यारम्भ में आने वाली सारी बाधाओं को दूर करने वाले देव हैं। वे सिद्धिदायक हैं। यदि तुम सही दिशा में कार्य करते हो, तो वे सफलता प्रदान करते हैं। इसलिए माना जाता है कि विजयादशमी के समान, कोई काम प्रारम्भ करने के लिए आज का दिन बहुत ही मांगलिक, बहुत ही उपयुक्त दिन है। हम कहाँ आरम्भ करेंगे? हम अपने भाव, विचार और कर्म की सारी अनुचित क्रियाओं और व्यवहार को रोक कर, वह सारी क्रियाएँ जो प्रतिकूल हैं, उन्हें रोक कर आरम्भ करेंगे। वे कहते हैं—''**तदुदितं कर्म स्वानुष्ठियताम्**'' (हमें वेदों के निर्देशानुसार कार्य करने चाहिए)। इस निर्देश में छिपा हुआ सत्य यह है कि हमें उसके विरुद्ध कुछ नहीं करना चाहिए। 'सच बोलो' का अर्थ यही है कि झूठ मत बोलो, यह उसमें निहित है। शाकाहारी बनो, इसका अर्थ यही है कि निरामिष भोजन, मांस का सेवन बन्द करो। आज उपवास है, इसका अर्थ कुछ खाना नहीं है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। यह इसमें निहित है। एक में दूसरा अर्थ निहित है।

ईश्वरीय दिव्य गुण तुम्हें मुक्ति की ओर ले जाते हैं—''**दैवी सम्पद् विमोक्षाय।**'' यदि जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मुक्ति है, तब मुक्ति की ओर ले जाने वाली केवल दैवी सम्पद् का ही अभ्यास हमें नहीं करना है, अपितु हमें

सारी आसुरी सम्पद् का त्याग कर देना चाहिए; क्योंकि उसका कहना है कि आसुरी सम्पद् बन्धन का कारण बनती है। इसलिए हमें केवल दिव्य गुणों का विकास ही न करके धीरे-धीरे बड़ी सावधानी से विरोधी गुणों को भी दूर करने का प्रयास करना चाहिए। यह भाव इसमें निहित है।

गुरुदेव ने अपनी पुस्तक सत्संग-भाषण (Satsanga Lectures) में कहा है : "आज आपको मैं ईश्वरोपलब्धि के एक सरल पथ के विषय में बताऊँगा। तीन सरल साधनाएँ आपको मुक्ति दिला सकती हैं—पहली साधना है अपने नकारात्मक अनाध्यात्मिक गुणों का नाश करो और सकारात्मक आध्यात्मिक गुणों का विकास करो। अपने सारे व्यावहारिक कार्य करते हुए निरन्तर ईश्वर का ध्यान करना दूसरी साधना है। और तीसरी अपनी सारी क्रियाओं को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दो।" इस प्रकार पहली साधना अपने नकारात्मक आसुरी गुणों का नाश तथा सकारात्मक दैवी गुणों का विकास करना है।

इसलिए आज के मांगलिक दिन, बाधाओं को दूर करके सफलता दिलाने वाले भगवान् गणेश की आराधना करते हुए हमें अपने अवगुणों का नाश करके उच्च उदात्त दिव्य गुणों, आध्यात्मिक सद्‌गुणों का विकास करना चाहिए। अपनी 'विश्व-प्रार्थना' में गुरुदेव ने कहा है : "हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।" यदि हम ऐसा करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, तब हमें भी अपने अन्दर दैवी गुणों का विकास करके ईश्वर की सहायता करनी चाहिए। तभी वे हमारी सहायता करके सफलता दिलवायेंगे।

कौन-से अवगुणों का नाश करना है? कौन-से दिव्य गुणों का विकास करना है? महान् पवित्र देवी शारदामणि जी, दक्षिणेश्वर के भगवान् श्री रामकृष्ण परमहंस देव की दैवी पत्नी हमें परामर्श देती हुई कहती हैं : "मेरे प्यारे बच्चो, दोष-दृष्टि की भावना अपने अन्दर से निकाल कर फेंक दो। दूसरों में कमियाँ खोजने की इस नकारात्मक आदत का नाश कर दो। जीवन बड़ा छोटा है। हमारे अपने दोष दूर करने के लिए ही समय नहीं है। हमारे अन्दर इतने दुर्गुण हैं, यदि हम उन पर विचार करके उनका विश्लेषण करके उन्हें पहचानना आरम्भ कर दें कि हममें कौन-कौन-से दुर्गुण हैं। उसके लिए हमें पूरा समय देना

पड़ेगा। यहाँ तक कि जो दुर्गुण हम सबमें हैं, हमारा पूरा जीवन भी उनको खोज नहीं पायेगा। यदि तुम अपना घर साफ न करके दूसरों के दोष ढूँढ़ते रहोगे, तब तो तुम वहीं-के-वहीं रहोगे जहाँ तुम थे।''

शायद इससे भी बुरा तब होगा, जब तुम अपना ध्यान ईश्वर की ओर, अपने इष्टदेवता और गुरु-चरणों में न लगा कर नकारात्मक रूप से दूसरों के दोष-दर्शन करने में, उनके स्वभाव में छिद्रान्वेषण करने में अपना समय व्यतीत करते हो, तब तुम अपने साथ तथा ईश्वर के साथ बड़ा अन्याय करते हो तथा गुरुदेव के साथ और उस रहस्यमय आश्रम के साथ अन्याय करते हो जिसे उन्होंने तुम्हारे लिए निर्मित करके जाते-जाते तुम्हें उपहारस्वरूप प्रदान कर दिया है। आत्म-विकास की जितनी सम्भव सुविधाएँ हो सकती हैं, वे सब उसमें हैं। दूसरों में दोष-दर्शन करके अपनी दृष्टि को नीचा बना कर तुम इस सबका तिरस्कार करते हो।

यह बड़ी गम्भीर समस्या है कि ईश्वर तुम्हें दिव्य बनाने के लिए सुविधाएँ प्रदान कर रहे हैं और तुम उसकी उपेक्षा करके अपना ध्यान वहाँ केन्द्रित कर रहे हो जिसकी तुम्हारे जीवन में कोई उपयोगिता नहीं है और जो तुम्हारे जीवन को नष्ट करके तुममें नकारात्मक संस्कार भरते हैं। ऐसे नकारात्मक भाव तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति को रोक देंगे। तुम्हारी साधना नष्ट हो जायेगी; क्योंकि यह भी एक छिद्र है जिसमें से हो कर आध्यात्मिकता दूर हो जायेगी।

तुम अपना ध्यान जिस पर केन्द्रित करते हो, वैसे ही बन जाते हो। यदि तुम मूर्खतापूर्ण ढंग से सोच कर दूसरों के नकारात्मक गुणों पर ध्यान देते हो, तो अपने-आपको सुधारने के स्थान पर अपने-आपको वैसा ही बना लोगे। तुम अपनी दृष्टि को महत् बनाने की अपेक्षा उसे अल्प बना लेते हो। यह बहुत बड़ी भूल है।

पावन माँ शारदामणि कहती हैं : ''अच्छा है कि अपने आध्यात्मिक विकास की ओर ध्यान दो। अन्य विषयों पर सोचते रहने से यह अधिक महत्त्वपूर्ण है। सदा अपनी सर्वोच्च भलाई पर ध्यान दो। ईश्वर ने तुम्हें यह जीवन दिया है, उसकी सर्वोच्च भलाई के लिए सदा सावधान रहो। छोटी-छोटी बातों

में अपने मन को इधर-उधर मत ले जाओ। जीवन बहुत छोटा है। समय भागता जा रहा है। जब तक तुम इसे पहचान पाओगे, तब तक जाने का समय आ जायेगा। यदि तुमने अपने मन को अनावश्यक वस्तुओं की ओर इधर-उधर भगा कर बहुमुखी और अव्यवस्थित बना दिया है, तब तुम्हें बाद में बड़ा खेद होगा, तुम दुःखी हो कर क्रन्दन करोगे।''

इसलिए इस प्रकार के दुर्भाग्य से अपनी रक्षा करो। सदा सच्चे और गम्भीर बनो। तुम्हें अपना समग्र मन-मस्तिष्क-बुद्धि सब ईश्वर पर केन्द्रित करके साधना करनी चाहिए। इसी के लिए आप सब यहाँ पवित्र उत्तराखण्ड में आये हैं। तुम्हें दूसरों के ऐसे कार्यों और उनकी व्यस्तताओं पर ध्यान केन्द्रित नहीं करना है जिनका तुमसे अथवा तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। कुछ व्यक्ति ऐसे हैं कि वह इस प्रकार के कार्य को किये बिना रह ही नहीं सकते और सबके लिए समस्या बन जाते हैं। सबसे खेदजनक तो यह है कि अपनी विकृत मानसिकता के कारण दूसरों को दुःखी करने के लिए उनके जीवन में विकार उत्पन्न करके उन्हें आनन्द आता है। आध्यात्मिकता की दृष्टि में यह भारी भूल है। आध्यात्मिकता की यह पहली और महत्त्वपूर्ण क्षति है। अहिंसा के सर्वथा विपरीत तुम कष्ट पाने वाले के मन-मस्तिष्क को उत्तेजित करके दुःखी करते हो। ऐसा करके तुम उसकी अपेक्षा अपने को भी हानि पहुँचाते हो। उसकी हानि से दसगुना अधिक आपको हानि पहुँचती है।

इसलिए आज पवित्र विनायक चतुर्थी के दिन पावन माँ शारदामणि देवी से संकेत ग्रहण क्यों नहीं करते। वो कहती हैं—''ओ परमेश्वर! मुझे दिखाया गया है, फिर भी मैंने अब तक अनुभव नहीं किया है कि यह एक बाधक तत्त्व है, क्योंकि यह मेरे स्वभाव का हिस्सा बन चुका है। मुझे अपने स्वभाव की इस वृत्ति से छुटकारा पाने के लिए अपनी दूसरी वृत्ति को बदल कर अपनी मूलभूत दैवी वृत्ति में स्थापित हो जाना चाहिए। इसलिए आज से मैं दूसरों के दोष-दर्शन न करने के स्वभाव का विकास करूँगा। मैं अपने मानवीय अस्तित्व के केन्द्रीय लक्ष्य से अपने-आपको हटने की अनुमति नहीं दूँगा। मन की इस पुरानी हठीली वृत्ति से मुझे वशीभूत नहीं होना है। अब से मैं इस भूल की पुनरावृत्ति नहीं

करूँगा। जो मेरे आध्यात्मिक विकास का अंग नहीं है, ऐसे किसी भी विषय के लिए मैं माया को अपना मार्गदर्शन नहीं करने दूँगा। ओ ईश्वर! मेरे इस उद्देश्य के लिए मेरी रक्षा कीजिए।''

इसलिए प्रत्येक दिन तुम्हें अपने को जगाना है। जीवन का जो प्रमुख लक्ष्य है, जिसके लिए तुम इस जग में आये हो, उसके प्रति चिन्तित रहना चाहिए। तथा जिस कारण से गुरुदेव ने तुम्हें दैवी पूर्णत्व के लिए, आध्यात्मिक विकास के लिए योग-वेदान्त की सुविधा वाले इस महान् साधना-क्षेत्र में बुलवाया है, यह जीवन के महान् लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सारी आवश्यकताएँ पूर्ण करता है। भगवान् गणेश जी तुम्हें अपने जीवन में सारी बाधाएँ दूर कराने में सहायक हों!

३४

आदर्शवाद का अर्थ

सर्वोच्च की प्राप्ति हेतु तैयारी पर हम बोल रहे थे। इस समय एक महत्त्वपूर्ण उच्चाधिकारी के स्वागत हेतु पूर्ण आश्रम को सजाया-सँवारा जा रहा है, इसका मार्जन, प्रक्षालन, रँगाई-पुताई सब हो रहे हैं। इससे कहीं अधिक सौ गुणा, हजार-गुणा सफाई और सारी तैयारियाँ ऐसे व्यक्तित्व के घर की होनी चाहिए जो आध्यात्मिक साधक और योगी हो, जिसे सर्वोच्च सत्ता, ब्रह्माण्डीय आत्मा, वैश्विक आत्मा, परमात्मा को अपने जीवन में ला कर उनका स्वागत करना है।

इस प्रकार की तैयारी का क्या अर्थ है? उससे क्या अपेक्षा की जाती है? उस तैयारी का अर्थ और संकेत यह है कि हम जिस सर्वोच्च सत्ता का स्वागत करना चाहते हैं, उसी के समान हम भी बन जायें। हम उनकी विशेषताओं पर ध्यान दे कर उनके-जैसा बनने का प्रयास करते-करते पूर्णरूपेण उनके-जैसे हो जायें। जब एक लौकिक उच्चाधिकारी, एक राष्ट्रपति आता है, तब हम उसके स्वागत में उसी के अनुकूल ऐसा वातावरण बना कर रखना चाहते हैं, जैसा ऊँचा उसका रहन-सहन है। हम उसके लिए स्वच्छ-से-स्वच्छ वातावरण तैयार करके लाल कालीन बिछाते हैं तथा घर के सारे साज-सामान को बदल डालते हैं। जितना अधिक-से-अधिक उसे सम्मान दे सकते हैं, देने का प्रयास करते हैं। हो सकता है, हम जो कर पा रहे हैं, वह भी उस स्तर का न हो जैसा उनका रहन-सहन हो। पुनरपि, हम अपनी सामर्थ्य से ऊपर जा कर उसे पूरा करने का प्रयास करते हैं। उतना ही हम कर सकते हैं।

इसी प्रकार जीवात्मा को भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार सर्वोच्च ऊँचाई तक ऊपर उठने का प्रयास करना चाहिए। उनका कहना है—‘‘ओ स्वामी! यही सबसे उत्तम मैं कर सकता था, मुझे अपनी सीमा के अनुसार हर प्रकार से

अपने आध्यात्मिक विकास के प्रकाश से प्रकाशित होने का प्रयास करना है।'' भगवद्गीता इसी प्रकार की चेतावनी देती है—''आसुरी गुणों को निकाल कर फेंक दो और अपने अन्दर दिव्य गुणों को अंकुरित करके, उनका विकास करके, उन्हें प्रकट कर दो। जितना तुमसे सम्भव हो सके, उतना अपनी सीमा के अन्दर ईश्वरीय गुणों को अपने अन्दर लाने का प्रयास करो। प्रत्येक की अपनी सीमा होती है। ईश्वर प्रत्येक से उसकी सीमा के अनुरूप अधिक-से-अधिक उसका विकास करने की अपेक्षा रखते हैं और चाहते हैं कि बाद में सब उनके हाथ में छोड़ दें।

यदि हम सबसे अच्छा प्रयास नहीं करते, यदि हम अपने सबसे अच्छे प्रयास करने में असफल होते हैं, तब हमें असफलता ही मिलेगी। हमसे जो अपेक्षा है, यदि हम उसकी पूर्ति नहीं करते, हम अपनी अपेक्षाओं के अनुरूप उन्नति नहीं करते, तो हम पूर्ण योगी नहीं हैं। हम कौशल के साथ अपना काम नहीं करते। यदि हम वह प्रयास नहीं करते जो हमें करना चाहिए, जो हमारी क्षमता के अनुकूल है, तब हम उसकी आवश्यकता पूर्ण करने में असफल होंगे।

ईश्वर हमसे यह अपेक्षा नहीं रखते कि हम रामकृष्णदेव परमहंस हो जायें, वह नहीं चाहते कि हम चैतन्य गौरांग प्रभु हो जायें या मीराबाई, प्रह्लाद, ध्रुव, मार्कण्डेय और भगीरथ हो जायें। पर वह हमसे यह तो अपेक्षा रखते हैं कि हम उनके निकट पहुँचने के लिए अपनी सीमा में रह कर, अपनी क्षमता के अनुसार जितना हो सकता है, उतना अच्छे-से-अच्छा प्रयास करें।

सम्भव है, हम रमण महर्षि न बन पायें; पर हम अपने अन्दर उनके गुण तो विकसित कर सकते हैं तथा जैसे वे थे, वैसा बन कर तो दिखा सकते हैं। हम उस स्थिति में नहीं हो सकते कि रावण के समान आत्मोत्सर्ग करके दिखा सकें, जिसने अपने सिर काट कर भगवान् शंकर के चरणों में समर्पित कर दिये थे; पर हम अपने अन्दर उस प्रकार का आत्मोत्सर्ग और आत्म-विस्मृति तो ला सकते हैं। हम असीसी के सन्त फ्रांसिस्को न बन पायें; पर उनकी समानता की चेष्टा कर सकते हैं। हम सभी से ऐसी आशा की जाती है कि हम उस रेत पर चलें, जिस पर हमसे पहले रहने वाले महानुभावों ने समय की रेत पर अपने

चरण-चिह्न छोड़े हैं। इसलिए अनुकरण करने का प्रयास करो। हम उनके अनुपात में उनके गुणों की प्रतिस्पर्धा न कर पायें; पर हम उनके समान व्यवहार तो कर सकते हैं।

आदर्शवाद का यही वास्तविक अर्थ है। हम अपने सामने कोई उदात्त आदर्श रखते हैं और उसका अनुकरण करने का प्रयास करते हैं। प्रयास करो कि महात्मा गान्धी के समान अहिंसावादी हो जायें। प्रयास करो कि विनोबा भावे के समान संयमी हो जायें। मीरा के समान बनने का प्रयास करो। प्रयास करो जैसे अन्यों ने धीरता के साथ प्रार्थना की और प्रतीक्षा करते रहे, प्रार्थना करते रहे और लम्बे समय तक प्रतीक्षा करते रहे। साधकों के लिए जो प्रमाण-चिह्न निर्धारित किये गये हैं, उन आदर्शों का पालन करने का प्रयास करना है—"महान् व्यक्ति के जीवन हमें बहुधा याद दिलाते रहते हैं कि हम अपने जीवन को उदात्त बनाते रहें।"

कभी निम्न कोटि के आदर्शों को अपनाने का प्रयास मत करना। यदि तुम हर प्रकार से उनके निकट नहीं पहुँच पाते हो, तो किसी निम्न स्तर के आदर्श को मत अपनाना। कहो कि—"मैं भरसक प्रयत्न करूँगा।" पर अपने आदर्श के स्तर को कम मत करना। अपनी आध्यात्मिकता को कम करने के लिए कभी समझौता मत करना। सितारों को अपना लक्ष्य बनाना। स्वामी कृष्णानन्द जी अक्सर कहा करते हैं—"अपना लक्ष्य शेर को बनाना अच्छा है। चूक जाओ तो उसके बाद लोमड़ी पर साधो और उसे मार दो।" ईश्वर के समान बनने का प्रयास करो। धरती पर ऐसे चलने का प्रयास करो जैसे ईश्वर चलते हैं। यही आदर्शवाद का अर्थ है—सुभाषचन्द्र बोस के समान वीर बनो, फ्लोरेंस नाइटिंगेल के समान आत्मोत्सर्ग करने वाला बनो। हरिश्चन्द्र के समान सत्यवादी बनो।

बुद्ध के समान धैर्यवान् बनो, क्राइस्ट के समान कृपालु बनो। सम्भव है, इस प्रकार से तुम कुछ बन जाओ। इस प्रकार से तुममें जो-कुछ बनने की क्षमता है, उससे कहीं अधिक अच्छे बन जाओगे। यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं है। यह कोई सामान्य बात नहीं है। यदि तुम हीरा हो, तो सबसे अच्छा हीरा बन कर

चमको। यदि माणिक हो, तो सबसे अच्छा माणिक बन कर चमको। यदि पन्ना हो, तो चमकदार पन्ना बन कर चमको। पन्ने की चमक हीरे के समान नहीं हो सकती। माणिक पन्ने के समान नहीं हो सकता; पर वह उत्तम प्रकार का माणिक तो हो सकता है। इसी प्रकार से त्यागी, विरक्त, योगी, ज्ञानी, विवेकी, विचारशील, आत्मसंयमी और संयमी बनो।

हम अपेक्षा रखते हैं कि ईश्वर में शान्ति और मित्र भाव होगा, वहाँ सब-कुछ सन्तुलित होगा। वहाँ पूर्ण नीरवता होगी और मित्रता और शान्ति में बड़ा सौन्दर्य होगा। जहाँ शान्ति है, वहीं आनन्द है। सब प्रकार से ऐसा बनने की कोशिश करो। स्वभाव में मित्रता का भाव लाने की कोशिश करो। दूसरों के साथ मित्रवत् रहो। अपने चारों ओर के जीवन में मित्र भाव रखो। हर परिस्थिति में सबके साथ मिल कर रहो।

''जब मैं सबके साथ मिल कर रहता हूँ, यदि मैं हर परिस्थिति को स्वीकार करके उसके अनुकूल हो जाता हूँ, उसके साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता हूँ, तब मेरा 'मैं' कहाँ है? मैं तो शून्य हो जायेगा।'' वेदान्त हमसे बिलकुल यही चाहता है, हमें ऐसा ही बनना चाहिए। तुम खो जाओ, यही वेदान्त तुमसे चाहता है। वह चाहता है कि तुम अपने को शून्य में परिणत कर लो; तुम कुछ नहीं हो, ऐसे बनो। इसी में तुम्हारी सबसे बड़ी भलाई है। अपने-आपको खो कर तुम समस्त ब्रह्माण्ड को पा जाओगे। तुम सब पा जाओगे। केवल अपने तक सीमित रहने पर तुम कुछ नहीं पा सकते। जो अपने जीवन की आहुति देते हैं, वे शाश्वत जीवन पाते हैं। जो अपने जीवन से चिपके रहते हैं, उनकी आध्यात्मिक मृत्यु हो जाती है।

आध्यात्मिक जीवन का असत्याभास यही है कि जो जीवन के इस छोटे 'मैं' पन से जुड़े रहना चाहते हैं, वे आध्यात्मिक पतन की ओर जाते हैं। और जो इस छोटे 'मैं' पन के बन्धन से अपने को छुड़ा लेते हैं, उन्हें शाश्वत जीवन की प्राप्ति होती है। इसीलिए श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु कहते हैं : ''घास की नोक से भी कम, वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु।'' वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु का तात्पर्य यह है कि जो सर्दी, गरमी, वर्षा, सूर्य का ताप, धूल, कोहरा, सब-कुछ सह

कर भी सबको सतत अपनी छाया, पुष्प और फलों की प्राप्ति कराता रहता है। ये सब सहन करके भी प्रचुर मात्रा में सब-कुछ दूसरों को देता चला जाता है। ये उन्हें भी देता है जो उसकी देखभाल करते हैं और उन्हें भी देता है जो इसे अपनी कुल्हाड़ी से इसकी डालें काट कर और यहाँ तक कि उसकी जड़ों पर भी आघात पहुँचाते हैं तथा अन्त तक देता ही रहता है। ''धन्य हैं वे जो विनीत और विनम्र आत्माएँ हैं, वे ही स्वर्ग के साम्राज्य की प्राप्ति करते हैं।'' तुम जो-कुछ अपने पास रखते हो, उससे तुम्हारी हानि होती है, तथा जिससे तुम्हें विरक्ति होती है, उसे तुम प्राप्त कर लेते हो।

एक कवि ने ठीक ही कहा है—'' जिन्हें कुछ न चाहिए वे शाहन के शाह।'' गुरुदेव ऐसे ही शहंशाह थे। हमने उनमें जैसा कि चैतन्य महाप्रभु ने कहा था, वैसी ही सहिष्णुता का स्वभाव देखा है। हमने हर समय उनमें विनीत भाव देखा है—''घास की नोक से भी कम।'' हमने उनमें **'अमानिन मानदेन'** जैसे गुणों को अक्षरश: सत्य होते देखा है। वे सदा प्रसन्न हो कर दूसरों का आदर और उनके प्रति श्रद्धा रखते थे। इस प्रकार यह कहा गया है कि जो आध्यात्मिकता, दिव्यता और ईश्वरीय गुणों के निकट जाना चाहता है, उसका स्वभाव ईश्वरीय गुणों से पूर्ण हो जाता है।

भगवान् कृष्ण ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने वाले सम्मानित अतिथियों और सन्तों के चरण धोये। वे अपने शिष्य के रथ के साधारण से सारथि बने तथा रथ के सारथि होने के नाते उन्हें दिन के अन्त में रथ के घोड़ों को स्नान कराना और उनके घावों को साफ करना होता था। उन्होंने अपने इस कर्तव्य का पालन सबके सामने, हजारों सैनिकों की उपस्थिति में किया। हो सकता है, वह उन्हें देख कर मुस्कराये हों, उन्होंने उनका उपहास किया हो; किन्तु श्री कृष्ण ने उस पर ध्यान नहीं दिया। ऐसा नहीं था कि यह काम केवल एक बार कर दिया हो। उन्होंने इस सारथ्य का कार्य पूरे अठारह दिन तक किया। सूर्योदय से ले कर सूर्यास्त तक किया।

भगवान् श्री कृष्ण ने अपने बचपन के निर्धन सहपाठी मित्र सुदामा के पैर भी धोये। उसकी पत्नी ने उसे श्री कृष्ण के पास जाने के लिए विवश किया।

उसने कहा—"तुम यदि अपने लिए नहीं जाना चाहते, तो कम-से-कम भूख से तड़पते हुए अपने परिवार को बचाने के लिए ही श्री कृष्ण के पास जाओ। वो एक राजा हैं, धनी हैं। वे तुम्हें वह सब-कुछ दे सकते हैं जो तुम्हें चाहिए।" अपनी चादर में लिपटा निर्धन, विनीत, कंगाल, भूख से पीड़ित सुदामा उनके महल में गया। जैसे ही श्री कृष्ण को उसके आने का पता लगा, वे उससे मिलने के लिए दौड़े चले आये। उन्होंने उसके स्वागत के लिए अपने किसी सेवक को नहीं भेजा; अपितु स्वयं वहाँ आ कर उसका स्वागत किया। उसका हाथ पकड़ कर ले जा कर उसे अपने सिंहासन पर बैठा दिया और स्वयं नीचे बैठ गये।

हम कितनी आसानी से सेवा-सुश्रूषा की ऐसी छोटी-छोटी प्रसिद्ध घटनाओं को भूल जाते हैं। ऐसी घटनाएँ आध्यात्मिक प्यास और आध्यात्मिक जीवन के लिए सारतत्त्व हैं। सामान्य पाठकों और सामान्य भक्तों के लिए उनका कोई विशेष महत्त्व न हो; पर साधकों के लिए इसका बहुत महत्त्व है। जीसेस ने कहा है—"आपस में एक-दूसरे को ऐसे ही प्यार करो जैसा मैं तुम सबको प्यार करता हूँ। इससे बड़ा और कोई प्रेम नहीं हो सकता जहाँ अपने मित्र के लिए कोई अपने जीवन का उत्सर्ग कर दे।" और, उन्होंने जीवन का उत्सर्ग इसी प्रकार करके दिखा दिया। उन्होंने कहा—"ईश्वर से तथा अपने पड़ोसी से ऐसे प्यार करो जैसा तुम अपने-आपसे करते हो।" चैतन्य महाप्रभु ने भी ऐसा ही प्रेम ईश्वर के प्रति करके दिखा दिया।

अतीत रात्रि में कोई ईश्वर नहीं बन सकता। ईश्वरीय स्वभाव में विकसित होना कोई चमत्कार नहीं है। अकस्मात् कायापलट नहीं हो सकती। हाँ, ऐसा हो सकता है, कहीं कोई विरला लाखों में एक ही हो सकता है। अन्यथा यह विकास-क्रम पुष्प कली की पंखुड़ियों के खिलने के समान धीमा, स्थिर और दिन-रात चलने वाला है, उसी प्रकार जैसे कलियाँ निशा के मौन (नीरव) वातावरण में खिल जाती हैं और मनुष्य को उसका आभास भी नहीं होता, न ही उसका विकास-क्रम वह देख सकता है। एवंविध धैर्य और दृढ़ प्रयास, ईमानदारी और लगन, आकांक्षा, उत्कण्ठा, प्रार्थना और परमात्मा के चरणों में

समर्पण भाव से मनुष्य समय के साथ दिव्यता में प्रवेश करता है। उसमें दिव्यता का विकास होता है।

योगी, साधक और ईश्वर के भक्त अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, अपने जीवन में ऊपर चढ़ने के लिए एक-एक कदम संघर्ष करते हुए असावधानों के मध्य सावधान, सुषुप्त लोगों के मध्य जागृत, आलस्य और तन्द्रा में पड़े व्यक्तियों के मध्य सक्रिय रह कर सदा परिश्रम करके अपने जीवन को हितकर बनाते हैं। इसे साधना कहते हैं , इसे आध्यात्मिक जीवन कहते हैं।

ईश्वर ने तुम्हें जिनके मध्य में अपना आध्यात्मिक विकास करने के लिए रहने का आदेश दिया है, तुम्हें अपने उसी आध्यात्मिक परिवार के साथ समस्वर हो कर जहाँ तुम हो वहीं से अपना जीवन आरम्भ करना चाहिए। ईश्वर ने तुम्हें जो परिस्थितियाँ प्रदान की हैं, वही सबसे उत्तम हैं। वह अच्छी तरह से जानते हैं कि किसकी क्या आवश्यकता है; इसीलिए तुम्हारी आवश्यकता के अनुसार उन्होंने तुम्हें सब-कुछ दिया है। इस सत्य को विनयपूर्वक पहचान लेना चाहिए कि ईश्वर जो करते हैं, वह सब ठीक होता है : ''मैं गलत हो सकता हूँ। मैं समझ न पाऊँ, पर ईश्वर जानते हैं। उन्हें यह भी ज्ञात है कि यदि परिवर्तन करना है, तो वह कैसे किया जाये।'' ईश्वर भूल न जायें या वह भूलें कर सकते हैं, हमें इसके लिए आतुर नहीं होना चाहिए।

ईश्वर ने जिन परिस्थितियों में रखा है, उसका सदुपयोग करो। अपने परिवेश में समन्वय बनाये रखो। ईश्वर ने अपनी असीम बुद्धि, प्रेम और न्याय के आधार पर तुम्हें जिन लोगों के बीच में रखा है, उनके बीच में रह कर उनके प्रति प्रेम और मित्र भाव विकसित करो। यदि उन्हें कुछ और करना होता, तो उनमें इतनी सामर्थ्य थी कि वह जो चाहते, कर सकते थे। इसलिए उन्हें सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् कहते हैं। उन्हें निमन्त्रित करने की आवश्यकता नहीं है—''सुनो! मैं इस स्थिति में हूँ कि तुम आओ और मुझसे सहायता प्राप्त करो।'' वह सदा सर्वत्र विद्यमान हैं, उनके आने की आवश्यकता नहीं है। अपनी इच्छानुसार तुम उन्हें पुकार सकते हो। वह सदा तुम्हारे चारों ओर हैं।

अब तुम जिन परिस्थितियों में हो, उन कारणों में तुम्हें सबके साथ प्रेम, करुणा, धैर्य, सहिष्णुता, सहन-शक्ति, मित्रता, प्रार्थना करने की प्रवृत्ति और जो-कुछ जैसा भी है, उनके प्रति आदर भाव रखो। आत्म-विजय और आध्यात्मिक शक्ति का विकास करने के लिए ये आवश्यक तत्त्व हैं। जो इन तत्त्वों को ग्रहण करता है, उसे ईश्वर और अधिक मात्रा में उन तत्त्वों को उपलब्ध करवाते हैं। तुम्हारे पास जितना है, तुम्हें उससे और अधिक मिलेगा। जिसने इस सबका सही मूल्य जान लिया है और स्वयं को उसी से समृद्ध करता है, वही अधिकाधिक प्राप्त करने का अधिकारी है। तब परमात्मा कहते हैं—"हाँ, हाँ, उसने इसका मूल्य पहचाना है। मुझे उसे और देना चाहिए।" और पूर्ण (उत्सिक्त) होने तक तुम प्राप्त करते रहोगे।

गुरुदेव का यह सेवक यह सब नहीं कह रहा। ऐसा कहा जा चुका है। अत: वह पुरातन काल की बुद्धिमानी अथवा विवेक को तुम्हारे समक्ष रख रहे हैं, जिसे तुम बीसवीं शताब्दी के बालक के रूप में ग्रहण कर रहे हो। जो तुम्हारा है, वह तुम्हें दिया जा रहा है। हमारे पास जो-कुछ भी है, प्राय: उसकी हम उपेक्षा कर देते हैं अथवा उस पर ध्यान नहीं दे पाते। हम भूल जाते हैं, उपेक्षा कर देते हैं, उल्लंघन कर जाते हैं। आवश्यकता है कि पुन: इसे तुम्हारे जीवन में मुख्य स्थान प्राप्त हो। इसीलिए प्रतिदिन प्रात:काल में ईश्वरेच्छा से वही किया जा रहा है। जो तुम्हारा है, उसे तुम प्राप्त कर रहे हो। कदाचित् उसे तुम भूल गये थे अथवा उसका मूल्यांकन नहीं कर पाये थे।

ईश्वर स्वयं तुम्हारे अन्दर प्रेम-रूप में प्रकट होते हैं। तुम्हें इस तथ्य को जान लेना चाहिए कि ज्ञान ही ईश्वर का प्रेम है। विपत्ति और संकट ईश्वर का प्रेम है। विकास की सम्भावनाएँ, आध्यात्मिकता की उन्नति की सुविधा प्रदान करना ईश्वर का प्रेम है। गंगा के किनारे जीवन ईश्वर का प्रेम है। शिवानन्द आश्रम का जीवन ईश्वर का प्रेम है। जीवन में योग, वेदान्त, कर्मयोग और ध्यान करना ईश्वर का प्रेम है। उनका असीम प्रेम, महान् प्रेम उनकी सम्पत्ति है।

उनके नाम-संकीर्तन का अवसर मिलना ईश्वर का प्रेम है, उससे भी अधिक आध्यात्मिक सत्संग, साधकों और भक्तों के साथ रहने का अवसर प्राप्त

होना ईश्वर का प्रेम है। क्या यह कोई साधारण बात है कि किसी को आध्यात्मिक व्यक्तियों, साधकों, योगियों, ईश्वर के भक्तों, धर्मप्रेमियों, आदर्शवादियों, सात्त्विकों के बीच रहने का अवसर प्राप्त हो? यह पृथ्वी पर स्वर्ग के समान है। यह ईश्वरप्रदत्त उपहार है। उनका अतुल प्रेम इस रूप में तुम्हें प्राप्त हो रहा है।

मैं यह कह कर अपनी बात समाप्त करता हूँ—"जिसके पास कान हैं, वह सुने। जिसके पास आँखें हैं, वह देखे। खोजो, वह तुम्हें मिल जायेंगे।" ईश्वर तुम सभी को आशीर्वाद दें! उन्होंने पहले से ही तुम्हें आशीर्वाद दे दिया है। तुम उनके आशीर्वाद को पहचान सको। उनका आशीर्वाद तुम्हें प्रचुर मात्रा में हर प्रकार से हर तरफ से मिल रहा है, उसे पहचानने की शक्ति वह तुम्हें प्रदान करें! उसे पहचान कर उसका आनन्द लेने की क्षमता प्रदान करें। ईश्वर करे, तुम उस आशीष का उत्कृष्ट और सर्वोत्तम लाभ उठा सको!

३५

स्वत्व-प्रतिपादन

हे प्रभु ! आप ही प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व में छिपे हुए आन्तरिक दिव्य सारतत्त्व हैं। आपकी दिव्यता का प्रसार सारे जगत् में है। उस असीम सत्ता के लिए हमारी श्रद्धांजलि है जिन्होंने अपने-आपको अगणित नामों और रूपों में प्रकट किया है और जिनके कारण हमारा बाहरी अस्थायी अस्तित्व है। जितने भी अगणित नाम, रूप, आकार आपने निर्मित किये हैं, वह सभी आपके बाह्य दर्शन के समान हैं। आप सभी के अस्तित्व को समान रूप से जोड़ते हुए आन्तरिक आध्यात्मिक एकता की एक सामान्य चेतना के छिपे हुए आन्तरिक सत्य के रूप में स्थित हैं।

आपकी श्रेष्ठता, आपका सौन्दर्य, आपकी अनन्तता का परिचय आपके अनगिनत विभिन्न रूपों में प्रकटीकरण से मिलता है। आपके प्रकट और अप्रकट दोनों ब्रह्माण्डीय स्वरूपों को हम अपनी श्रद्धांजलि देते हैं तथा श्रद्धास्पद आराधना करते हैं। हम आपकी पूजा आपके सहस्र मूर्ति, सहस्र पैर, आँखों, सिरों और हाथों के रूप में करते हैं। हम आपकी पूजा उस रूप में भी करते हैं जो एक ही है तथा सब कहीं छिपा हुआ है (**''एको देवः सर्वभूतेषु गूढः''**)।

हमें ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान और धन्यत्व प्रदान करो कि आपकी विविध प्रकार की दृश्य-अदृश्य अभिव्यक्तियों में आपकी विद्यमानता को पहचान सकें। हमें वरदान दो, आशीर्वाद दो, सामर्थ्य दो कि हर समय तुममें ही वास करें। ध्यानावस्था में अन्तर्दृष्टि से तुम से एक हों और तुम्हें देखें और आँखें खुलने पर विविध अभिव्यक्तियों में तुम्हारा ही दर्शन करें।

हे प्रभु! आप हर प्रकार से हमारी सहायता करके हमें इस योग्य बना दीजिए कि हम आपकी चेतना के प्रति जागरूक हो कर आपको अपना सर्वस्व

मान सकें। आपके कारण ही हमारे जीवन की सारी गतिशीलता है। इससे बड़ा जीवन का सौभाग्य और कुछ नहीं हो सकता है। जब हममें इस प्रकार की पहचान, ऐसी दृष्टि, ऐसी जागरूकता, उनके पास आने की सुविधा, जीवन के प्रति ऐसा दृष्टिकोण आ जाये कि हम आपके हो कर रहें। हम एक क्षण के लिए भी आपसे कभी दूर न हों। अपने दैविक स्वरूप के दर्शन कराने के लिए आपने जैसी दृष्टि अर्जुन को प्रदान की थी, वैसी ही दृष्टि हमें भी प्रदान कीजिए।

अन्तर में बैठी सत्ता द्वारा प्रोत्साहित और गुरुदेव द्वारा प्रेरित-प्रकाशित आत्माओ! आज हमारे पास वह अवसर है जब हम कह सकें, जिसे गुरुदेव प्राय: कहा करते थे—"सर्वोच्च आशीर्वाद पाना तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। दैवी पूर्णता, गहन शान्ति, शाश्वत आनन्द तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। अभय और मोक्ष तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है, क्या तुम अनावश्यक रूप से अपने बन्धन को लम्बा खींचना चाहते हो। आओ, आओ, योगी बन जाओ। आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। अपने इस अधिकार की माँग कहीं दूर भविष्य में नहीं, अभी पूरी करो, इसी घड़ी में पूरी करो।"

इसी सन्दर्भ में, गुरुदेव के इस विश्वास पर हमने अपना जीवन बिताया है कि दिव्यता, स्वतन्त्रता, मोक्ष, भय रहित शान्ति और आनन्द तुम्हारे जन्मसिद्ध अधिकार हैं। बन्धन, दु:ख, व्याकुलता, रोना-विलाप करना—यह सब नहीं, यह सब अनावश्यक ऊपरी तत्त्व हैं जिन्हें दूर किया जा सकता है । तुम्हारे जन्म का यह उद्देश्य नहीं है।

यद्यपि गुरुदेव ने तुमसे इस सन्दर्भ में कह दिया है कि सर्वोच्च आशीर्वाद तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे माँगने के लिए भी तुमसे कहा है। इसी प्रकार दिव्य गुरु जीसेस ने यह उपदेश दिया है—"माँगोगे तो तुम्हें मिल जायेगा, खोजोगे तो पा जाओगे, खटखटाओगे तो द्वार तुम्हारे लिए खुल जायेगा।" गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी ने भी कहा है—"अपने जन्मसिद्ध अधिकार को माँगो।" हमें माँगना है।

सर्वोच्च आशीर्वाद पाने के लिए प्रत्येक आवश्यक तत्त्व तुम्हारे अन्दर है। हमें उसे भीतर से जगाना है; जगा कर, सक्रिय करके उसका पालन करना है, तभी हम अपने अधिकार की प्राप्ति कर सकेंगे। यदि हम खोजेंगे, तो प्राप्त भी कर लेंगे और उस धन्य प्रदेश के प्रवेश-द्वार हमारे लिए खोल दिये जायेंगे।

हमें प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना आध्यात्मिक जीवन का अंग है। यह प्रश्न खोज, खटखटाना, प्रार्थना का अधिकार रखना, आकांक्षा, योग्यता, यही सब साधना है, योगाभ्यास है, व्यावहारिक आध्यात्मिक जीवन है। तुम साधक और जिज्ञासु के रूप में जो भी हो, उसका सारतत्त्व इसी में निहित है।

भगवान् राम ईश्वरावतार थे। देव तुल्य, जिसके विषय में शास्त्र घोषणा करते हैं तथा सारे सन्त उसकी पुष्टि करते हैं, वे सर्वशक्तिमान् थे, सब-कुछ करने में सक्षम थे। केवल कुछ करने में ही सक्षम नहीं थे, प्रत्युत क्या करना चाहिए, उसे जानने में भी वे सक्षम थे; क्योंकि वे सर्वज्ञ थे। वे कहीं भी कुछ भी करना चाहते थे, वह कर सकते थे; क्योंकि वे सब जगह रहते थे, सर्वव्यापी थे। ईश्वरावतार भगवान् राम लंका में सीता जी के पास उपस्थित थे, वे उन्हें वापस लाना चाहते, तो वे पूर्णतया जानते थे कि सीता जी को वापस लाने के लिए उन्हें क्या करना है। उनके अन्दर इतनी शक्ति थी कि वे जहाँ चाहते, वहाँ पहुँच कर सीता जी को पलक झपकते ही ला सकते थे। लेकिन मानव-रूप में प्रकट होने के कारण उन्होंने स्वेच्छा से मानव-अस्तित्व की अभिव्यक्ति की, धरा धाम पर यहाँ के सब नियमों का पालन और संघर्ष किया।

उन्होंने साधना की। उन्होंने देवी माँ सीता की खोज की, और पूछते फिरे—"क्या तुमने सीता जी को देखा था? क्या वह इस रास्ते पर आयी थीं? क्या तुम बता सकते हो कि वह अब कहाँ होंगी, मैं उन्हें कहाँ खोजूँ?" अपने भाई की सहायता से जहाँ वह रह रहे थे, उस पूरे क्षेत्र में खोज लिया। उन्होंने जंगल के निवासियों से सक्रिय सहायता माँगी। उनसे सहायता माँगने में वे पूर्ण रूप से विनयी थे। कड़ी मेहनत के बाद उन्होंने बन्दर-भालू तथा अन्य प्रकार के वनवासियों की सहायता से पुल का निर्माण किया। सभी ने एक हो कर परिश्रम किया। सभी का एक ही लक्ष्य था—"हमें सीता को खोजना है, उन्हें लाने के

लिए हमें राम की सहायता करनी है।'' एकाग्रचित्त हो कर पूरी शक्ति के साथ सबका ध्यान बस एक ही लक्ष्य को पूरा करने में लगा था कि सीता को खोज कर उन्हें वापस लाना है।

इस प्रकार की सारी प्रक्रिया साधक और अन्वेषक को अपने जीवन में करनी चाहिए। शारीरिक, जैविक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक हमारी सारी शक्तियों को अनुकूल बना कर, सबको एक ही लक्ष्य-प्राप्ति पर ला कर केन्द्रित करना चाहिए। हमारे पूर्ण व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति पर केन्द्रित कर देना चाहिए। किसी की अवमानना (अवज्ञा) नहीं करनी चाहिए। हमारी इच्छा-शक्ति, आत्म-शक्ति, मनः-शक्ति, हमारी आध्यात्मिक शक्ति आदि समस्त शक्तियाँ इसी प्राप्ति हेतु लगनी चाहिए। अपने व्यक्तित्व की सारी क्षमताओं को साधना, योग, आध्यात्मिक जीवन और अभ्यास में लगा देना चाहिए। तभी अयोध्या के महल के राजसिंहासन पर बैठने के योग्य हो सकते हो। सक्रिय हो कर अपनी शक्ति का प्रयोग करने पर ही सफलता मिलती है।

हमारी व्यक्तिगत (व्यष्टि) चेतना पूर्णरूपेण पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ऐसे अनुशासित है, मानो दस सिर वाले रावण ने हमारे व्यक्तित्व की चेतना का अपहरण करके अपने अधिकार में कर लिया हो। तुम इन ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के अधिकार में फँस गये हो। यही रावण है और इस पर विजय प्राप्त करनी है। इस अतिक्रमण (संघर्ष) में, इस सम्मुखागमन में, इस विजय में हमें सम्पूर्ण व्यक्तित्व की शक्ति को लगाना है। इस पर ध्यान करो।

और, सम्पूर्ण व्यक्तित्व का संयोग ही दिव्य जीवन का सार है; क्योंकि समस्त शारीरिक प्रक्रियाओं, मानसिक शक्तियों, भावनात्मक शक्तियों और बुद्धि को इस दिव्य लक्ष्य, वेदान्तिक साक्षात्कार, आत्मज्ञान, ब्रह्मसाक्षात्कार की ओर ले जाने के लिए यह एक प्रोज्वल उपगमन है।

यह सुखद संयोग है कि भारत के राष्ट्रपति के इस आश्रम में निकट आगमन ने तुम्हारे जीवन की प्रकृति के उजागर कर दिया है। आप सभी को एक-एक बैज (badge) लगाने के लिए दिया गया है जिसके बीचों-बीच जीवन

का सर्वोच्च लक्ष्य 'ॐ' लिखा है। सारे माण्डूक्योपनिषद् में सर्वोच्च केन्द्रीय सत्य की व्याख्या इसी बात पर केन्द्रित है कि 'ॐ' ईश्वर का ही प्रतीक है। यही केन्द्रीय लक्ष्य और सर्वोच्च उद्देश्य है, जिसे प्राप्त करना तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है और जिसकी दिव्य पूर्णता और समग्रता पहले से ही तुममें है। उसे ही तुम्हें प्राप्त करना है।

अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तुम्हें क्या करना है, वह सब इस बैज पर लिखा है। यह तुम्हें सदा याद दिलाता रहेगा कि अपने जीवन का उपयोग तुम्हें किस प्रकार करना है। गुरुदेव का उद्‌बोधन पहचान-चिह्न (बैज) पर लिखा है—सेवा, प्रेम, ध्यान, साक्षात्कार, स्वार्थ भाव का त्याग करो। अपनी सारी क्रियाएँ निष्काम कर्मयोग पर केन्द्रित करो। ईश्वर के प्रकट विराट् रूप की सेवा नि:स्वार्थ भाव से करो। अपनी पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य के साथ चित्त-भ्रम, संवेदनाओं और भावनाओं को भक्ति भाव से सगुण-साकार ब्रह्म की ओर उन्मुख कर दो। वह ही तुम्हारे पिता, माता, मित्र, सम्बन्धी, धन-सम्पदा, ज्ञान तथा तुम्हारे सब-कुछ हैं। वे तुमसे अधिक तुम्हारे हैं : "**त्वमेव सर्वं मम देव देव**"— "हे देवों के देव, तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो।" प्रतिदिन सजग हो कर एकाग्र चित्त से महान् सत्य पर अपना ध्यान केन्द्रित करो। गुरुदेव ने दिव्य जीवन तुम्हें उपहार-स्वरूप दिया है। इसलिए अपनी शारीरिक, मानसिक, वैचारिक, बौद्धिक सभी शक्तियों से ईश्वर को पाने का प्रयास करो।

तुमसे अपेक्षा की जाती है कि तुम दिव्य जीवन जिओ। अपने मन में गहराई से समझ लो कि मैं कौन हूँ? मैं नि:स्वार्थ सेवा, भक्ति और उपासना, एकाग्रता और ध्यान, आकांक्षा और उसे प्राप्त करने का केन्द्र हूँ। ऐसा मेरा जीवन होना चाहिए। मेरा जन्म इसीलिए हुआ है। मुझे अपनी सामर्थ्य के अनुसार, अपनी पूरी मानवीय शक्ति से अपने व्यक्तित्व के मानवीय स्वरूप में उस दिशा की ओर जाना है, जिससे मुक्ति प्राप्त हो सके।

तुम्हारे ये चिह्न तुम्हारा ध्यान आकर्षित कर इस महान् सत्य का स्मरण कराते हैं कि ईश्वरोपलब्धि और दिव्य पूर्णता तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। अभय, स्वतन्त्रता, सर्वोच्च गहन शाश्वत शान्ति एवं असीम आनन्द तुम्हारा

जन्मसिद्ध अधिकार है। इस प्रकार बलपूर्वक ईश्वर, विभिन्न प्रकार से तुम्हारा ध्यान अपनी ओर, तुम्हारे जीवन के इस केन्द्रीय लक्ष्य की ओर, तुम्हारे जीवन के सर्वोच्च आध्यात्मिक दिव्य लक्ष्य की ओर खींचते हैं। ईश्वर कितने कृपालु, उदार और करुणामय हैं, कितने पूर्ण असीम प्रेम के भण्डार हैं कि येन केन प्रकारेण यह देखते हैं कि आत्मज्ञान की विस्मृति से हमें जगा कर हमारा ध्यान उस ओर लगा देते हैं कि मानव-अस्तित्व का मुख्य लक्ष्य, आध्यात्मिक जीवन यापन और मुक्ति है। यह इसी जीवन में अभी यहीं मिल जाये। कितने कृपालु हैं वे!

हम कैसे कह सकते हैं कि ईश्वर हमें भूल गये हैं या उन्होंने हमारे प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया है? उन्होंने तो अपने कर्तव्य से बढ़ कर किया है, उन्होंने हमारा जीवन पूर्णता से भर दिया है, हमारे जीवन का घट उनकी असीम कृपा, दया और सर्वोच्च दिव्य करुणा से छलकता रहता है। हमें उनका आशीर्वाद मिला हुआ है। वे दृढ़ता के साथ हमें याद दिलाते रहते हैं कि हम सबका जन्म प्रकाश प्राप्त करने के लिए, लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जागृत होने के लिए है। हमें उसके लिए दिव्य जीवन, सेवा, प्रेम, ध्यान का आश्रय ले कर ईश्वर की प्राप्ति करनी होगी।

हम भले ही ईश्वर को भूल जायें; पर वे हमें कभी नहीं भूलते। हम भले ही अपने लक्ष्य से भटक जायें, वे हमें ऐसा करने नहीं देते। वे बलपूर्वक हमारा ध्यान उधर से खींच कर हमें सही पथ पर ले जाते हैं। हमारे जीवन में ईश्वर का यही महत्त्व है। ईश्वर करे, हम उनकी कृपा और उनके प्रेम को स्पष्ट रूप से समझ सकें। वे कितने प्रेम से हमें पुकार रहे हैं—**"उत्तिष्ठत, जाग्रत, शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः"** (ओ अमर पुत्र, सुनो! मेरी पुकार सुनो, उठ कर मेरे पास आओ, जीवन का लक्ष्य प्राप्त करके धन्य हो जाओ)।

ईश्वर इसी प्रकार से आज भी सदा की भाँति पुकारते हैं। यदि हमारे पास उन्हें सुनने के लिए कान और देखने के लिए आँख हैं, तभी उन्हें पहचान सकते हैं कि जो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, उस सर्वोच्च प्राप्ति के लिए ईश्वर हमें हर दिन पुकार रहे हैं। अधिकार की माँग आध्यात्मिक जीवन है। इस महती

प्राप्ति हेतु हमें अपना समय-शक्ति और जीवन लगा देना चाहिए। तभी हम बुद्धिमान् हैं। तब उस परम आनन्द को प्राप्त करने से हमें कोई नहीं रोक सकता; क्योंकि हमने बुद्धिमत्तापूर्वक जीवन जिया है, बुद्धिमत्तापूर्वक कर्म किया है। हमने अधिकार माँगा है।

३६

परदु:खानुभूति

यदि तुम अपने से कम भाग्यशाली की सेवा करना चाहते हो जो कष्ट, दरिद्रता और परेशानियों में है, तब यह आवश्यक है कि तुम उसके साथ समरस हो जाओ। तभी तुम उस व्यक्ति की वास्तविक परिस्थिति और उसकी सच्ची अवस्था को अच्छी तरह से जान सकते हो कि वह किस प्रकार के दु:ख और कष्ट की स्थिति में है।

अँगरेजी में एक शब्द है : 'empathy' —परानुभूति अथवा तदनुभूति। यह आवश्यक है कि जितना तुम अधिक-से-अधिक किसी की तदनुभूति में होगे, उतनी ही अधिक उस व्यक्ति के प्रति तुम्हारी सहानुभूति (sympathy) उत्पन्न हो सकती है। अपने-आपको उस व्यक्ति की परिस्थिति में डाल कर, अपने मनोभावों के आधार पर उसके दु:खों का अनुभव करके हमारे मन में उसके प्रति सहानुभूति जागती है तथा करुणा की भावना उत्पन्न होती है, उसके पश्चात् यह लालसा होती है कि कैसे जल्दी-से-जल्दी उसके दु:ख को दूर करके उसे उस दु:ख से उबार दें। हम अपने-आपको भी उसी स्थिति में रख कर उसके अधिक निकट हो जाते हैं।

महात्मा गान्धी ने भारत के दूर-दूर के गाँवों में रहने वाले निर्बल और अशक्त दरिद्रों के दु:खों का अनुभव किया। उन्होंने राजकीय कर्मचारियों से कहा—"अपने कार्यालय में पंखे के नीचे सुविधाजनक स्थिति में बैठ कर उनके कष्टों का अनुभव नहीं किया जा सकता। अपने जीवन-निर्वाह के लिए वे सर्दी-गरमी-बरसात में जितनी कमरतोड़ मेहनत करते हैं, जब तक उनकी स्थिति में अपने-आपको नहीं डालते, तब तक न तुम उनके साथ तदनुरूपता रख पाते हो और न ही स्वप्न में भी उनके प्रति आपको उनसे सहानुभूति हो सकती है।"

महात्मा गान्धी ने इसीलिए उनके साथ एकता स्थापित करने के लिए प्रण किया—"भारत के किसान जिस प्रकार का परिश्रमी जीवन व्यतीत करते हैं, मैं भी दिन-पर-दिन उसी प्रकार का जीवन व्यतीत करूँगा।" उन्होंने अपनी वेशभूषा के लिए केवल खादी के बस उतने बड़े कपड़े को अपनाया जिसे वह अपनी कमर पर लपेट सकें तथा आवश्यकता हो, तो अपने कन्धे पर उसे डाल लें। जो चप्पल वे पहनते थे, वह गाँव के चमार की बनायी हुई भारी, कामचलाऊ पर टिकाऊ होती थी।

महात्मा गान्धी ने ही हमें तदनुरूपता का सिद्धान्त दिया। तुम कर्मयोगी बन कर भक्ति और आध्यात्मिक एकत्व के साथ जिनकी सेवा करना चाहते हो, उनके साथ अपनापन स्थापित करने की कोशिश करते हो, यही वह आदर्श है। उन्होंने हमें **'सादा जीवन, उच्च विचार'** का सिद्धान्त भी दिया। उन्होंने उदात्त जीवन व्यतीत करने पर बल दिया।

गुरुदेव में भी ऐसा अनुकरणीय गुण था। एक बार कुछ बड़े ही सरल व्यक्ति दूर दक्षिण भारत से गुरुदेव से मिलने आश्रम आये, वे कुछ सहमे हुए-से खड़े थे। गुरुदेव को शीघ्र ही उनकी स्थिति का आभास हो गया। उन्हें सामान्य बनाने के लिए वे बोले—"आओ, आओ! इधर पास आओ, खड़े मत रहो। यहाँ बैठो। मैं भी तुम्हारी ही तरह हूँ। तुम मुझसे किसी रूप में भी कम नहीं हो। मैं किसी प्रकार से भी तुमसे महान् नहीं हूँ। आओ!" उन्होंने इस प्रकार का व्यवहार किसी मनोवैज्ञानिक या बौद्धिक स्तर पर नहीं किया था। उनका स्वभाव ही ऐसा था, सहज ही उनके मन की सादगी और विचारों की उदात्तता उनके मुख से निकल कर आयी थी।

ईश्वर करे, उनकी सरलता, उनके विचारों और उनके जीवन की सादगी, जीवन की तदनुरूपता और सहानुभूति के रूप में हमें उनकी कृपा और आशीर्वाद की प्राप्ति हो! ईश्वर का आशीर्वाद तुम्हें प्राप्त हो!

३७

आध्यात्मिक अन्वेषण का सारतत्त्व

देवी माँ की वार्षिक पूजा का आज छठा दिन है। आज की प्रात: हम मानव के सामान्य सार्वभौम तथ्य की वास्तविक आन्तरिक प्रकृति पर विचार करेंगे। जिसके सारतत्त्व की प्यास हमारे मन में विद्यमान है तो वह प्यास सबल और सफल हो जाती है। यदि वह प्यास नहीं है, तो कितना ही संघर्ष क्यों न करो, क्यों न उस प्यास को खोजने का प्रयास करो, तुम्हें लगता रहेगा कि न कहीं रास्ता दिखायी दे रहा है, न सफलता मिल रही है।

उस आभ्यन्तर तथ्य की जीवन के पोषण के लिए अनिवार्य तथा अनुरूप मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में व्याख्या की जा सकती है। जीवन के लिए भोजन अनिवार्य है। भूख लगने पर ही भोजन की इच्छा जागृत होती है। यदि भूख नहीं है, तो मनुष्य का मन भोजन की ओर नहीं जाता है।

इसलिए तत्त्वत: आन्तरिक सादृश्य तथ्य यह है कि आत्मा में ईश्वर-प्राप्ति की महान् क्षुधा होनी चाहिए। जिस प्रकार मनुष्य को जब क्षुधा सताती है, जब तक उसे खाने को कुछ मिल नहीं जाता, तब तक वह शान्त नहीं बैठता। इसी प्रकार की क्षुधा वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए भी होती है। वैज्ञानिक अहर्निश अपनी अनुसन्धान शाला में परिणाम-प्राप्ति के लिए संघर्ष करते रहते हैं। अन्वेषण के लिए नये ज्ञान की प्राप्ति की आन्तरिक क्षुधा शक्तिशाली रूप में उनके भीतर होती है।

आध्यात्मिक जगत् में भी इसी प्रकार की महान् आन्तरिक लालसा, महान् क्षुधा का होना ही सारतत्त्वीय तथ्य है। यदि यह भूख है, तो और दूसरे कार्य किसी-न-किसी प्रकार से किये जा सकते हैं। उसके आधार पर आप अपने कार्य सम्पन्न करने के लिए दिन-प्रति-दिन उन्नति करते हुए आगे बढ़ते चले जाते हैं। यदि यह भूख नहीं है, यदि इसमें कोई अभाव है, और यदि वह

उच्च प्रकार की, उच्च परिमाण की नहीं है तो तुम कितना ही योग, प्राणायाम, जप, शास्त्रों का अध्ययन करके आध्यात्मिक साधना करते रहो, वह कछुए की चाल से चलते हुए दिखायी देगी। जीसेस ने बिना कारण ही नहीं कहा था—"वे मनुष्य धन्य हैं जिनकी भूख-प्यास ही सत्य के लिए है।" ध्यान दो 'भूख' और 'प्यास'—ये सन्धान-शब्द हैं—एक महती आकांक्षा।

स्वामी विवेकानन्द के गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस देवी माँ काली की मूर्ति के सामने जा कर, खड़े हो कर कहा करते थे—"माँ! यह ज्ञान है, यह अज्ञान है, मैं दोनों को आपके चरणों में अर्पित करता हूँ। मुझे दोनों में से किसी की भी चाह नहीं है। मुझे तो आप केवल अपने चरण-कमलों में विशुद्ध भक्ति का दान दीजिए।" माँ के चरणों में वे सर्वस्व अर्पित करते थे : विवेक-अविवेक, ध्यान-विक्षेप, यह या वह। यह कह कर कि वह कुछ नहीं चाहते, फिर भी उन्होंने बस यही माँगा—माँ के चरणों में विशुद्ध भक्ति।

ऐसी भावना हमें आध्यात्मिक जीवन में महान् सत्य की ओर अग्रसर करती है। परमात्मा को जो सर्वाधिक प्रसन्न कर सकती है, निश्चित रूप से दिव्य कृपा को अवतरित कर सकती है। वह यही भूख और प्यास है, परमात्मा के लिए, मानव-हृदय में केवल मात्र परमात्मा के लिए अन्य सर्वस्व त्याग कर—"सर्वस्व ले लो भगवन्, मुझे केवल तुम्हारी ही आकांक्षा है।"

आध्यात्मिक जीवन का, आध्यात्मिक पथ का यही सर्वोत्कृष्ट तत्त्व है। ईश्वर करे, तुम्हारी भूख-प्यास सत्य के लिए हो। ईश्वर करे, देवी माँ की कृपा और पूज्य गुरुदेव का आशीर्वाद तुम्हारे जीवन में तुम्हें उज्ज्वल सफलता प्रदान कराने में, जो-कुछ आवश्यक है, उसे प्रदान करा दे!

३८

अद्वैत में स्थित होने की कला और विज्ञान

हम जिन दिव्य रूपों की आराधना करते हैं, वह एक अद्वैत, भावातीत, सार्वभौम सत्ता को परिलक्षित करते हैं। अत: वे सब समान रूप से दिव्य, पवित्र, प्रभावशाली हैं तथा आराधक, भक्त अथवा ध्याता को उस तक ले जाने (पहुँचाने) में समर्थ हैं, जिसको वे परिलक्षित करते हैं अथवा जिसकी वे अभिव्यक्ति हैं। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष तथा सगुण-साकार एवं नाम-रूप से परे निर्गुण-निराकार के मध्य वे निश्चित रूप से एक प्रभावशाली शृंखला, द्वार अथवा स्रोत समान हैं, एक सन्धि-बिन्दु हैं।

इन प्रतीकों का कोई उद्देश्य है। जीवात्मा की चेतना के विकास में इनका बड़ा महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक स्थान है। ये हमारी सत्ता की वर्तमान स्थिति की सीमाबद्धता के कारण हमारी आवश्यकता को भी पूर्ण करते हैं। इस प्रकार हिन्दू जीवन-पद्धति के आध्यात्मिक आयाम का ये एक भाग हो गये हैं। जब कोई इस बात को पूर्ण रूप से ग्रहण कर लेता है और समझ लेता है, तो वह स्पष्ट रूप से देख सकता है कि आगे बढ़ने के लिए ये एक सोपान का कार्य करते हैं।

सर्वथा इसी प्रकार ईश्वर के सारे प्रकट रूप, नाम और आकार जो उनसे परे भी हैं, उन्हीं के रूप हैं, उन्हीं के समान हैं। दिखायी देने वाली तथा जिसमें हम रहते हैं, उन गतिशील सार्वजनीन सारी शक्तियों का प्रकटीकरण तथा जिसके माध्यम से हम उसे ग्रहण करते हैं, वह कार्य-शक्ति, इच्छा-शक्ति, मन:-शक्ति, सारी शक्तियाँ हमारे चारों ओर के दृश्य जगत् में प्रकट हो कर अपनी लीला करती हैं और हमारे चारों ओर के सारे विचारों, भावों, विवेक, एकाग्रता की शक्ति, सारी विशेष पद्धतियाँ और सूक्ष्म भेद की सामान्य शक्ति और कुछ नहीं बस अद्वैत ब्रह्माण्डीय शक्ति ही है। सारी शक्ति चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, सभी उस सर्वोच्च की शक्ति है जो अप्रकट

ब्रह्माण्डीय शक्ति, आद्य-शक्ति ही है। सारी शक्ति दिव्य माँ के विभिन्न रूपों और रंगों में ही प्रकट हुई है, उनके बिना अन्य कुछ भी नहीं है।

ब्रह्म सर्वदा अनिर्वचनीय सत्य है जिसमें स्थावर और जंगम तथा सुप्त और जाग्रत दोनों प्रकार की शक्तियाँ सहज रूप से एक-साथ निवास करती हैं। शिव और शक्ति एक ही हैं, प्रच्छन्न और प्रत्यक्ष दोनों एक ही हैं, निष्क्रिय और गतिशील दोनों एक ही हैं।

संक्षेप में इसी तथ्य के कारण ब्रह्माण्डीय शक्ति की अभिव्यक्ति के रूप में विश्व के प्रकटीकरण का अनुभव ब्रह्म के अनुभव के समान है, दैवी माँ के अनुभव सर्वोच्च सत्य की सत्ता के अनुभव से भिन्न नहीं हैं। आदि शक्ति परा शक्ति का अनुभव ब्रह्म के अनुभव से भिन्न नहीं है। सर्वोच्च अद्वैत, सर्वोच्च शाश्वत सत्य और परब्रह्म सब एक ही हैं।

यदि तुम एक चम्मच शहद को अपने मुख में रखते हो, तब तुम्हें शहद का स्वाद मिल रहा है या मिठास का? यदि तुम गहराई से सोचोगे, तो तुम्हारे अन्दर एक नयी चेतना एकाएक जागेगी, एक नयी जागरूकता आयेगी कि तुम कह सकते हो—तुम दोनों का स्वाद ले रहे हो। न ही तुम कह सकते हो कि तुम एक का ही स्वाद ले रहे हो। यह एक ही वस्तु के दो स्वरूप हो गये हैं। दोनों समान हैं। इसलिए जब तुम शहद का स्वाद ले रहो हो, तभी तुम मिठास का स्वाद भी ले रहे हो और अब जब मिठास का स्वाद ले रहे हो, तभी शहद का भी ले रहे हो।

एक ऐसे ही दिन शीतकाल में जब सूर्य उदित होते ही तुम प्रसन्न हो जाते हो, सूर्य का प्रकाश चारों और फैल कर वातावरण में गरमी ला देता है। तुम बाहर जा कर थोड़ी देर के लिए धूप का आनन्द लेते हो, तब तुम्हें ऐसा लगने लगता है कि तुम उसकी उष्णता का अनुभव कर रहे हो अथवा उसके प्रकाश का? तुम दोनों का उत्तर पृथक्-पृथक् नहीं दे सकते। जब तुम एक का उत्तर दोगे, तो दूसरे का उत्तर अपने-आप मिल जायेगा। उन दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। सूर्य की किरणें एक ही समय में प्रकाशित भी हैं और ऊष्मा-युक्त भी हैं।

जब इन्द्रिय-विषयों के ज्ञान से ऐसे अबोधगम्य अद्वैत सिद्धान्त के अस्तित्व का अनुभव किया जा सकता है, फिर उसके विषय में क्या कह सकते हैं जो इस सबसे परे है, जो सारे विश्व के अस्तित्व का मूल कारण है। कैसा आश्चर्य है कि आभासित द्वैत में अद्वैत निहित है और पूर्ण अद्वैत में द्वैत विराजित है। आश्चर्य! कैसा चमत्कार है!

अत: ब्रह्मज्ञान ही माया का ज्ञान है। माया के सकारात्मक मुक्त स्वरूप को जानना ही ब्रह्म को जानना है। ऐसा था अनुभव और साक्षात्कार प्रोज्ज्वल प्रकाश-प्राप्त प्राचीन ऋषियों-मुनियों का एवं ब्रह्मज्ञानियों का। एक बार गुरुदेव ने मुझसे पूछा था—"तुम भ्रमित क्यों हो? प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष पृथक् नहीं हैं। प्रत्यक्ष ही अप्रत्यक्ष है। अप्रत्यक्ष ही स्वयं प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुआ है। दोनों में कोई द्वैतभाव नहीं है। कोई भिन्नता नहीं है। दोनों एक ही हैं।" इसी प्रकार के अनुभव हमारे महान् प्रकाशित ज्ञानवान् गुरु जनों को हुए थे।

सैद्धान्तिक दर्शन के साम्राज्य में दृश्यमान विरोधाभास होता है; किन्तु पूर्ण रूप से एक अद्वैत का अनुभव ही साक्षात्कार का तथ्य है। यदि हम निराधार कल्पना ही करते रहेंगे, तो अनुभव के आधार पर हम वेदान्ती नहीं हैं। अनुमान करना अच्छा है; परन्तु अन्ततोगत्वा वह प्रगति में बाधक है। उससे मुक्त होना बड़ा कठिन है; क्योंकि वह बहुत मोहक है, इसीलिए सन्तोष देने वाला भी है। इसका आकर्षण ही इसका संकट है। मैं यह नहीं कह सकता कि हम उसी दलदल में फँस गये हैं; पर निश्चित रूप से उसमें फँस जाने का खतरा है।

इसीलिए महान् गुरु दक्षिणामूर्ति ने चुप रह कर आत्यन्तिक मौन द्वारा उपदेश देने को वरीयता दी। जब मन, मनरहित हो जाता है, तभी सत्य का अनुभव होता है। श्रीलंका के एक महान् रहस्यवादी गुरु कहा करते थे—"मौन रहो, सत्य को शब्दों से मत ढको।" मौन रहो और अनुभव करो कि मैं ईश्वर हूँ।

यही मौन तुम्हारे अस्तित्व का वास्तविक अंश है। एकान्त में होने पर तुम ईश्वर में हो; क्योंकि उस समय दूसरों से वार्तालाप के कारण तुम अपने मौन को

भंग नहीं कर रहे हो। जब कोई दूसरा है, तो शान्ति भंग होती है। एकान्त में शान्ति है। एकान्त में ही ईश्वर के प्रति तुम जागरूक रह सकते हो।

यह आवश्यक है कि हम अपने में खो जाने की कला भी सीख लें। चाहे हम कितनी बड़ी भीड़ में भी क्यों न हों, चाहे कितना ही सुन्दर-से-सुन्दर दृश्य हमारे सामने हो, हम सदा अपने-आपको ईश्वर में स्थापित कर सकते हैं। तुम उस दृश्य में डूबे हुए भी हो और नहीं भी। तुम भीड़ में भी अकेले हो। यह आवश्यक है कि भीड़ में रह कर धीरे-धीरे अकेले रहने की कला आपको सीखने का प्रयास करना चाहिए, पूर्ण रूप से अद्वैत में रहने की कला, तभी ईश्वर के साथ तुम्हारा पूरा सायुज्य होने में कोई बाधा नहीं रहेगी।

एवंविध, हमें अनेक के मध्य रहते हुए भी उस एक परब्रह्म को देखने की कला और विज्ञान का विकास करना है। हम अनेकता में एकता को देखें। यदि हम इस दृष्टि और इस अनुभव का विकास करते हैं, तो हर क्षण, सर्वकाल में येन केन प्रकारेण हम उसी एक में स्थित होंगे जिसकी सत्ता से हमारी सत्ता है।

ईश्वर करे, सर्वोच्च सत्य आपको अपने अद्वैत स्वरूप की कृपा से जागरूक कर दे कि एक ब्रह्माण्डीय सत्य का ही केवल अस्तित्व है। ईश्वर करे, पूज्य गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी की कृपा और आशीर्वाद आपके ऊपर हो! वे आपको इस प्रकार से रहने का पथ प्रदर्शित करें। इस प्रकार से रह कर धीरे-धीरे उन अनुभवों को आप प्राप्त कर सकें। ईश्वर का आशीर्वाद आप सभी के लिए हो!

३९

उद्बोधन, प्रकाशन और मोक्ष

जब मनुष्य सुनता है, भगवान् बोलता है। मनुष्य जब अपने को शून्य बना लेता है, तब ईश्वर उसे पूर्ण करते हैं। ईश्वर जब मानव के अन्दर प्रवेश करके अपने पूरे अस्तित्व से उसे भर देते हैं, तब मनुष्य मनुष्य न रह कर स्वयं प्रकाश बन जाता है। ऐसे स्थिति आने पर मनुष्य द्वैत से ऊपर उठता है, तो सत्-चेतना का आविर्भाव होता है। आत्म-तत्त्व को भुलाने के अज्ञान-अन्धकार की चिर-निद्रा से जागता है, तो जागृति के चकाचौंध कर देने वाले प्रकाश को प्राप्त करता है जो पूर्ण ज्ञान में जागृति है, मनुष्य की मूल प्रकृति है, जो दिव्य स्वरूपा है।

ऐसी जागृति आने पर मृत्यु मनुष्य के लिए कल्पना हो जाती है। मृत्यु का कोई अस्तित्व उसके लिए नहीं रह जाता। मृत्यु उसके मन के लिए कल्पित, मायावी हो जाती है। मनुष्य की वास्तविकता यही है कि उसकी आत्मा को कुछ नहीं होता। जब यह कहा जाता है कि मनुष्य की वास्तविकता उसकी आत्मा है, तब वह किसी अन्य व्यक्ति से, किसी अकर्ता से नहीं कहा जा रहा। इसका अर्थ है कि वह शाश्वत अनश्वर, अविनाशी दैवत्व ही उसकी वास्तविकता है। मैं यह परिकल्पना की बात नहीं कह रहा। मैं सिद्धान्त रूप से सैद्धान्तिक मानव की बात नहीं, बल्कि जो यहाँ उपस्थित हैं यह शब्द उनके कहे जा रहे हैं।

ईश्वर जब तुम्हारे अस्तित्व को इस प्रकार से भर देते हैं, तब तुम जाग कर, ऊपर उठ कर आश्चर्यजनक रहस्यमय रूप से जागरूक हो जाते हो तथा यह तथ्य कि मृत्यु का कोई अर्थ नहीं है, यह शून्य है, क्योंकि तुम मृत्यु से परे हो। जो अजन्मा है, केवल वही मृत्यु से परे हो सकता है तथा मृत्यु से मुक्त है। यह घोषणा वैसे तो सत्य है कि जिसका जन्म हुआ, उसकी मृत्यु निश्चित है। किन्तु जिस दिव्य गुरु ने यह कहा है, वही यह भी करते हैं— "तुम अजन्मा,

शाश्वत, नित्य आत्मा, कालातीत और प्राचीन हो। यदि इस शरीर का नाश हो जाये, तो कोई परिवर्तन नहीं होता। तुम ऐसी आत्मा हो जिसका नाश होने की तो बात ही और है, वह न उसे प्रभावित होती है न परिवर्तित होती है।''

यदि मृत्यु तुम्हारे लिए कल्पना की वस्तु हो जाये, तुममें ऐसी जागरूकता आते ही उसी क्षण तुम अपने वास्तविक स्वरूप वाले हो जाते हो। तुम तभी वास्तविकता, प्रकाश और अपने देवत्व के महान् सत्य में जीते हो।

ईश्वर करे, नौ दिनों के इस पवित्र काल में जब हम इस महान् रहस्यमय विश्व, और उससे परे इस रहस्यमय अनुभवातीत ब्रह्माण्डीय सत्ता तथा ब्रह्माण्डीय आद्या शक्ति पर मनन और चिन्तन कर रहे हैं, जब मन का उच्चतर स्तर पर चिन्तन और मनन का विकास हुआ है, उच्च स्तर की जागृति से भर गया है, तब निश्चित रूप से यही समय है जब हर पल माँ की उपस्थिति में चेतना की लहर को ऊपर उठाने का लाभ प्राप्त करें। तुम्हारी भावनाएँ विकसित हो उच्च स्तर की महान् और वास्तविक जागरूकता में ऊर्ध्वगमन करती हैं। परमात्मा करे, ऐसा ही हो!

पृथ्वी ग्रह कभी भी पूर्ण प्रकाशित नहीं रहता। जब इसका आधा भाग सूर्य की प्रदीप्त किरणों से पूर्ण रूप से प्रकाशित होता है, तभी इसका आधा भाग पूर्ण रूप से अँधेरे में रहता है। वह अज्ञान के अन्धकार में मूढ़ता में सोया रहता है। ब्रह्माण्डीय शक्ति के केवल रहस्यमय स्वरूप का परिचय कराने के लिए मैंने इसे एक कहावत के रूप में कहा है। यह आधा भाग पूर्ण रूप से जागरूकता से प्रकाशित है और आधा जिसमें दिखायी न देने वाले तुम्हारे सारे अस्तित्व को गहरे अँधेरे, सम्मोहन और नींद के परदे से ढक दिया है। उससे व्यक्ति अपने स्वयं के स्व के प्रति जागरूक नहीं रहता है।

द्वैत स्वभाव का होने के कारण विद्या माया (मुक्ति पाने का ज्ञान) और अविद्या माया तुम्हें जागरूक न रहने की सुषुप्ति से भर देती है। देवी माँ, जिन्हें हम ब्रह्माण्डीय शक्ति की अभिव्यक्ति कहते हैं, वही उस द्वैत-तत्त्व को उत्पन्न करती हैं जो तुममें जागरूकता भी उत्पन्न कर सकता है तथा तुम्हें

अज्ञानान्धकार की चिर-नींद में भी सुला सकता है। जिसके पास विवेक-बुद्धि है, वही इन दोनों के अन्तर को देख सकता है।

ऐसा ज्ञान सहज ही नहीं आता। अविवेकी का मन पुनरुद्धार की कामना नहीं करता, उसका मन अपवित्र होता है। उसके अनेक जन्म दृश्यों और प्रतिबिम्बों के पीछे भागते हुए बीत गये हैं। अभी वह इसी अवस्था में है। ऐसा क्यों? कठोपनिषद् में यम देवता ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया है कि रजोगुण की प्रबलता के कारण मन की गति इन्द्रियोन्मुख हो जाती है। इसीलिए मन अपने अन्दर झाँक कर चिन्तन करने और ध्यान करने के योग्य नहीं रहता। आध्यात्मिक अदृश्य आयामों की सत्ता को समझने में वह असमर्थ रहता है।

इसलिए मन को मार्ग दिखाने की आवश्यकता है। उसे अनुशासित करने, शिक्षित करने, सचेत हो कर बुद्धिमानी के साथ सही पथ पर लाने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है। वास्तविक सत्य बुद्धिमानी से परे हो सकता है; लेकिन कभी-कभी बुद्धिमानी एक बाधक तत्त्व होता है, परन्तु उसके लिए नहीं, जो पूर्णरूपेण से माया के चंगुल में फँसा हुआ है। उसको यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि सत्य मन-मस्तिष्क से परे है। वह केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिए है जो ऐसी अवस्था में पहुँच चुके हैं, वे ऐसी स्थिति में हों जो दृढ़ता के साथ कह सकें—हम अन्तर के कौन-से आयामों में हैं?

इस प्रश्न का उत्तर हममें से सभी को अपने-आपसे पूछना है। हजारों, लाखों मनुष्य भी यदि हमारी प्रशंसा के पुल बाँधें, उससे कोई लाभ नहीं है। सच्ची प्रशंसा वही है जो अपनी प्रशंसा अपने-आपसे की जाये। समझने के लिए यह कोई रुचिकर, सरस तथ्य नहीं है। यदि तुम अपने प्रति अपने-आप न्याय करने के लिए तैयार हो, तभी यह वास्तविक जागरूकता, तुम्हारी अपनी जागरूकता हो सकती है।

ऐसी जागृत बुद्धि के विकास की आवश्यकता है। यह ज्ञान उचित है कि माया प्रकाशित भी करती है और मुक्ति भी दिलाती है। विद्या माया के साथ-ही-साथ अन्धा करके बाँधने वाली अविद्या माया भी है, इतना जान लेना ही पर्याप्त नहीं है। केवल ज्ञान को अर्जित कर लेना मात्र पर्याप्त नहीं है।

अन्ततोगत्वा अपने जीवन में उस ज्ञान का प्रयोग ही ज्ञान का वास्तविक मूल्यांकन है। जब हम अपने ज्ञान से सन्तुष्ट न हों और उसका प्रयोग भी करना चाहते हों, तब हम बुद्धिमान् हैं, तभी हम वैज्ञानिक हो सकते हैं। अपने धर्म में हम तभी व्यावहारिक हो सकते हैं। हम तभी साधना का निरूपण कर सकते हैं। हम अपने लिए तभी कुछ अद्‌भुत कार्य कर सकते हैं।

वैज्ञानिक, अनुसन्धान करने के बाद संसार के सामने घोषित करते हैं—"यह निष्कर्ष है, इसका उपयोग करो।" आध्यात्मिकता में भी इसी प्रकार से डूब जाने की आवश्यकता है। सारे महान् योगी और रहस्यवादी सभी इस प्रकार से अपनी आध्यात्मिकता में वैज्ञानिक थे। वे अपने धर्म में व्यावहारिक थे। उनके विचार, भाव और कर्म सच्चे धर्म- भाव से भरे हुए थे। वे अपने धर्म में जिये। परम सत्ता के साथ एकत्व ही तुम्हारे व्यक्तित्व की दिव्यता है और सच्चा धर्म यही है।

अंश वही है जो पूर्ण है। वह उससे भिन्न नहीं है। यदि आम के पेड़ से एक पत्ता तोड़ लो, तो वह आम का पत्ता ही कहलायेगा। इसी प्रकार तुलसी अथवा पुदीने का पत्ता उसी वृक्ष का रहेगा जिससे वह तोड़ा गया है। यदि हम देख पायें, तो प्रकृति हमें इस प्रकार से चुपचाप बिना कुछ कहे, सबसे बड़े रहस्य की शिक्षा दे देती है। जिस सत्ता से जिसका जन्म हुआ है, उसका अंश भी बिलकुल उसी की प्रकृति और उसी के समान गुण वाला होता है।

आध्यात्मिक जगत् में वैज्ञानिकों की सबसे बड़ी खोज है—**'तत्त्वमसि'** (वही तुम हो)। महान् पूर्ण के तुम एक अंश हो। और यदि तुम वही हो, तो अच्छा यही होगा कि तुम वही बनना प्रारम्भ करो जो तुम हो, कृत्रिम मत बनो। आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश पाने और उसे स्वीकार करने वाले से इतनी अपेक्षा तो की ही जा सकती है।

निष्क्रिय रह कर खोटा सिक्का मत बनो। कपटी मत बनो। वास्तविक और सच्चे बनो। सरल शब्दों में—तुम जो हो, वही बनो। इसलिए तुम्हें जैसा बनना है, उसी के अनुरूप तुम्हारा जीवन होना चाहिए—तुम्हारी वास्तविकता, दिव्यता, तुम्हारे मौलिक रूप, सत्य की झलक उससे मिलनी चाहिए।

भगवद्‌गीता से हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि हमें अपना जीवन कैसे व्यतीत करना चाहिए। इस प्रतिभासित जगत् जिसमें अन्धकार और प्रकाश दोनों हैं। उससे हमें अपना सम्बन्ध किस रूप में स्थापित करना चाहिए। पहले भगवान् कृष्ण हमें चेतावनी देते हैं—**''दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया''** (निश्चित रूप से मेरी माया का यह भ्रम जो प्रकृति के तीन गुणों पर आधारित है, इसे पार करना कठिन है)। इसलिए माया के साथ व्यवहार कर पाना कठिन है। बाद में वे कहते हैं—**''दैवी सम्पद् विमोक्षाय''** (दैवी प्रकृति से मुक्ति मिल सकती है)। अर्थात् यदि हम दिव्य पहलू से सम्बन्ध स्थापित कर लें, तो हम मुक्त हो सकते हैं।

माया के साथ व्यवहार एक रहस्य है। वह प्रकाश और अन्धकार दोनों रूपों में है। वह जागरूकता और जागृतावस्था तथा साथ-ही-साथ सुषुप्तावस्था और आत्म-विस्मृति दोनों है। इसीलिए हमें उसके अलौकिक पक्ष से ही सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए, उसके नकारात्मक आसुरी रूप से नहीं। आत्म-समर्पित कर दो स्वयं को, अलौकिक सत्ता के समक्ष और मोक्ष प्राप्त कर लो। अपने दैनिक जीवन में ईश्वर की दैवी प्रकृति के सभी पक्षों को अपने ऊपर लागू करने का प्रयास करो। उन्हें ग्रहण करके अपने ऊपर उतारने का प्रयास करो। जैसा कि गीता के सोलहवें अध्याय में व्याख्यायित किया गया है कि मुक्ति पाने के लिए शक्ति के जिन पक्षों की अपेक्षा रहती है, उन्हें अपने दैनिक जीवन में लाने का प्रयास करो।

अब तुम्हारे पास कुंजी है जिससे तुम जान सकते हो कि माया क्या है? तुम्हारा इसके साथ सम्बन्ध कैसा रहना चाहिए। अपने को मुक्ति दिलाने के लिए माया का कैसे प्रयोग किया जा सकता है। उसके बाद ही वह तुम्हारी महान् सम्पत्ति हो सकेगी। दोनों के साथ मेल-मिलाप करके चालाकी का खेल मत खेलना। तभी तुम शेर की सवारी कर सकते हो। ईश्वर की शक्तिशाली शक्ति से खिलवाड़ मत करना। ऐसा मत समझना कि तुम ईश्वर से चतुर हो।

आध्यात्मिकता एक व्यावहारिक विज्ञान है। धर्म उसका व्यावहारिक पक्ष है, विवेकपूर्वक कैसे जीवन यापन किया जाये, इसीलिए हमारे दिन-प्रति-दिन

के जीवन में हमारे करने, और हमारे होने में, अपने ज्ञान का प्रयोग करना चाहिए। तभी यह प्रकाशित करने वाला ज्ञान हो सकता है, यह तुम्हारा रक्षक हो सकता है। सत्य ही तुम्हें मुक्ति दिलाता है। हमें अपने मन-वचन-कर्म से सत्य में जीना चाहिए। उसे अपने जीवन का अंग बनाना चाहिए।

हमारे पूर्वजों ने हमें यही मार्ग प्रशस्त किया; इसी प्रकार पूज्य पावन गुरु जी ने भी अपने जीवन के उदाहरणों से अच्छी तरह से अपने होने और करने से हमें सिखाया है। दिव्य माँ माया के दिव्य पक्ष के वे मूर्त रूप थे। जो-कुछ भी दिव्य, शुभ, जगाने वाला, प्रकाशित करने वाला, मुक्ति दिलाने वाला है, उन सभी के वे मूर्त रूप थे।

ईश्वर करे, आप सभी को उनका आशीर्वाद प्राप्त हो! ईश्वर के दिव्य स्वरूप की कृपा आपके ऊपर हो! ईश्वर करे, हमारे दिन-प्रति-दिन के जीवन में ईश्वर अपना स्थान ग्रहण कर लें, तभी जीवन दिव्य हो जाने के कारण हमें मुक्ति दिलाने वाला हो जायेगा। मुक्ति पाने की लालसा से हमारा जीवन आध्यात्मिक विज्ञान को अपने जीवन में लाने वाला धार्मिक प्रक्रिया के अभ्यास का तथा व्यावहारिक धर्म की प्रक्रिया आरम्भ करने वाला हो जायेगा।

यही साधना है। स्वयं के प्रति सच्चा और ईमानदार होना ही यह साधना है। सच्चा शिष्य हो कर अपने गुरु के प्रति सच्चा होना है। इसी प्रकार ईश्वर के प्रति सच्चा होना है। वह तुम्हारे सर्वेसर्वा हैं, वही तुम्हारे आदि, मध्य और अन्त हैं; इसलिए इन सभी पक्षों से सच्चे रहो। ऐसा जीवन ही तुम्हें मुक्ति दिलायेगा।

४०

दिव्य शक्ति की अभिव्यक्ति कैसे?

सर्वोच्च पराशक्ति सत्य, सदा ही पराशक्ति, असीम तथा पूर्ण है। केवल इसी के गत्यात्मक रहस्यमय प्रकटीकरण से वस्तुओं में गति आती है, घटनाएँ सक्रिय रूप से घटती हैं। सारा ब्रह्माण्ड उनकी लीला मात्र है। उसी प्राण-शक्ति की अभिव्यक्ति अथवा शक्ति जिसका आधार अचल-स्थिर-शाश्वत-सत्य है, जो परोक्ष रूप से सदा वर्तमान है। किन्तु यह सर्वोच्च गतिशीलता अनुभवातीत भी है। वह आदिशक्ति, महाशक्ति, पराशक्ति भी है। यद्यपि यह हमारी कल्पना से परे भी है। इसका ब्रह्माण्डीय मूल रूप ब्रह्म-शक्ति, विष्णु-शक्ति और शिव-शक्ति—सृष्टि, स्थिति और लय का है। शक्ति की तात्त्विक संकल्पना सामान्य व्यक्ति के ज्ञान से परे है।

पुनरपि हमारे सबसे निकट बैठने वाला एक तीसरा रूप है जो हमारे रूप में हमारे अन्दर ही है। यह हमारी इन्द्रियों, हमारे अंग, हमारे विचार, कल्पना, हमारी क्रियाशीलता की शक्ति है। यह है ज्ञान-शक्ति, विचार-शक्ति, कल्पना और क्रियाशीलता; यह है इच्छा-शक्ति, जो-कुछ भी सक्रिय रूप से मन में आये विचार की इच्छा को धारण करती है और अब—क्रिया-शक्ति—सोचे गये इच्छित पदार्थ को क्रियान्वित करना।

ज्ञान-शक्ति, इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति तुम्हारे लिए प्रासंगिक हैं। इनका तुम्हारे जीवन से सम्बन्ध है। तुम्हारे दैनिक जीवन में हर घड़ी निश्चित रूप से तुम्हारा इनसे काम पड़ता है। आधुनिक जगत् में इन्हीं शक्तियों ने अचम्भा सृजित किया है। इस युग में विकास के सारे अच्छे परिणाम इन्हीं शक्तियों के कारण समक्ष आये हैं। मनुष्य ने भली प्रकार से उस पर सोच-विचार करके, उसे अच्छी तरह से जान कर कठोर परिश्रम और दृढ़ता के साथ उस काम को पूरा किया है, उसी से सुखद परिणाम सामने आये हैं। मनुष्य ने जो

सोचा, इच्छा की, उसे पा लिया है। मनुष्य ने अपनी ज्ञान-शक्ति, इच्छा-शक्ति और क्रिया-शक्ति से प्रकृति को भी जीत लिया है।

इस सन्दर्भ में एक छोटे-से विषय पर अपने विचार आपके सामने रखना चाहता हूँ। श्री कृष्ण ने अपनी रहस्यमय ब्रह्माण्डीय शक्ति को गुणमयी कहा है—"**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया**" (निश्चित रूप से यह दैवी भ्रान्ति मेरी ही है (माया) जो तीन गुणों से मिल कर बनी है। इसका पार पाना कठिन है)। माँ गुणमयी हैं। भगवान् श्री कृष्ण ने गीता के चौदहवें अध्याय में गुणमयी की व्यांख्या बड़े विस्तार से की है।

इस अध्याय का नाम है—'**गुणत्रय विभाग योग**'। इस अध्याय का सार है—"**ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसा:। जघन्यगुणवृत्तस्था अधो गच्छन्ति तामसा: ।।**" भगवान् कहते हैं कि सत्त्वगुण में स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं। जो तमस् गुणों की मेरी शक्ति, क्षमता और प्रकृति धारण करते हैं, वे अवनति की ओर जाते हैं और रजस् गुण वाले मध्य में रहते हैं।

इसके लिए गहरे मनन-चिन्तन की आवश्यकता है। हम प्रकृति के अंश हैं। हम सभी में ये तीनों गुण विद्यमान हैं। हममें ही संवेदना, भाव, कल्पना, स्मृति, इच्छा, तृष्णा, योजना बनाना आदि सब शक्तियाँ हैं। हमारे अन्दर पूर्ण आत्मा है। हमारे अन्दर पराशक्ति भी है; ज्ञान-शक्ति, इच्छा-शक्ति और क्रिया-शक्ति भी है। यह हमारी रुचि पर निर्भर करता है कि हमारे मानवीय व्यक्तित्व के क्षेत्र में, किस मार्ग, किस दिशा में यह प्रकट होगी?

श्रीमद्भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय में भगवान् व्याख्या करते हैं कि किस प्रकार इस शरीर, इस मानवीय व्यक्तित्व को क्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्र में किस प्रकार की क्रिया सम्पन्न करनी है, किसका निर्माण करना है, क्या विकसित करना है, किस प्रकार के बीज को बोना और फसल को काटना है, यह तुम्हारी ज्ञान-शक्ति, इच्छा-शक्ति और अर्थपूर्ण क्रिया-शक्ति की अभिव्यक्ति पर निर्भर करता है। उन्होंने हमें ऐसी कुंजी दे दी है कि किस प्रकार की अभिव्यक्ति करने से हमारा सर्वाधिक कल्याण हो सकता है, हमारी सर्वोच्च

भलाई हो सकती है तथा परमानन्द प्राप्त हो सकता है। किस प्रकार से हम ऐसे निष्क्रिय हो जायेंगे, जहाँ न उन्नति है, न अवनति और किस प्रकार के व्यवहार से हमारा पतन होगा।

श्री कृष्ण ने इस प्रकार से सर्वस्व हमारे हाथ में दे दिया है। सारे महान् धर्मों और अनेकों विचारकों ने इस सत्य का अनुसन्धान किया है कि हम वही हैं जो हम निश्चय करते हैं, जो चयन करते हैं और जिसके लिए क्रियारत होते हैं। यह हम पर निर्भर करता है कि हमारे भीतर स्थित विराट् पुरुष को हम अपनी ज्ञान, इच्छा और क्रिया-शक्ति से किस प्रकार प्रकट करना चाहते हैं। यही जीवन की कला और जीवन जीने की कला का विज्ञान है। यह सर्वोच्च धन्यावस्था का रहस्य है।

मनुष्य-रूप धारण करके जीवात्मा यह निश्चय कर सकता है कि इस जीवन-रूपी उपहार को कैसे जिया जाये, इसके क्या-क्या स्वरूप हो सकते हैं, यह सब धर्मशास्त्रों में स्पष्ट रूप से दिया गया है। कौरवों ने नाशकारी तामसिक पथ को चुना। पाण्डवों ने उदात्त उत्कृष्ट रूप में चुना। मध्य में, अनेकों ने राजसिक पथ का चयन किया। जहाँ वे थे, वहीं-के-वहीं रहे। महाभारत युद्ध में कौरव और पाण्डव दो स्तम्भ हैं और मध्य में वे सभी जन हैं, जो न तो अपने-आपको किसी विशेष दिशा में दिशा-निर्देश दे रहे हैं, न उन्नति कर रहे हैं, न अवनति। कौरवों ने पतन के पथ का चयन किया, जब कि पाण्डवों ने उन्नति का। अन्यों ने कोई पथ नहीं चुना।

जीवन के नाटक का यही विस्तार है। इसी सत्य पर गहन चिन्तन की आवश्यकता है। प्रत्येक जीवात्मा को यह जीवन उपहार-स्वरूप मिला है। उसे चयन करना है कि वह इसकी अभिव्यक्ति कैसे करता है। भगवद्गीता के ज्ञानोपदेश के माध्यम से प्रचुर मात्रा में मार्ग-दर्शन, ज्ञान और प्रकाश हमें दिया गया है।

हम अपने मानव-जीवन का इसी प्रकार या तो उत्थान कर सकते हैं या पतन। आधुनिक विज्ञान ने जहाँ सात्त्विक पथ को अपना कर मानव-जीवन को धन्य बना दिया है, वहीं रजस् पथ अपना कर जीवन को आनन्द से भर कर

स्थिर कर दिया है, जहाँ सुख की दौड़ में मानव पागल की भाँति भाग रहा है। तामसिक पथ को अपना कर विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र निर्मित करके विनाश की ओर जा रहा है। ये तीनों अभिव्यक्तियाँ आज हम संसार में देख रहे हैं। कोई पृथ्वी पर स्वर्ग की रचना कर रहा है, कोई नरक की और कोई पृथ्वी को ऐसा जाल बना रहा है जो बन्धन का कारागार बनता जा रहा है।

यह सब देख कर, निरीक्षण करके, इस पर चिन्तन करके प्रश्न उठता है कि समझदार व्यक्ति को कैसा व्यवहार करना है?

४१

वह शक्ति जिससे सबके मन पर विजय प्राप्त की जा सके

हिन्दुओं का एक ऐसा विशेष दार्शनिक सम्प्रदाय है जो प्रत्येक वस्तु की समानता सर्वोच्च अनिर्वचनीय ब्रह्माण्डीय शक्ति से करता है। वे उस विश्वजनीन माँ ब्रह्माण्डीय शक्ति की आराधना, ध्यान, पूजा करते हैं, उसे वे पराशक्ति कहते हैं। यह आदिशक्ति हैं। इस जगत् में कुछ भी सत्ता में आने से पहले यह थीं , यह ही अकेली थीं। यह आदिशक्ति है, पराशक्ति है, महाशक्ति है, अचिन्तनीय शक्ति है। विश्व में हम जो-कुछ भी देखते हैं, सब उसी की अभिव्यक्ति है।

हमारे अन्दर और बाहर चाहे किसी प्रकार का बल, शक्ति, सामर्थ्य है, वह सब उन्हों की शक्ति का प्रकटीकरण है। हमारे अन्दर उन्हीं की उपस्थिति के कारण हमारे अंगों में बल है। हमारे अन्दर उनकी उपस्थिति से ही हमारे पास सोचने की शक्ति है। ब्रह्माण्डीय माँ की उपस्थिति हमारे अन्दर होने के कारण ही तर्क-शक्ति और बुद्धि की शक्ति हममें है। यदि हमारे अन्दर भावनाएँ हैं तथा हममें दूसरों की भावनाओं को समझने की शक्ति है, वह भी हमारे अन्दर माँ के निवास के कारण ही है। यदि हमारे अन्दर दीर्घकाल से भूली हुई घटनाओं की स्मृति लौट कर प्रकट होती है, वह भी हमारे अन्दर निवसित माँ की ब्रह्माण्डीय शक्ति के कारण ही है।

शारीरिक शक्ति, विचारने की शक्ति, इच्छा-शक्ति, तर्क-शक्ति, स्पर्श-शक्ति, स्मरण-शक्ति तथा भूत, वर्तमान और भविष्य को देख पाने की शक्ति—ये सब वे ही हैं। यह माँ की शक्ति ही है, जिससे नदी का प्रवाह, हवा का चलना, अग्नि का जलना तथा बड़ी-बड़ी मशीनें चलती हैं। मच्छरों के काटने की शक्ति, हाथी में माल लाद कर खींचने की शक्ति—सब उन्हीं से

आती हैं। ''**सर्वं शक्तिमयं जगत्**'' (सारा जगत् उन्हीं की ब्रह्माण्डीय शक्ति से व्याप्त है)।

एक मनुष्य के पास अपार सम्पत्ति होते हुए भी वह कृपण है। वह कभी धन का उपयोग नहीं करता। यदि वह अपनी पूँजी का निवेश कभी नहीं करेगा, तो वह निर्धन ही रहेगा। उसकी पूँजी बढ़ेगी नहीं, वह दुगुनी-चौगुनी नहीं होगी; क्योंकि जो उसे मिला हुआ है, उसका वह सदुपयोग नहीं कर रहा है। उससे वह अभागा हो जाता है। कृपणता इस सीमा तक है कि वह अपने पुराने कपड़े तक नहीं छोड़ना चाहता। ऐसा नहीं है कि उसमें शक्ति नहीं है, वह उस शक्ति का उपयोग नहीं करना चाहता। दूसरी ओर एक ठेकेदार, एक व्यापारी, एक धनी-मानी व्यक्ति सदा अपने धन का नियोजन करते रह कर सक्रिय रहता है। उसकी धन-सम्पत्ति की कोई सीमा नहीं रहती। वह दिन-पर-दिन प्रगति करके अपने साम्राज्य का विस्तार करता रहता है। क्यों? क्योंकि जो उसके पास है, उसने उसका उपयोग किया है। उसके पास जो-कुछ है, उसने उसका उपयोग करके अपने जीवन में उसे व्यावहारिक रूप दिया है।

इसी प्रकार ऐसा नहीं कि हमारे पास कुछ नहीं है। हम जो हैं, उसका उपयोग नहीं करते। अत: वे जहाँ हैं वहीं रहते हैं। किसी भी क्षेत्र में सफलता का रहस्य है उद्योग और सम्प्रयोग तथा सर्वोपरि है—इस उद्योग और प्रयोग में चित्त लगा कर चेष्टा करना, प्रयास करना। कोई कार्य हाथ में लो, स्वयं को लगा दो उसमें, लक्ष्य-प्राप्ति पर्यन्त रुको मत। आगे बढ़ो। परिश्रम करो। सतत प्रयास आत्यन्तिक उपलब्धि की कुंजी है। इसी बात को महर्षि पतंजलि और श्री कृष्ण ने अपने-अपने ढंग से स्पष्ट रूप से कहा है। भगवान् कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में कहा है और ऋषि पतंजलि ने अष्टांगयोग के पाँचवें अंग में धर्म और एकाग्रता के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है।

अध्यवसाय का अर्थ है जो काम प्रारम्भ किया है, उसे बीच में ही छोड़े बिना, हताश हुए बिना, शान्तिपूर्वक, दृढ़ता के साथ उसके समाप्त होने तक उसमें लगे रहना। यदि अध्यवसाय करके भी अन्त में लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हुई, तो उसका इतना महत्त्व नहीं। जिसने अध्यवसाय करके सफलता पाने के लिए

प्रयास किया है, उसने सफलता प्राप्त कर ली है। सफलता का अर्थ कुछ पाने में नहीं है। सफलता को उसमें है कि काम को बीच में नहीं छोड़ा है। यही जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि अध्यवसाय अन्त तक किया जाये। योग और भक्ति के अभ्यास के लिए यह अपवाद नहीं है। मन को वश में करने का प्रयास, कोई अपवाद नहीं है, इन्द्रियों को वश में करने का प्रयास, निषेधात्मक आदतों पर विजय पाने का प्रयास तथा आदर्श और सकारात्मक आदतों का विकास करके उनमें स्थापित होना इसके लिए अपवाद नहीं है। अध्यवसाय की रहस्यात्मक शक्ति के आगे सब झुकते हैं। यह सर्व विजयी शक्ति है; क्योंकि सीधा दिव्य शक्ति की विद्यमानता का प्रयोग हमने किया है। इसके समक्ष कुछ नहीं ठहर सकता। पूरे अध्यवसाय के साथ यदि हम निरन्तर नियमपूर्वक प्रयास करें, तो परिणाम अच्छा होगा।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक स्थानों पर मशीनें नहीं हैं। उन्हें यदि कुआँ खोदना है, तो वे गैंती और सब्बल का प्रयोग करते हैं। आरम्भ में भूमि की सतह अपनी कठोरता के कारण परेशान करती है, गैंती की चोटों का कोई प्रभाव नहीं होता है। पर वे एक ही स्थान पर खोदते जाते हैं, निरन्तर बार-बार चोट करते ही जाते हैं। धीरे-धीरे ही बड़ा-सा गड्ढा गहरा और गहरा होता चला जाता है। अन्ततः उनके अध्यवसाय की दृढ़ता से, अपनी शक्ति के बल पर, लगातार प्रयास करते-करते उन्हें पानी मिल जाता है। हो सकता है दस, पन्द्रह, बीस फुट अथवा उससे भी अधिक खोदने पर पानी आया हो। उन्होंने प्राप्त कर लिया जिसके पीछे वे प्रयत्नरत थे। यद्यपि आरम्भ में वह अदृश्य था। उन्होंने अनुमान कर लिया कि जल वहाँ होगा। इस प्रकार यह और कुछ नहीं, बस केवल एक ही दिशा में अध्यवसाय के साथ किये गये प्रयास का परिणाम था। एक ही लक्ष्य के लिए किये गये प्रयास का यह परिणाम था।

प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक जीवात्मा जो-कुछ प्राप्त करना चाहता है, उसे प्राप्त करने के लिए उसे योग्यता दी गयी है। यह शक्ति शारीरिक, मानसिक, नैतिक, बौद्धिक रूप में है। सबसे मुख्य है तुममें उसे प्राप्त करने की आकांक्षा, इच्छा और उत्साह होना चाहिए। तभी सब-कुछ सम्भव हो सकता है; क्योंकि जो

शक्ति तुम्हें मिली हुई है, वह कोई सामान्य शक्ति नहीं है। वह सर्वोच्च ब्रह्माण्डीय शक्ति का प्रकटीकरण है तुममें।

'दुर्गासप्तशती' में देवी माँ के लिए स्तोत्र गाया गया है : **"या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः"**—मैं सर्वोच्च देवी माँ को वन्दन करता हूँ जो मेरे हृदय में निवास करने वाली माँ मेरे अन्दर बुद्धि के रूप में निवास करती हैं, मैं उन्हें बारम्बार प्रणाम करता हूँ। **"या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः "**—मैं सर्वोच्च देवी के चरणों में झुक कर प्रणाम करता हूँ, वह मेरे मन के कमल-दल पर स्मृति-रूप में निवास करती हैं, मैं उन्हें बारम्बार प्रणाम करता हूँ। ब्रह्माण्डीय शक्ति मानव के भीतर शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आदि विभिन्न रूपों में निवास करती है, इसकी पहचान इस विशेष स्तोत्र से होती है।

हमारे अन्दर शक्ति तो है यदि हम कृपण नहीं हैं, यदि हम इसका प्रयोग-विनियोग एक विशेष गहन आकांक्षा के साथ करते हैं, अपने उद्देश्य के लिए प्रयास दृढ़ता के साथ करते हैं, शान्तिपूर्वक अध्यवसाय के साथ करते हैं, नियमित रूप से अध्यवसाय करने पर परिणाम अच्छे मिलते हैं। यही शिक्षा है।

गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी महाराज इस प्रकार के मार्ग-दर्शन के प्रति बड़े सकारात्मक थे। वे सदा कहा करते थे—"हताश मत होओ, तुम्हारे लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। यदि तुम अपना अध्यवसाय करते रहोगे, तो तुम्हारे लिए सब-कुछ सम्भव है। उसके आगे झुको मत। उसे छोड़ो मत।" हमारे शास्त्रों में ऐसे उत्कृष्ट उदाहरण भरपूर भरे पड़े हैं जैसे भागीरथ, सावित्री, ध्रुव तथा अन्य। ये सारे दृष्टान्त हमें यह संकेत देते हैं कि सब-कुछ सम्भव हो सकता है।

तुम्हें इस सत्य से अपने लिए लाभ उठाना चाहिए। विचार करो कि तुम्हारे अन्दर एक शक्ति है। उसके भरोसे तुम जो चाहो, वह प्राप्त कर सकते हो। शर्त यही है कि तुम्हारे अन्दर अध्यवसाय, अध्यवसाय में नियमितता, अध्यवसाय में दृढ़ता हो और ये सब परिणाम-प्राप्ति पर्यन्त चलते रहने चाहिए।

४२

साधना—एक सक्रिय प्रयास

आप सभी एक सुनिश्चित पथ की ओर बढ़ रहे हैं। सुनिश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ने का क्या अर्थ है? इसका आपके ऊपर क्या प्रभाव पड़ने वाला है, इसका क्या अर्थ है? किस रूप में यह आपके मन, वचन और कर्म में प्रकट होना चाहिए ?

तुम्हारे लिए साधना का क्या अर्थ है? साधना तुम्हारे जीवन में किस प्रकार प्रकट होनी चाहिए? तुम्हारे मन-वचन-कर्म में यदि आध्यात्मिक जीवन ही सर्वोच्च आदर्श है, यदि लक्ष्य-प्राप्ति के लिए योग-साधना का अभ्यास किया जाता है, यदि लक्ष्य-प्राप्ति की ओर पहुँचने में योग-साधना में लिप्त रहा जाये, यदि लक्ष्य योग है तो साधना का क्या अर्थ है? जीवन का योग और योगाभ्यास का तुम्हारे लिए क्या अर्थ है, तुम्हें उससे क्या अपेक्षा है? जब तक तुम यह नहीं जानोगे कि साधना, योग और योगाभ्यास क्या है, उसका तुम्हारे जीवन में क्या अर्थ है, तुम्हें उससे क्या अपेक्षा है, वह तुम्हारे जीवन में किस प्रकार प्रकट होना चाहिए, तुम किस प्रकार सच्ची साधना और योगाभ्यास में व्यस्त रह सकते हो। जब तक तुम यह सब जान न लो, तब तक यह तुम्हारे लिए प्रभावशाली नहीं हो सकता।

क्या हमारे धर्मग्रन्थ इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मार्मिक प्रश्न पर प्रकाश डालते हैं? हाँ, वे प्रकाश डालते हैं; परन्तु किसी रहस्यात्मक निगूढ़ अथवा अलौकिक भाव से नहीं कि सत्य को ऐसे अपरिमित रूप से अस्पष्ट, रहस्यपूर्ण और सूक्ष्म रूप से दर्शाया जाये कि महान् दार्शनिक और सूक्ष्मवेत्ता उसका अर्थ खोजने में लगे रहें। इसके विपरीत धर्मग्रन्थ इस प्राणभूत प्रश्न के सम्बन्ध में, सीधा, सहज, स्पष्ट, सुव्यक्त रूप से, निर्भ्रान्त रूप से कुछ कहना चाहते हैं। क्या है वह?

भगवान् राम के पास एक लक्ष्य था। वह सीता को वापस लाना चाहते थे। रावण का भी अपना एक लक्ष्य था, वह सीता को अपने पास रखना चाहता था। यद्यपि रावण के भाई विभीषण और उसकी पत्नी मन्दोदरी ने उसे समझाया, उससे प्रार्थना की, सम्मति दी कि वह सीता को राम को लौटा दे। फिर भी वह राम को सीता लौटा देने के लिए तैयार नहीं था। रावण ने अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए युद्ध के यथासम्भव सभी ढंग अपनाये। दूसरी ओर राम भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए युद्ध में रत हुए। उसके लिए उन्होंने आरामकुरसी पर बैठ कर किसी दूसरे को कुछ करने के लिए नहीं कहा। उन्होंने अपने-आप ही प्रयास किया। उन्होंने दूसरों से कुछ सहायता अवश्य ली, दूसरों से सम्मति ली, उन्होंने सेना को एकत्र किया, उन्होंने अपने ज्ञान के आधार पर युद्ध के लिए वह सब किया जिसकी आवश्यकता थी। उन्होंने हर सम्भव प्रयास किया।

राजकुमार श्री राम के समान श्रेष्ठ मानव के विषय में क्या कहा जाये, राजपरिवार के वंशज होते हुए भी उन्होंने बन्दरों, भालुओं जैसे जानवरों से सहायता ली। उन्होंने भी उनके लिए सब-कुछ करने के लिए हर सम्भव प्रयास किया। जब राम जी ने अपने-आपको किसी क्षण में असहाय समझा, उन्होंने आपस में विचार-विमर्श किया—''अब हमें क्या करना चाहिए?'' सभी ने समस्या को सुलझाने में समान रूप से सहायता दी। सभी ने अपनी-अपनी बुद्धि का प्रयोग किया। वे चुपचाप नहीं बैठे।

अपनी सामर्थ्य के अनुरूप जो अच्छे-से-अच्छा कर सकते थे, वह करने के पश्चात् भी, जब वे आगे नहीं बढ़ सकते थे, तब भी वे बढ़े; कार्य छोड़ नहीं दिया। उन्होंने उस कार्य को वहीं नहीं रोका, उन्होंने उसकी जानकारी प्राप्त की, उस पर चिन्तन किया, क्यों? क्योंकि अपने लक्ष्य के प्रति सच्चाई थी उनमें। वे उसे सच्चाई के साथ, निश्चित रूप से, प्रामाणिक रूप से, विश्वसनीय रूप से करना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने वह सब किया, जो वे करना चाहते थे। उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग किया और युद्ध किया। उन्होंने विपक्षी को अपने ऊपर यह कह कर हावी होने नहीं दिया—''क्या किया जाये? भाग्य!''

नहीं! ''यदि विरोधी है तो उसे हराना है, हमें अपनी शक्ति का उपयोग करना है। हमें सक्रिय होना चाहिए। हमें गतिशील होना चाहिए। हमें उसके लिए कुछ करना है।'' कुछ करना ही साधना है। ऊपर उठो! और कुछ करो!

पिछले चार दिनों से हम देवीमाहात्म्य का पाठ सुन रहे हैं। देवी एक महान् सत्ता, परब्रह्म शक्ति हैं। उनके अन्दर इतनी शक्ति है कि सोचने मात्र से, हुंकार मात्र से वह अपने शत्रुओं को परास्त कर सकती हैं। पर नहीं, उन्होंने केवल एक प्रकार से ही नहीं, बल्कि अनेक प्रकार से अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग किया। उन्होंने स्वयं युद्ध किया। इसका अर्थ है कि वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बड़े सघन रूप से सक्रिय हो कर अपने विरोधी को परास्त करने के लिए तत्पर थीं।

देवता जब दैत्यों से युद्ध करके परास्त हो गये, तब उन्होंने उच्चतर शक्ति की शरण ली। उनके पास जा कर उन्होंने प्रार्थना की—''कृपया हमारी सहायता कीजिए, हम इस योग्य नहीं हैं। आप हमारी सहायता के लिए आ कर हमारी ओर से युद्ध कीजिए।''

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते।।

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते।।

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते।।

(ओ नारायणी! आपको हमारा प्रणाम है! आप सबका भला करने वाली हैं, आप ही सबके कार्य पूर्ण करवाती हैं। आप ही शरण देने वाली हैं। ओ तीन आँखों वाली देवी माँ आपको प्रणाम है।

ओ नारायणी! आपके पास सृजन की शक्ति है, आप पालन तथा विनाश करने वाली हैं, फिर भी शाश्वत हैं। आप ही तीनों गुणों का आधार तथा उनका मूर्त रूप हैं। आपको प्रणाम!

ओ नारायणी! दीन और दु:खी हैं, आपकी शरण में आते हैं, आप उनकी रक्षा करने वाली हैं। आप सभी के दु:ख दूर करने वाली हैं। आपको हमारा प्रणाम है।)

इन तीनों श्लोकों में वे उनकी शरण में जाते हैं। वह शरण देने वाली हैं। वे उनकी सहायता करती हैं जो उनकी शरण में जाता है। यदि तुम शरण में नहीं जाते, वह वहीं हैं जहाँ पर थीं। वह जो थीं वही हैं, तथा तुम वहीं रहते हो जहाँ पर थे। इस प्रकार की कृपा तभी प्राप्त होती है जब तुम शरण में जाते हो। वह कहती है—"ठीक है ! तुम मुझसे जो माँग रहे हो, मैं तुम्हें वहीं दूँगी। मैं तुम्हारी रक्षा के लिए आऊँगी।" तब भी वहाँ क्रियाशीलता की आवश्यकता है। तुम्हें भी क्रियाशील हो कर, दिव्य शक्ति के पास जा कर, उनके अन्दर-बाहर की सारी सृष्टि से मदद माँगनी चाहिए।

यही है साधना, बाधाओं को अतिक्रमण करने हेतु एक सजग प्रयास और लक्ष्य-प्राप्ति हेतु अपने पथ पर आगे बढ़ते रहना। योगाभ्यास का अर्थ है—लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने के लिए सक्रिय प्रयास करना। साधना का अर्थ है—प्राप्त करने के लिए जो सम्भव है, उसे सक्रिय प्रयास द्वारा प्राप्त करना। इसका अर्थ है—सही दिशा में सतत प्रयत्न। इसका अर्थ है—इस सतत प्रयास के लिए आकांक्षा बनाये रखना। इसका अर्थ है—नकारात्मक अनुपयोगी मनोवृत्ति से उसे प्राप्त न करके सक्रिय रूप से प्रयास करने की दृढ़ इच्छा की निरन्तर सकारात्मक मनोवृत्ति बनाये रखना।

सक्रिय प्रयास का स्वरूप कैसा होगा? यह स्वरूप वह होगा जो तुम्हारे लिए उपयोगी और उचित होगा। लक्ष्य-प्राप्ति के विरोधी तत्त्वों से पार पाने के लिए जो तुम्हारे लिए अनुकूल तथा जहाँ तुम्हें जाने की इच्छा है, उस दिशा में और अधिक निकट ले जायेगा, जिसका चयन अपनी सहज-बुद्धि से पूर्ण बुद्धिमानी से किया जायेगा, यह वही होगा। ईश्वर ने तुम्हें बुद्धि दी है, तुम्हें अपनी बुद्धि और सहज बुद्धि दोनों का उपयोग करके अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सक्रिय रूप से व्यस्त रहना चाहिए।

साधना का सार सक्रिय प्रयास है, जिसमें निरन्तरता होनी चाहिए। योगाभ्यास का अर्थ है—सक्रिय प्रयास। यह मानसिक सक्रियता के रूप में भी हो सकता है, वह वाचिक सक्रियता भी हो सकती है, शारीरिक सक्रियता तथा तीनों प्रकार से भी हो सकती है। चौथे प्रकार का अभ्यास भी हो सकता है जो मानसिक, वाचिक प्रयास न हो, पर वह हर प्रकार का प्रयास हो सकता है।

यदि तुम मूर्खतावश कुछ करना चाहते हो, किसी प्रकार के मनोरंजन में डूबना चाहते हो, तो उसके लिए तुम किस सीमा तक प्रयास करते हो, तुम उसे कितना तौल कर, उसके गुण-दोष पर विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुँचते हो कि किस प्रकार से कौन तुम्हारी इन्द्रियों और तुम्हारे मन को सन्तुष्ट कर सकता है। उसे सम्पन्न करने के लिए दिन-रात तुम प्रयास करते हो। इसी प्रकार का प्रयास योग में भी होता है।

परन्तु, इसके विपरीत यदि तुम केवल अपने इन्द्रिय-सुख के लिए, आत्म-सन्तुष्टि के लिए, आत्म-सुख के लिए भटकते रहते हो, तो यह भी सक्रिय प्रयास है; पर उसकी दिशा विपरीत है। इससे किसी प्रकार की एकाग्रता, आनन्द तथा उच्चतर चेतना उत्पन्न नहीं होती; क्योंकि यह उचित दिशा नहीं है।

इसलिए प्रयास सही दिशा में किये जाने चाहिए। आत्मघात की दिशा में प्रयास न हो। अन्य दिशा में किया गया प्रयास तुम्हारे लिए विरोधी नहीं होना चाहिए। यदि तुम अपने लिए एक क्षेत्र में कठोर परिश्रम करके सही दिशा में कार्य कर रहे हो, साथ ही दूसरी ओर विपरीत दिशा में प्रयास करते चले जाते हो। तब तुम्हारे सही प्रयास भी असफल प्रयास हो जायेंगे; क्योंकि तुम जो-कुछ करना चाहते हो, उसे तुम अन्यथा कर रहे हो।

अतः सक्रिय प्रयास के साथ एकाग्रता और सच्चाई अनिवार्य हैं। इसके साथ सामान्य ज्ञान और सहज बुद्धि हो—असाधारण बुद्धि नहीं जो सामान्य व्यक्ति के पास नहीं है। साधक एक सामान्य व्यक्ति है और हम सामान्य व्यक्ति की बात कर रहे हैं।

मनुष्य जहाँ है वहीं से प्रारम्भ करता है; क्योंकि समय की उस विशेष घड़ी में(क्षण में) वही उसका साधन है। इसलिए सहज बुद्धि, प्रश्न-परिप्रश्न, चिन्तन और ईश्वर ने जिस प्रकार की बुद्धि तुम्हें दी है, उसमें सक्रिय हो कर, बुद्धिमानी से रास्ते में आने वाली अन्दर और बाहर की सारी बाधाओं को दूर करते हुए अपने लक्ष्य की ओर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ते चले जाओ।

सारे शास्त्रों में यही दर्शाया गया है। श्री राम ने सक्रिय प्रयास किया। उन्होंने भी युद्ध किया। देवी माँ को भी एक के बाद दूसरे युद्ध करने पड़े। महाभारत में भी इसी प्रकार का सक्रिय प्रयासों का अभ्यास दिखायी देता है। जो तुम्हारे लक्ष्य और आदर्शों के विरुद्ध है, तुम्हें उसे जीतना है। तुम्हें निराश और हताश हुए बिना अपने काम में लगे रहना चाहिए। एक घड़ी ऐसी भी आयी थी, जब श्री राम को भी निराशा का सामना करना पड़ा था। वह रावण के विरोध में जिस शस्त्र का प्रयोग करते, उसी से निराशा हाथ लगती थी। तब एक सज्जन ने कहा—''नहीं, नहीं! ऐसे नहीं, मेरे साथ आओ, ऐसे वार करो।'' इससे उन्हें शान्ति मिली। इसका अर्थ है—सकारात्मकता ही अवधारणीय है।

गुरुदेव को लैटिन भाषा का यह मुहावरा बड़ा प्रिय था "nil desperandum"—''निराश मत होओ।'' अनेक बार वे कहते थे—''निराश मत होओ।'' जहाँ निराशा है, वहाँ आशा नहीं है। बड़े रोचक रूप से ईसाई धर्म में तीन महान् गुणों के विषय में कहा गया है—विश्वास, आशा और दान। आशा पर बड़ा बल दिया गया है। जानते हो, क्यों? आशा जीवन के लिए आवश्यक है; क्योंकि आध्यात्मिक जीवन, साधना, योगाभ्यास कोई सरल नहीं है। यह सब उस मशीन के समान नहीं है जिस मशीन में पैसे डालो और फल अपने-आप निकल जायेंगे। आध्यात्मिकता के परिणाम शीघ्र ही नहीं आते हैं, उसका फल भी जल्दी प्राप्त नहीं होता है। अन्तिम फल वही है, जिसे तुमने अपना लक्ष्य बना लिया है। यदि हम अपना प्रयत्न करते चले जायें, तो सर्वोच्च प्राप्ति का फल निश्चित है।

इसी सत्य की ओर शास्त्रों ने हमारे आध्यात्मिक जीवन के सन्दर्भ में हमारा ध्यान आकृष्ट करके हमें समझाने का प्रयास किया है। शास्त्रों ने अपनी

बात स्पष्ट स्पष्ट रूप से कही है, सूक्ष्म रूप से नहीं। छिपे हुए गुप्त और गुह्य रूप में नहीं, सन्दिग्ध रूप में भी नहीं; बल्कि सरल भाषा में सत्य का वर्णन किया है। उन्होंने हमारे सामने सीधे सत्य को सरल तथ्य के रूप में रखा कि हमें अपना प्रयत्न सदा करते रहना है। साधना, योगाभ्यास, आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है—सहज बुद्धि, सामान्य बुद्धि का प्रयोग तथा जिन लक्ष्यों को हमने स्वयं निश्चित किया है, उन लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रयासों के लिए सदा सक्रिय रहना। किसी भी शास्त्र को उठा कर पढ़ो, सभी में यही सामान्य सार्वभौम सन्देश प्राप्त होगा; हो सकता है, कहीं-न-कहीं विस्तार में जाने पर उसमें भिन्नता भले ही दिखायी दे। मौलिक सन्देश सभी के समान हैं।

यदि हम इस प्रारम्भिक केन्द्रीय सन्देश को देख कर, उसे स्वीकार करके अपने ऊपर लागू करके साधना में व्यस्त हो, सहज बुद्धि, सामान्य ज्ञान का उपयोग करें, तो हमारी विजय होगी; क्योंकि यही विजय-पथ है।

उत्तर भारत के बड़े-बड़े नगरों में इन दस दिनों का अन्त विजयादशमी के रूप में होता है। भगवान् राम की जीत हुई थी। उनके प्रयासों का उन्हें फल मिला था। नौ दिनों तक पूजा करने के बाद दसवें दिन आयोजन होता है। इसी प्रकार से अपने विरोधियों पर देवी माँ की विजय के रूप में भी इसे मनाया जाता है। विजयादशमी नाम स्वयं में महत्त्वपूर्ण है। उस दिन लोग एक-दूसरे को शुभकामनाएँ देते हैं। वे परस्पर शुभकामनाओं के कार्ड भी भेजते हैं। क्यों? यह विजय पर आनन्द मनाने के दिन हैं। जीत का यह महान् अनुभव, निश्चित पराकाष्ठा है। तुम उसी के लिए बने हो।

साधना का अर्थ है—विजय। योगाभ्यास का अर्थ है—अन्तिम विजय। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है—अन्तिम विजय। इस प्रकार की विजय के लिए तुम्हें ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त हो! ईश्वर करे, देवी माँ तुम्हें बुद्धि, सहज बुद्धि और लक्ष्य-प्राप्ति के प्रयासों की शक्ति प्रदान करे!

४३

विचारों की पृष्ठभूमि

प्रत्येक दिन के ब्राह्ममुहूर्त में हम लोग भक्ति-भाव और आदर-भाव से भर कर दिव्य नाम के गान और ध्यान-स्मरण द्वारा प्रात:कालीन प्रार्थनाओं के माध्यम से अपने-अपने जीवन को समृद्ध बनाने का समान भाव ले कर यहाँ खिंचे चले आते हैं, जिसके द्वारा हम अपनी आध्यात्मिक सम्पत्ति का विस्तार करते हैं, जिसके द्वारा हम आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ते हुए, आध्यात्मिक चेतना के ऊँचे-ऊँचे स्तरों से अपने को ऊँचा उठाते जाते हैं, जिसके द्वारा हम भगवत्साक्षात्कार, परानुभूति के आत्यन्तिक आनन्द से अपने जीवन को सुशोभित करना चाहते हैं।

इस प्रकार की प्रत्येक सभा में सत्य की खोज के सारे प्रयास, अपने मन-मस्तिष्क को ऊँचा उठा कर उस सत्य के प्रति जागरूकता लाना आदि वस्तुत: जीवन है। यहाँ प्रत्येक क्षण हमारा वास्तविक जीवन है। जब हम अपने साथी साधकों की संगति में इस प्रकार का समय व्यतीत करते हैं, जब हम अपना समय सबके साथ मिल कर प्रार्थना करने में व्यतीत करते हैं तथा अपने मन-मस्तिष्क को ईश्वर की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं, तभी हमारा जीवन हम जीते हैं, नहीं तो जीवन रहने योग्य नहीं है।

सारे दिनों में आज के दिन की महान् घड़ी ही, सच्ची घड़ी है, एक पूर्ण रूप से तुम्हारे जीवन की धन्य घड़ी है, धन्य समय है, जिसमें तुमने जो सोचा है, उसे पा सकते हो, कुछ भी पाने के लिए तुम अपना मन बना सकते हो। एक निश्चय करने के बाद तुम जो पाना चाहते हो कि इस घड़ी से आज के दिन से इस क्षण मेरा जीवन इस प्रकार का होगा, मेरी दिशा यह होगी, यह मेरा उद्देश्य और लक्ष्य होगा। मेरे शरीर की हर श्वास के साथ, मेरे पूर्ण अस्तित्व के साथ मैं इस महान् आदर्श को पाने का प्रयास करूँगा। मैं उस पर अपने ध्यान को

केन्द्रित करके अपने समय को उसी का केन्द्र-बिन्दु बना कर अपना ध्यान, अपनी शक्ति, अपनी क्रियाशीलता महान् उद्देश्य की प्राप्ति में लगा दूँगा।

एक बार संकल्प कर लेने के बाद हम अपने जीवन को एक निश्चित दिशा दे दें और उस दिशा में दृढ़ निश्चय के साथ सक्रिय हो जायें, तो उसके बाद सब ठीक हो जाता है। समस्त देवता, सारी शक्तियाँ, सब तुम्हारी सहायतार्थ आ जाती हैं। वे तुम्हारी आगे बढ़ने की शक्ति और ईश्वरोन्मुख गतिविधियों का सहारा देती हैं। इसे साधना कहते हैं। इसे योगाभ्यास कहते हैं। इसे व्यावहारिक आध्यात्मिक जीवन कहते हैं। आज का दिन आरम्भ करने के लिए बड़ा शुभ दिन है (क्रिया का मानसिक सूत्रपात), एक नया शुभारम्भ, अभिनवारम्भ!

अन्य जो-कुछ भी तुम अपने लिए करना चाहते हो, उस पर थोड़ी देर के लिए मनन करो, सोचो, उस पर विचार करो, तुम्हारे मन को किसमें सन्तोष मिलता है? जब तुम कुछ विशेष नहीं कर रहे हो, तब तुम्हारा मन क्या सोचने में लगा है? तुम्हारे विचार किस प्रकार के हैं? तुम्हारा मन किस दिशा में जा रहा है? जब यह बाहरी स्थितियों में व्यस्त नहीं है, तब उसकी पृष्ठभूमि क्या है? जब यह किसी काम में संलग्न नहीं है, तब इसकी पश्चाद्भूमि क्या है?

क्या तुमने प्रयत्नत: अनवरत रूप से विचार की ऐसी पृष्ठभूमि का अनुशीलन (विकास) किया है कि जब मन में चिन्तनीय कोई और विचार न हो, तो (मन) उसी अवस्था में उसी पृष्ठभूमि (के विचार) में स्थित रहे? क्या तुमने ऐसी स्थिति बना ली है, ऐसा विचार, ऐसा केन्द्र, ऐसी एकाग्रता? क्योंकि स्थिरतापूर्वक अबाध रूप से आध्यात्मिक उन्नति का यही सार है। जैसा तुम सोचते हो, वैसे ही बनते हो। अनवरत रूप से निरन्तर जो (विचार) तुम मन में रखते हो, जैसी भी जागृति तुम सतत बनाये रखोगे, वही तुम्हारा भाग्य होगा।

बैठ कर अन्तर्मुखी हो कर खोजने का प्रयास करो, सावधान रहो, आगे आने वाले दिनों में, सप्ताहों में अपना निरीक्षण करो, फिर देखो कि तुम्हारी आन्तरिक दशा कैसी है? तुम्हारे मन का आन्तरिक विषय क्या है, जब यह अन्य वस्तुओं में लिप्त नहीं है? एक उदात्त, शान्त, पवित्र विचारों की पीठिका

तुम्हारी सम्पत्ति है जिससे तुम्हारा मन उन्हीं पर केन्द्रित रहे, तुम उन्हीं से बँधे रहो।

एक वकील के विचारों की पीठिका सदा कचहरी, लेख्य-प्रमाण (documents) और तर्क होते हैं। एक डाक्टर के विचारों की पीठिका रोग, उसका उपचार और औषधि है। एक इन्जीनियर के विचारों की पीठिका रूपरेखा, भवन-निर्माण का समान आदि हैं।

तुम्हारे विचारों की पीठिका क्या है? क्या समाचार-पत्र के समाचार हैं अथवा जो तुमने दूरदर्शन पर देखा है अथवा जो तुमने दूसरों के साथ गप्पों में सुना है या फिर वह 'पुरुष' या परमात्मा है या परम सत्य है या फिर वह है जो सर्वव्याप्त, सदा विद्यमान ब्रह्माण्डीय दिव्यात्मा है, या फिर सर्वोच्च मुक्ति का चमचमाता हुआ आदर्श है, ईश्वर का अनुभव है? ज्ञानोदय की प्रदीप्ति की स्थिति है? अथवा जो तुम हो, वह स्थिति है?

तुम्हारे विचारों की पीठिका क्या है? क्या तुमने परिश्रम करके, कष्ट उठा कर ऐसा कुछ किया है जिससे तुम अपनी स्थायी स्थिति को प्राप्त कर सको? केवल कभी-कभी ही उस बाह्य, अनिवार्य, अपरिहार्य, आवश्यकताओं की स्थिति से दूर हट कर जो अनिवार्य, कर्तव्य कर्म हैं तुम्हारा ध्यान उन दूसरी वस्तुओं पर जाता है। दूसरी वस्तुओं पर सोचने के लिए तुम अपने को कष्ट पहुँचाते हो, अन्यथा तुम सदा अपनी पीठिका में ही केन्द्रित रहते हो। सदा परिवर्तनशील, आने-जाने वाले तथ्यों के मध्य यह विचार अनवरत रूप से अडिग बना रहता है। जाता नहीं। यह तुम्हारे विचारों की स्थायी पीठिका है, जो वहाँ सतत, स्थिर, अपरिवर्तित रूप से रह कर तुम्हारे अस्तित्व का केन्द्र, आत्यन्तिक और चिरस्थायी बनी हुई है।

सारे स्वाध्याय, सारे सत्संग, सारा श्रवण, सारी प्रार्थनाएँ और संकीर्तन तुम्हें तुम्हारे अन्तर की ओर मोड़ने के लिए हैं, जहाँ स्वयं ईश्वर का निवास है और जो देवत्व से भरा हुआ है, ब्रह्म-चिन्तन, आत्म-चिन्तन से भरा हुआ है। रूपान्तरण के लिए निश्चित रूप से यही एक शक्ति है जो मानव को देव, मनुष्य से ईश्वर, साधक से सिद्ध—एक मुक्त व्यक्ति बना देती है।

तुम्हारे सिर से ले कर पैर के नख पर्यन्त एक ही झंकार होनी चाहिए— दिव्य नाम की झंकार, दिव्य विचारों की झंकार, ईश्वर का सुख स्फुरण, सच्चिदानन्द के महान् लक्ष्य की झंकृति, सत्य में स्थापित होने की झंकृति। हमारी समस्त मानवीय शक्ति, हमारी पूर्ण शक्ति, पूर्ण बल, पूर्ण इच्छा-शक्ति सब उसी एक ही दिशा की ओर प्रवाहित होनी चाहिए कि मुझे ईश्वर में स्थित रहना है, उसी में गति करनी है तथा उन्हीं में वास करना है, मेरी आन्तरिक चेतना निरन्तर महान्-भव्य दैवी सत्य से बँधी हुई होनी चाहिए जो मेरे हृदय-तल में सहस्रों सूर्यों की आभा से प्रदीप्त है।

आध्यात्मिक जीवन का, साधना का सर्वोच्च आत्यन्तिक लक्ष्य है ईश्वर में स्थिति (ब्राह्मी-स्थिति), एक ऐसी अवस्था जहाँ तुम्हारा आभ्यन्तर विषय सच्चिदानन्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं। केवल परमात्मा। उस लक्ष्य की प्राप्ति की कामना करो। इस भगवदीय चेतना की आन्तरिक स्थिति में तुम्हारी सब क्रियाएँ और शक्तियाँ कार्य करें। यही प्रार्थना! पूरे आध्यात्मिक जीवन की सारी साधना के सारे संघर्ष में ईश्वर के प्रति निष्ठा सबसे परम लक्ष्य है। जब ऐसी स्थिति आ जाती है, जब तुम्हारे अन्तर में ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ न हो, परमात्मा के सिवाय कुछ न हो, इस सीमा तक प्रयास करना चाहिए। ईश्वरीय चेतना की इस आन्तरिक स्थिति के लिए ईश्वर करे तुम्हारी सारी शक्ति, सारी क्रियाएँ उसी दिशा में कार्य करें।

ईश्वर करे, इस विजयादशमी पर तुम ईश्वर की ओर जाने वाली यात्रा का आरम्भ करने के लिए अपने अन्तर में गहरी पैठ रख सको; क्योंकि यह बाहरी यात्रा न हो कर आन्तरिक यात्रा है, तुम्हें आकाश में नहीं चेतना में यात्रा करनी है, तुम्हें संसार में नहीं ईश्वर में यात्रा करनी है। तुम्हारे अस्तित्व के केन्द्र, ईश्वर की इस आन्तरिक यात्रा में ईश्वर तुम्हें सफलता प्रदान करें!

"**अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित:** (अर्जुन! सारे प्राणियों के हृदय-तल में बैठा हुआ आत्मा मैं ही हूँ)। "**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**" (ओ अर्जुन! प्रत्येक प्राणी के हृदय में ईश्वर का निवास है)। "**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः**" (ईश्वर केवल एक ही है। यह सारे प्राणियों के अन्दर

निहित है)। तुम्हारी सत्ता के केन्द्र में, तुम्हारे अन्तर की गहराई में इस आन्तरिक यात्रा का, केवल वही तुम्हारा परम लक्ष्य होना चाहिए। ईश्वर करे, इस यात्रा का कभी अन्त न हो। ईश्वर करे, तुम इस लक्ष्य की प्राप्ति सदा के लिए कर लो। ईश्वर करे, यही तुम्हारी धन-सम्पत्ति, तुम्हारी सर्वोच्च सम्पत्ति हो जाये। ईश्वर करे, अन्तर्निवास की दिव्य जागृति, दिव्यता की जागृति, तुम्हारी निरन्तर स्थिति हो जाये।

देवत्व की इस आन्तरिक स्थिति के लिए ईश्वर और गुरुदेव का आशीर्वाद तुम्हें प्राप्त हो! ईश्वर करे, तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन—तुम्हारे मन, वचन और कर्म देवत्व की आन्तरिक स्थिति के प्रतिबिम्ब की अभिव्यक्ति हो जायें। ईश्वर करे, तुमने जिस प्रकाश को अपने अन्दर जगा कर उसके बहाव को सामने लाया है, वह खूब प्रकाशित रहे, वह तुम्हारे वातावरण को प्रकाशित करे जिससे तुम जहाँ-कहीं भी जाओ, वह प्रकाश तुम्हारे साथ-साथ चले।

ईश्वर करे, तुम अपनी आन्तरिक यात्रा का शुभारम्भ दृढ़तापूर्वक, निश्चयपूर्वक, भावपूर्ण हो कर इस महान् दिवस पर करो जो ज्ञान और विवेक का आरम्भ, ज्ञान और विवेक से पूरित जीवन का आरम्भ है।

४४

महानतम विजय

जो हो रहा है, होने दो और शेष में समर्पण भाव रखो। अर्जुन ने जब भगवान् श्री कृष्ण से गीता के अठारहवें अध्याय में कहा : **''करिष्ये वचनं तव''**—''मैं आपकी आज्ञाओं का पालन करूँगा।'' अर्जुन ने अपनी इस घोषणा से अपनी विजय निश्चित कर ली। अर्जुन की इस घोषणा का महत्त्व जानने के लिए गीता के अन्तिम अध्याय के अन्तिम श्लोक का मनन करना चाहिए—''जहाँ ईश्वर सब-कुछ करने वाले हैं और मानव-प्राणी, शिष्य-साधक, भक्त, सभी उनके आदेशों का पालन करने के लिए अब पूर्ण रूप से तैयार हैं, वहीं पूर्ण सम्पन्नता, पूर्ण विजय और पूर्ण आनन्द है।''

हमारे पूर्वजों ने आध्यात्मिक जीवन के अन्य रहस्यों को भी हमें समझाया है कि निश्चित रूप से ईश्वर गुरु के रूप में आते हैं। वे गुरु के रूप में गुरु के द्वारा प्रकट होते हैं। गुरु ईश्वर का प्रकट रूप हैं। इसलिए आध्यात्मिक क्षेत्र में गुरु-शिष्य-सम्बन्ध के सन्दर्भ में गीता का अन्तिम श्लोक गुरु के प्रति आदर भाव को प्रकट करता है।

कल्पना करो कि गुरु ऐसा है जिसने कभी आज्ञा न दी हो, कभी दण्ड न दिया हो, कभी निर्देश न दिया हो। हमारे गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी इसके लिए उदाहरण-स्वरूप थे। उन्होंने कभी गुरु-पद धारण नहीं किया। वे या तो सदा परामर्श देते थे या निवेदन करते थे। उनकी आज्ञा का तात्पर्य उनकी शिक्षाओं के आज्ञा-पालन के रूप में होता था। अपने निर्देशों की घोषणा के रूप में उन्होंने जो-कुछ कहा, वह अव्यक्त आज्ञा-पालन के रूप में था, वह उनके ज्ञान के प्रकाश का अनुकरण के रूप में था। उनके भव्य उदाहरणों के चरणचिह्नों का अनुगमन करने से हमारे अपने स्व की इच्छा पर विजय होगी।

हमारी अपनी छोटी-छोटी रुचियाँ और हमारे 'अहंभाव' के हठीले कट्टर दावे और अहं पर विजय होगी।

इसलिए जिसे महान् विजय कह सकते हैं, वह है—"मेरी नहीं, मेरी नहीं, बस आपकी इच्छा ही शिरोधार्य है, मेरे स्वामी।" अत: महान् विजय है अहं को पूर्णतया नष्ट करके शाश्वत जीवन के लिए योग्य बनना। इसलिए महान् विजय है—अहं का त्याग और गुरु की आज्ञा का पालन। "ओ गुरु, मेरी रुचियाँ, मेरे स्वाद, मेरी पसन्द में आपकी शिक्षाएँ, मेरे जीवन में प्रथम स्थान पर हों। मेरी कोई रुचि नहीं है। मेरी कोई पसन्द अब नहीं है। आपने मुझे जो करने के लिए कहा है, मेरी रुचि केवल उसी में है। मेरा स्वाद आपकी शिक्षाओं का पालन करने में है। मेरी पसन्द आपकी आज्ञाओं के पालन में है।"

इस प्रकार अहं को यदि एक ओर कर दिया जाये, तो वह नगण्य, गौण हो जायेगा, उसे प्रमुख स्थान में रहने की आज्ञा नहीं मिलेगी। वह विजय होगी। ऐसी विजय प्रशंसनीय होगी; क्योंकि सबसे बड़ी विजय तो स्वयं पर विजय है। "**जगत् जितं तेन येन जितं मन:**—जिसने मन को जीत लिया है, उसने संसार को जीत लिया है।" मन पाँचों इन्द्रियों (दर्शन, श्रवण, स्पर्श करने, आस्वादन और घ्राण) के माध्यम से विनाश करता है।

बड़ी महत्त्वपूर्ण विचारोत्तेजक उक्ति है, उस पर मनन करना चाहिए—"यदि अन्य सारी इन्द्रियों को जीत लिया है; पर अपनी रसना को नहीं जीत पाये हो, ऐसे मनुष्य को आत्म-विजयी नहीं कह सकते, परन्तु अन्य इन्द्रियों को यदि पूर्ण रूप से नहीं जीत पाये और यदि जिह्वा को पूरी तरह से जीत लिया है, तब उस व्यक्ति को आत्म-विजयी कह सकते हैं!" यदि किसी ने पूर्ण रूप से रसना को वश में कर लिया है, उस पर भी यदि अन्य इन्द्रियों को दमन करने में, उन्हें जीतने में थोड़ी-सी अपूर्णता हो, थोड़ी त्रुटि हो, फिर भी व्यक्ति को आत्म-विजयी कहा जा सकता है।

हमारे प्राचीन ब्रह्माण्डीय मानव-परिवार ने इस अनुभूत सत्य की घोषणा की। यह केवल योग में ही प्रतिपादित नहीं होता। यह सामान्य सार्वभौम सत्य है। जब वे रसना के विषय में कहते हैं, इसका अर्थ स्वाद के साथ-साथ वाणी

भी है जिसमें क्रोध भी आ जाता है—सदा मुँह-तोड़ जवाब देने के आवेश से प्रेरित अदम्य लालसा, अपनी बात मनवाने के लिए विकलता, कभी ऐसा कहने के लिए सन्तुष्ट नहीं कि 'ठीक है, तुम्हारी जीत हुई, मैं चुप रहूँगा।' उसके बदले में तुमसे ही अपनी बात मनवानी है। यदि समय के भीतर तुम्हें वह अवसर नहीं मिला कि तुम्हारी बात अन्तिम हो उसके पश्चात् घण्टों, दिनों, सप्ताहों बाद तुम किसी तरह भी डंक मारने से बाज़ नहीं आते।

यह बड़ा गम्भीर दोष और न्यूनता है। इसका अर्थ है कि तुम पूर्ण रूप से अहं के चंगुल में हो; मन तब तक शान्त नहीं बैठेगा, जब तक अपनी बात मनवा न ले। प्रत्याक्षेप (प्रतिशोध) लेने की भावना, प्रलाप (गपशप) की आदत से अपनी प्राण-शक्ति को हानि पहुँचती है तथा अपने अमूल्य समय का ही नाश होता है। समय जीवन का ही दूसरा नाम है। वही जीवन है। गप्पें मारना, पीठ पीछे बुराई करना, चुगलखोरी, दूसरों में दोष-दर्शन करना, व्यंग्य आदि सच्चे आध्यात्मिक साधक के लिए ये सभी बड़े गम्भीर दोष हैं। यदि तुमने किसी को पलट कर नहले पर दहला मार दिया, उसे नीचा दिखा दिया, उस पर विजय का गर्व होता है। यदि तुमने आधे दरजन मनुष्यों को किसी अन्य व्यक्ति पर किये गये व्यंग्य पर हँसा दिया, जिसके प्रति वह सभी मिल कर निषेधात्मक भाव रखते रहे हों, तो तुम स्वयं को विजयी मानने लगते हो। दलबाजी व्यक्ति की वाक्-शक्ति का निकृष्ट लक्षण है।

जिह्वा वाक्-शक्ति के साथ-साथ स्वाद का भी प्रतिनिधित्व करती है। जो मनुष्य को वशीभूत करके भक्षक और लोलुप (glutton) बना देती है। उसे अपनी जिह्वा पर वश नहीं होता। लोलुपता में व्यक्ति को अपनी सम्भोग-वृत्ति पर संयम नहीं रहता; क्योंकि जिह्वा और भोग-वृत्ति दोनों एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। दोनों में जल-तत्त्व प्रधान है। जल-तत्त्व ही सम्भोग-वृत्ति और जिह्वा की स्वाद-वृत्ति दोनों को संचालित करता है। इसलिए जिह्वा पर विजय पाने का अर्थ है— सभी इन्द्रियों पर विजय पा लेना।

गुरुदेव के इस पवित्र आश्रम में विजय हमारे लिए विशेष महत्त्व रखती है। विजय का अर्थ अपने स्वार्थ भाव पर विजय पाना भी होता है, जिससे हम

निःस्वार्थी हो कर अपनी योग-साधना के अंग के रूप में निःस्वार्थ सेवा में लिप्त रहें। जो सेवा, भक्ति, ध्यान, आत्म-सिद्धि का दिव्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उनके लिए स्वार्थ भाव पर विजय पाना अनिवार्य है। इसलिए आज्ञा-पालन और विजय का अर्थ होगा—स्वार्थ भाव की प्रवृत्ति पर विजय पाना, जिससे तुम निःस्वार्थ भाव के गुण से चमक उठो और निःस्वार्थ कर्मयोग में लीन हो जाओ।

विजय का अर्थ यह भी है कि स्वार्थ भाव और भ्रान्ति के कारण किसी व्यक्ति या किसी वस्तु के प्रति आसक्ति, मोह, राग पर विजय पाना और पूर्ण रूप से प्रभु के प्रति अनुरक्त होना। यही भक्ति का सार है। निम्न प्रकार की वस्तुओं और व्यक्ति के प्रति आसक्ति पर विजय ईश्वर के प्रति पूर्ण प्रेम-समर्पण के योग्य बनाती है। हो सकता है, सारे प्राणियों के प्रति तुम्हारे अन्दर करुणा की भावना हो। पूरे मन से एकाग्र भाव से ईश्वर के प्रति भक्ति में वह तुम्हारे रास्ते में नहीं आता। वह केवल विशेष रूप से निर्दिष्ट आसक्तियाँ हैं जो आध्यात्मिक साधक को स्खलित करने के अवरोध मात्र हैं।

उन लोगों की विजय है जो स्वामी शिवानन्द जी के अनुगामी हैं उसका अर्थ मन की अशान्त और व्याकुल प्रकृति पर विजय पाना भी है। इन्द्रियों का वशीकरण, मन का वशीकरण, इनकी सतत व्याकुलता, चंचलता पर विजय पाना, इन्हें एकाग्र करना, स्थिर करना, अचल करना दिव्य जीवन साधना में विजय कही जायेगी।

विजय प्राप्त करने का अभिप्राय है अनुचित चिन्तन पर विजय—"मैं यह शरीर हूँ, मैं यह मन हूँ, मैं अमुक व्यक्ति हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं भारतीय हूँ, मैं विदेशी हूँ, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ।" ऐसी कल्पित धारणाओं को दूर करना चाहिए। तुम प्रत्येक समय अशरीरी, अनाम, अरूप, अलिंग, अनादि, अनन्त, अजन्मा, अमर्त्य, अनश्वर, दिव्य आत्मा हो। अपने इस आत्मस्वरूप को भूल कर मिथ्या सायुज्य ही पतन का कारण है। यह सबसे बड़ी पराजय है। कुचल देने वाली पराजय है। इस पतन से ऊपर उठने के लिए और मिथ्या

धारणाओं पर विजय-प्राप्ति हेतु स्वामी शिवानन्द जी के महान् प्रोज्ज्वल दिव्य जीवन की शिक्षाओं को धारण करना होगा।

इस प्रकार गुरुदेव के शिष्य होने के नाते तुम्हारे लिए विजय का अर्थ है—नि:स्वार्थ सेवा, ईश्वर के प्रति भक्ति, मन को जीत लेना, शरीर के साथ मिथ्या सायुज्य के भाव पर विजय। विजय का अर्थ यह भी है—दूसरों को कष्ट पहुँचाने के भाव पर विजय, झूठ बोलने पर विजय, किसी भी रूप में धोखा देने पर विजय, विषयासक्ति पर विजय। गुरुदेव के दिव्य जीवन के ये सात स्तम्भ हैं जो उस विजय का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसकी कामना गुरुदेव ने हम सबके लिए की थी। इस विजय का रहस्य गीता के अन्तिम अध्याय में उद्घाटित किया गया है, जब अर्जुन घोषणा करता है—"मैं आपके आदेश का पालन करूँगा", और जब संजय गीता के अन्तिम श्लोक में कहते हैं—"जहाँ ईश्वर और अर्जुन दोनों हैं, वहीं सम्पन्नता, प्रसन्नता और विजय होती है।"

४५

समस्त आसुरी वृत्तियों पर विजय प्राप्त करो

देवी माँ की नौ दिन तक पूजा करने के पश्चात् हम दसवें दिन विजय-पर्व मनाते हैं। इसका अर्थ यह हो सकता है कि अनेक प्रकार से संघर्ष करने के बाद अन्ततः हमें विजय प्राप्त होती है या फिर एक संकेत यह हो सकता है कि सतत अपने प्रयास से तुम उन सब पर विजय प्राप्त कर सकते हो, जो पूरी शक्ति के साथ तुम्हारे ऊपर आक्रमण करके तुम्हें दुःखी करते हैं।

यह आराधना तुम्हें यह संकेत दे सकती है कि प्रतिक्षण प्रतिदिन सुबह से ले कर शाम तक तुम्हारे दैनिक जीवन में निरन्तर तुम्हें विजय प्राप्त करनी है, निरन्तर तुम्हें सारी आसुरी शक्तियों पर विजय प्राप्त करनी है जो तुम्हें विजित करना चाहती हैं, वह तुम्हें अपने वश में करना चाहती हैं, चाहे वह मानसिक हों या मनोवैज्ञानिक या मनोभावों, भावनाओं, चित्तवृत्तियों के धरातल की हों या इन्द्रियों के माध्यम से बाह्य धरातल की। चाहे वह अन्दर से हों या बाहर से, जो तुम्हारे विरोध में खड़ी हो कर तुम्हें (ईश्वर की ओर जाने के पथ) से हटाती हैं, तुम्हें लगातार उन्हें जीतना है, लगातार उन्हें अपने वश में करना है।

इस प्रकार, यदि हम प्रातः जागरण-काल से ही सतत जागरूक, सावधान, समाहृत और विरोधी शक्तियों का अतिक्रमण करने हेतु पूर्ण रूप से संयुक्त हों, तो दिवसावसान-काल में हमारे प्रयास का क्रम हमें प्रसन्नता देगा। मानो, प्रभु की कृपा से हमें विरोधी शक्तियों का सामना करने की शक्ति प्राप्त हुई और दिन सफल हुआ।

"आज का दिन अच्छी तरह से रहा। आज का दिन अच्छी तरह से व्यक्ति हुआ। आज का दिन आध्यात्मिक क्षेत्र में महान् प्राप्ति का दिन रहा है। आज का दिन अपने महान् लक्ष्य की ओर बढ़ने का दिन रहा है। यह पूरी तरह से प्रगति का दिन रहा है।" आध्यात्मिक साधक का हृदय इस प्रकार का होना

चाहिए। इसी प्रकार की चित्तवृत्ति होनी चाहिए, क्रियाशील हो कर दृढ़ता के साथ वश में करने वाली चित्रवृत्ति। प्रत्येक दिन, रात में सोने के लिए जाने से पहले तुम्हें इसी प्रकार का चिन्तन करना चाहिए, अपना विजयोत्सव मनाना चाहिए। सच्चे ईमानदार साधक, ईश्वर के भक्त का यही लक्षण है।

सुखदायक, आकर्षक और अच्छा पथ, जिस पर लाखों चलते हों, उस प्रेय पथ पर चलना बहुत सरल है। विरल ही कुछ ऐसी आत्माएँ होती हैं जो अपना मन ऐसा बनाती हैं—"नहीं, यह पथ मेरे लिए नहीं है आकृष्ट करने वाला सरल पथ। इसमें मेरी विजय निहित नहीं है, मेरा श्रेय इसमें नहीं है। मुझे उसी पथ का चयन करना चाहिए जो मुझे उत्तरोत्तर उन्नति की ओर ले जाये। मेरी बाहरी आँखों को वह कितना ही अनाकर्षक लगे, मुझे चिन्ता नहीं; क्योंकि उनमें विवेक का अभाव है।"

तुम कहते हो, दूसरा पथ महान् है। यही मेरे लिए अच्छा है। मैं यद्यपि उसे देख नहीं पाता हूँ; पर मैं जानता हूँ कि जो पथ आकर्षक और सुखद है, वह पथ मेरे लिए नहीं है। पर जो पथ मुझे ऊपर की ओर ले जाने वाला, उदात्त ऊँचाइयों पर ले जाने वाला है, उस आदर्श की ओर ले जाने वाला है वही मेरे लिए है। मैं केवल उसी पथ का चयन करूँगा। मैं निरन्तर उसी पथ का चयन करूँगा।" एक क्षण के लिए भी उस पथ से हटने की भूल नहीं करूँगा। पुनः-पुनः उसी पथ का चयन करूँगा।

इसलिए हमारा पथ अन्त में विजय प्राप्त करने का पथ नहीं है। हमारा पथ निरन्तर, हर क्षण, हर पग पर, दिवस पर्यन्त अतिक्रमण करने के लिए है। इसी से वास्तविक आध्यात्मिक जीवन बनता है। इसी से जीवन योगमय बनता है। इसी से सच्ची साधना होती है। लगातार विजय पा कर स्वयं सिद्धि प्राप्त करते हुए यह मान लेने की यही इच्छा निरन्तर रहती है कि हार कभी स्वीकार नहीं करनी है, निरन्तर विजय प्राप्त करनी है।

अन्तःकरण में यदि वह जिज्ञासा, आकांक्षा जागृत है, तो पारगमन सम्भव है। आग्नेय (प्रचण्ड) प्रतिज्ञा, दृढ़निश्चय, तीक्ष्ण इच्छा हो, तो प्रतिपल प्रतिदिन सतत उत्तरोत्तर प्रगति होगी। एक सच्चे योगी, भक्त और साधक के

यही गुण हैं। भगवान् का भक्त दुर्बल नहीं होता। भगवान् का भक्त अपने प्रियतम की अपार अदृश्य शक्ति अपने में समेटे हुए अत्यन्त शक्तिशाली होता है। यही आध्यात्मिक जीवन है।

४६

कौन-से व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हो?

एक बड़ी प्रसिद्ध कहावत है—''विजय प्राप्त होने पर भी गर्व से मदमस्त मत हो जाओ।'' जिसका अर्थ है तुमने जो-कुछ किया है उसमें सन्तुष्ट हो कर मत बैठो, अपने प्रयासों को मत रोको। सफलता पाने के लिए प्रयास करते रहो। हमें सोचना चाहिए कि अपनी उपलब्धियों की कोई सीमा नहीं है। सच तो यह है कि माया के अधीन रहते हुए व्यक्ति केवल यह कहने की स्थिति में है—''मैं उसे जीतने के योग्य रहा हूँ, मुझे विजय प्राप्त हो गयी है;'' यदि कोई व्यक्ति अपनी अन्तिम श्वास के क्षणों में यह कहे कि अब वह बिलकुल माया के संसार में नहीं है। ऐसी स्थिति आने तक दृढ़ता के साथ उसका कहना कि उसने पूरी तरह से माया पर विजय पा ली है, उसने पूरी तरह से उसे विजित कर लिया है, मूर्खता होगी। वह बुद्धिमानी नहीं होगी।

आओ, इस अतिक्रमण की, विजय प्राप्त करने की धारणा का पहले परीक्षण करें। विजय किस पर पानी है? संसार के महान् गुरु भगवान् बुद्ध ने एक बार भिक्षुओं से एक प्रश्न पूछा—''सबसे बड़ा विजेता कौन है, वह जिसने बड़ी सेना को जीत लिया है, अपनी शक्ति के बल पर अपने पड़ोसी राज्यों को जीत कर अपनी सीमा का विस्तार कर लिया है अथवा वह जिसने अपने-आपको जीत लिया है?'' भगवान् बुद्ध ने स्वयं उत्तर दिया—''विजयी वही है, जिसने अपने-आपको जीत लिया है।''

तुम्हारे अन्दर के व्यक्तित्व की आत्मपरक सीमाएँ हैं, समस्याएँ सुलझानी हैं। युद्ध जो आरम्भ होने हैं, अर्थात् समस्याओं का समाधान करना है। वहाँ अनेकों चीजें हैं जिन्हें जीतना है, यदि तुम अपनी मूल प्रकृति दिव्य गुणों से चमकना चाहते हो। यदि कोई आत्म-विजय के लिए युद्ध में रत रहता है और अपनी इन्द्रियों, इच्छाओं, आवेगों, लालसाओं, प्रवृत्तियों, अपनी उत्तेजनाओं

पर विजय प्राप्त कर लेता है, तो वह सच्चा विजेता होगा। अपने-आपको जीत लेना ही सबसे महान् जीत है : **"जगत् जितं तेन येन जितं मन:"** —निश्चित रूप से जिसने अपने मन को जीत लिया है, उसने सारे संसार को जीत लिया है।

इस प्रकार का चिन्तन करने के लिए कुछ प्रश्न मन में आते हैं, उन प्रश्नों पर विचार करने में मैं कभी नहीं थकता। वे कहते हैं कि अपनी प्रकृति को दबाना नहीं चाहिए, उनका दमन नहीं करना चाहिए, अपने प्रति बल-प्रयोग करो। व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व को भाव देना चाहिए। इसका वास्तविक अर्थ क्या है? किस रूप में वह हमारी भलाई कर सकता है? इसका वास्तविक तात्पर्य क्या है?

इस प्रश्न के दो आयाम हैं। जब तुम कहते हो कि आत्माभिव्यक्ति प्रकट होने दो, क्या तुम्हारे कहने का अर्थ पूर्ण आत्मन् के लिए है? क्योंकि हमारे अन्दर पशु-आत्मा भी है—एक स्थूल विषयासक्त पशु आत्मा, हमारे अन्दर एक मनोवैज्ञानिक आत्मा है, हमारा मानवीय स्वभाव और हमारे अन्दर उच्च आत्मा का दिव्य स्वभाव भी है। आत्मा के कौन-से प्रतीयमान मनोवैज्ञानिक संकेत का पालन करना चाहिए?

स्वभाव को दबाना अस्वाभाविक है, नि:सन्देह अप्राकृतिक है। यदि तुम्हारे अपने स्वभाव में विभाजन है, तो वह तुम्हारी कुशलक्षेम के लिए, तुम्हारी सुरक्षा के लिए, तुम्हारे शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य के लिए, तुम्हारी भलाई के लिए हानिकारक होगा, क्या वह नियम तुम्हारे लिए ठीक होगा? क्या तुम्हें किसी विशेष श्रेणी में आने वाले विशेष पक्ष पर अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करनी है, जिसकी अभिव्यक्ति से तुम्हें हानि पहुँच सकती है? इस सम्मति का यह अर्थ नहीं हो सकता, इसे कहने की आवश्यकता नहीं है। यदि सम्मति देनी ही है, वह ऐसी होनी चाहिए कि उसका लक्ष्य तुम्हारे लिए कमी हानिकर नहीं, बल्कि लाभप्रद होना चाहिए।

ऐसी स्थिति में सक्रिय विवेक की आवश्यकता है। यहाँ विवेक का अर्थ है कि जो तुम्हारी जन्मजात मौलिक प्रकृति यदि विरोधी (वैरी) नहीं है, तो उस पर

बलपूर्वक अंकुश नहीं लगाना चाहिए। पुनरपि यदि प्रतिकूल है, हानिकारक है—चाहे वह तुम्हारी अपनी सुरक्षा तुम्हारे चारों ओर के संसार की, दूसरे प्राणी जो उस संसार में रह रहे हैं उनकी सुरक्षा के लिए हो, कोई भी व्यक्ति यदि वह बुद्धिमान् है तो कभी ऐसी सम्मति नहीं देगा कि वह इस प्रकार अपनी प्रकृति की अभिव्यक्ति देता रहे। उससे अनकही समस्याएँ उठ खड़ी होंगी। इसीलिए मनुष्य को विवेकी होना चाहिए। आत्माभिव्यक्ति में हमारी पूर्ण प्रकृति अपनी अच्छी-बुरी, उदासीन और गुण-दोषपूर्ण प्रवृत्तियों के रूप में आवृत हो कर प्रयुक्त नहीं हो सकती।

दूसरी बात यह है कि हमें अपने अन्दर झाँक कर समझने की कोशिश करनी चाहिए कि आत्मन् शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है? जब वे कहते हैं कि अभिव्यक्ति को नकारना नहीं चाहिए, अभिव्यक्ति को दबाना नहीं चाहिए, इसको अवसर देना चाहिए और तभी तुम केवल सामान्य सन्तुलित व्यक्ति हो सकते हो, तब फिर निषेधात्मक अभिव्यक्ति का कोई नकारात्मक परिणाम सामने नहीं आयेगा।

आत्मन् का क्या अर्थ है? यदि सौभाग्य से तुमने किसी महान् गुरु की प्रेरणादायक उपस्थिति या उनके सम्पर्क में आने का, ऊपर उठने का, जीवन का रूपान्तरण करने के लिए महान् गुरु की आनन्ददायक शिक्षाएँ पाने का अवसर प्राप्त कर लिया है, तो तुमने आत्म-तत्त्व को अपनी उच्च प्रकृति के सायुज्य से स्वयं को पहचानना शुरू कर दिया है। वह विकसित हो कर अभिव्यक्त हो, इसके लिए आवश्यक है कि अपने अस्तित्व के निम्न पक्षों को रोक कर रखा जाये। ऐसी परिस्थितियों में निम्न वृत्तियों को समझदारी से अंकुश में लाने पर अपने उच्च व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की नकारात्मक प्रक्रिया नहीं होगी। वह सकारात्मक होगी। यह स्वयं का स्वयं के प्रति विरोध नहीं कहा जायेगा।

इसके विपरीत, तुमने इस विचार को अस्वीकार कर दिया है कि निम्न प्रवृत्तियों का समावेश तुम्हारे भीतर है, आत्म-संयम अपरिहार्य, वांछनीय और अमूल्य उपाय हो जाता है। तुम्हारे अपने अस्तित्व के उस आयाम को जिसे पूर्ण आत्माभिव्यक्ति देने के लिए तुमने स्वयं पहचानने का निश्चय कर लिया

है। तुम कहते हो—"मैं यह शरीर नहीं हूँ, इसके साथ अपनी पहचान बनाना बड़ी भारी भूल है। इसलिए यदि मैं उसकी अभिव्यक्ति नकार दूँ, तो मैं अपने लिए आत्माभिव्यक्ति को नकार नहीं रहा हूँ; क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि मैं यह नहीं हूँ।" यह ऐसा ही है कि कुत्ते को फिर से वश में कर लिया हो; नहीं तो वह हानि पहुँचायेगा।

तो आप ऐसी स्थिति में हैं जहाँ आपको यह आभास होने लगता है कि तथाकथित आत्म-निग्रह अपने-आपमें एक अमूल्य तथ्य है, एक अभिन्न तथ्य है जो तुम्हें तुम्हारी मूल प्रकृति की आत्माभिव्यक्ति में उस समय सहायक होता है जब तुम इसके साथ अभिन्न रूप से एक हो जाते हो।

किसी परिस्थिति को तुम्हारा विवेकी मन किस प्रकार समझ पाता है, इस पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है। बाह्य आत्माभिव्यक्ति का अर्थ होगा वास्तविक आत्म-तत्त्व की पूर्ण उपेक्षा, अपने आत्म-तत्त्व को अभिव्यक्ति न करना, जो तुम्हारी उच्चतर प्रकृति है, दिव्य प्रकृति है, जब कि उसी नियम से मन के वशीकरण और आत्म-संयम की तुम्हारी प्रकृति, जो तुम्हारे अस्तित्व के निम्न आयाम हैं, मानो तुम्हारे उच्चतर आत्माभिव्यक्ति की प्रक्रिया के अभिन्न अंग बन जायेंगे। तब उन्हें संयम की प्रक्रिया नहीं करनी पड़ेगी।

किसी प्रकार के असंयम से शक्ति का ह्रास होगा—वह शक्ति चाहे जगत्सम्बन्धी हो अथवा तुम्हारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व की सामर्थ्य शक्ति! हमें परमानन्द की प्राप्ति हेतु प्रचुरता में शक्ति चाहिए, बहुलता में बल चाहिए। अतः अनावश्यक शक्ति-ह्रास रोकने के लिए तुम्हें अपने जीवन को ऐसे अनुशासित करना होगा कि तुम शक्ति-संचय कर सको, शक्ति की रक्षा कर सको जिससे कि आत्म-विश्लेषण की उत्कृष्ट सकारात्मक और निर्माणात्मक प्रक्रिया में यही शक्ति तुम्हें उपलब्ध हो सके। तब प्रस्फुटित (प्रत्यक्ष) आत्म-संयम की उत्पत्ति अथवा ज्ञान-शक्ति स्पष्ट हो जायेगी; क्योंकि वह तुम्हारी सकारात्मक अभिव्यक्ति से युक्त होगी।

कोई भी प्रक्रिया, कोई भी कार्य निरोधी, कष्टकारी और नकारात्मक हो जाता है यदि वह अपने निर्णय के विरुद्ध अथवा प्रकृति के प्रतिकूल किया

जाये। किन्तु उसी कार्य को आत्म-सन्तोष और अपने स्वभाव के अनुकूल, स्वेच्छापूर्वक और विवेक से ग्रहण किया जाये—"यही मैं चाहता हूँ। यही आनन्ददायक है। मैं पूर्णतया इसी को समर्पित हूँ"—तो नकारात्मकता तो बहुत दूर रही, निश्चित रूप से यह सकारात्मक प्रक्रिया होगी। जहाँ पूर्ण मनोकामना संग है, उत्साह है वहाँ नकारात्मकता हो ही नहीं सकती। इसके विपरीत, यह पूर्णरूपेण सकारात्मक है।

पावन व्यक्तियों से सम्पर्क, प्रकाशित करने वाले, प्रेरणा देने वाले शास्त्र ऐसे साधन हैं जिनसे निर्णय लेने वाले के लिए परिस्थिति स्पष्ट और सरल हो जाती है। इस प्रक्रिया में यदि विजय प्राप्त होती है, तो छोटी-छोटी जीत धीरे-धीरे दिन-पर-दिन हमें प्रकाश और मोक्ष की ओर ले जाती है। बहुत पहले महात्मा गान्धी ने कहा था—"मैं यह जानता हूँ कि माउण्ट ऐवरेस्ट पर चढ़ने वाला व्यक्ति उस समय खुशी से झूम उठेगा—नाचेगा, गायेगा, आनन्द मनायेगा, जब वह यह जानेगा कि वह ऐसा पहला व्यक्ति है जो इन ऊँचाइयों पर चढ़ चुका है। लेकिन यह आनन्द उस समय ठण्ढा पड़ जायेगा, जब कोई इसकी तुलना में इससे बड़ी वास्तविक जीत के आनन्द का अनुभव करता है कि उसने आत्मा की ऊँचाइयों पर पहुँच कर अपने मन को जीत लिया है।"

इसीलिए व्यक्ति को विवेकशील होना चाहिए, तभी वह समझ सकेगा उसे कौन-सी दिशा में जाने के लिए कौन-सा कदम उठाना चाहिए। यदि तुम्हारे अन्दर निराशा के भाव हैं और तुम्हें लगता है कि तुम्हारा प्राप्य तुम्हें कभी नहीं मिलेगा, तो तुम्हें चिन्तन करके फिर से विवेक लाने का प्रयास करना चाहिए। यदि कोई नकारात्मक भावना तुम्हारे अन्दर नहीं है, तो निश्चित रूप से धीरे-धीरे तुम प्रगति के पथ पर आगे बढ़ते चले जाओगे। तुम्हारे अन्दर सदा एक प्रकार की विजय की भावना रहेगी। इसलिए बिना कारण के ही ऐसी घोषणाएँ नहीं की गयी हैं—"निश्चित रूप से सबसे महान् विजय आत्म-विजय अथवा स्वयं को जीतने में है।" अन्ततः तुम्हें मुक्ति का वरदान प्राप्त हो जायेगा। अन्ततोगत्वा तुम्हारा जीवन मोक्ष-रूपी मुकुट से अलंकृत होगा।

सच्चाई यह है कि आत्म-संयम और आत्म-अनुशासन की सतत प्रक्रिया से जीत-पर-जीत मिलने का साधन बन जाता है। व्यक्ति अपने-आपको जीतने में कुशल हो जाता है। इसलिए इसके महत्त्व को अच्छी तरह से समझ कर इसे अपने ऊपर लागू करना चाहिए। इस प्रक्रिया में हमें अपनी आन्तरिक सत्ता से मार्ग-दर्शन और सहायता मिलती है। इसलिए आत्म-चिन्तन करके ईश्वर को अपना सर्वोपरि बनाओ।

ईश्वर करे, हम अपनी आत्म-व्यवस्था में कठोरता से लिप्त हो जायें और अन्त में विजयी बनें! ईश्वर करे, परम परमेश्वर का आशीर्वाद और पवित्र गुरु सर्वोच्च सौभाग्य दिलाने वाले गुणों को प्राप्त कराने में तुम्हें समर्थ बनायें!

४७

नव शुभारम्भ का उपयुक्त क्षण

उस सर्वोच्च सत्य को हमारा प्रणाम है जो हमारे उद्‌गम, हमारे मूल आधार, हमारे आश्रय, लक्ष्य, हमारे सर्वस्व हैं, हमारे आदि, मध्य और अन्त हैं। सभी प्राणियों और समस्त सत्ता की निष्पत्ति हैं। वे ही केवल एक सत्य हैं। उन्हें पाने के लिए पूरी शक्ति के साथ संघर्ष करना चाहिए। उस सत्ता को प्रणाम है जिसमें आप सब रहते हैं, जिनमें आपकी गति है, जिनमें आप सभी का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, वास्तविक, सबसे अधिक आन्तरिक आध्यात्मिकता का पूर्ण अस्तित्व है।

तुम्हारा अस्तित्व पूर्णतया परमात्मा में है जो सर्वत्र विद्यमान है और शाश्वत काल से है और अनन्त काल तक उसकी सत्ता रहेगी। हमारा अस्तित्व उसी में है, इसके अतिरिक्त और कोई सम्भावना नहीं हो सकती, क्योंकि वह सर्वदा और सर्वत्र है—यहाँ, अभी, सदा—क्योंकि वह महान् सत्य है। वह आकाश में असीम है, समय में शाश्वत है और समय से परे है। अत: इसके अतिरिक्त और कोई सम्भावना नहीं कि हम उसमें ही स्व-अस्तित्व रखते हैं, उसमें वास करते हैं, उसमें गति करते हैं, उसी से हमारी सत्ता है। भीतर-बाहर वही हमारा सर्वस्व है।

हमारे आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ इसी तथ्य की पहचान से है। इस तथ्य की अनुभूति ही आध्यात्मिक जीवन का अन्त है तथा आध्यात्मिक जीवन का सार इस तथ्य के प्रति जागरूक रहने में है कि सतत प्रयास से ही उन्नति के पथ पर आगे बढ़ा जा सकता है। अन्तत: इस तथ्य के प्रति जागरूकता ही सारी आध्यात्मिक साधनाओं का उद्देश्य है चाहे वह जप हो या प्रार्थनाएँ, ध्यान हो या शास्त्रों का पठन या सत्संग।

जब कोई अपने अस्तित्व के इस तथ्य को, इस सत्य को पहचानना आरम्भ कर देता है, तब व्यक्ति में आध्यात्मिक जागरूकता आती है। जब कोई इसे पाने के लिए संघर्ष करना आरम्भ करता है, तो व्यक्ति का आध्यात्मिक जीवन सक्रिय हो जाता है और वह प्रगति करता है। जब व्यक्ति इसका अनुभव करके इस अनुभव में स्थित हो जाता है, तब उसका आध्यात्मिक विकास चरम बिन्दु पर पहुँच जाता है।

''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'' (ईश्वर ही केवल सत्य है, संसार असत्य है)। यही आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ है। ब्रह्म-अभ्यास, ब्रह्म-चिन्तन ही आध्यात्मिक जीवन का सार है। **''सर्वं खल्विदं ब्रह्म''** (निश्चित रूप से यह सब ब्रह्म है)। यही आध्यात्मिक जीवन की उपपत्ति है।

जब तक आत्मा एकाएक यह नहीं पहचानता कि जो-कुछ भी वह देखता, सुनता, स्वाद लेता, सूँघता, स्पर्श करता, सोचता और ग्रहण करता है, यदि उसमें सत्य की छबि नहीं देखता, तो वह जीवन आध्यात्मिक नहीं है। क्योंकि सब-कुछ परिवर्तनशील है, क्षणभंगुर है, नाशवान् है। यह ज्ञान कि कोई ऐसा भी है जो इस सबसे परे है, सबके पीछे है, परिवर्तनशील के पीछे सदा अपरिवर्तनशील, यह ज्ञान होने पर उसमें और अधिक ज्ञान प्राप्त करने की प्यास जागृत हो जाती है, उसे समझ लेने के बाद वह उन्हें ही खोजता है, उनके बारे में प्रश्न-परिप्रश्न करता है, फिर उनके लिए अनुसन्धान आरम्भ कर देता है।

परम पूज्य गुरुदेव की आध्यात्मिक सत्ता को सप्रेम नमन! जागृति, प्रकाश, आध्यात्मिक साहित्य में प्रकाश, व्यावहारिक आध्यात्मिक साहित्य के क्षेत्र में गुरुदेव ने एक विशाल संघ का निर्माण किया है। हमें उस महान् सत्य का ज्ञान करने हेतु विवश करते हुए, उस सत्य के प्रति जागृत रहने के लिए प्रयासरत रहने हेतु हमें उत्कट रूप से प्रेरित करने के साथ-साथ हमारी सहायता करते हुए, ज्योतिर्मय पथ प्रकाशित करते हुए और सदा आनन्द में रहने के लिए अपने महान् अनुभवों की हम पर वृष्टि करते हुए उन्होंने (दिव्य जीवन) संघ की नींव रखी। वर्तमान सार्वभौम मानव-समाज के मध्य वे अपने प्रेरक, तेजस्वी

और बौद्धिक शिक्षाओं, उपदेशों के रूप में कार्य कर रहे हैं। वे हमारे मध्य विद्यमान हैं, सक्रिय हैं और स्व बौद्धिक शिक्षाओं के माध्यम से जीवन्त रूप से यहाँ कार्य कर रहे हैं। ज्ञान-रूपी प्रकाश-प्राप्त ऋषि-मुनियों का अस्तित्व आज भी है, शक्तिशाली रूप से है, जो हमें उठाने और जागृत करने के लिए और आत्मज्ञान प्रदान करने के लिए हमें झकझोर रहे हैं। वे उपनिषदों के ज्ञान के रूप में, उपनिषदों की शिक्षाओं के रूप में हमारे भीतर कार्य कर रहे हैं, इसीलिए वे अमर हैं। अपने नाम और रूपों में वे अमर हो गये हैं। रूप से वे लुप्त हो गये हैं; पर आध्यात्मिक प्रकाश के रूप में, आध्यात्मिक शक्ति के रूप में, जगाने वाली शक्ति के रूप में वे निश्चित रूप से हमारे मध्य हैं, हमारे बीच में कार्य कर रहे हैं और जो उनसे प्रेरणा लेना चाहता है, जो उस पथ में प्रवेश करना चाहता है जिससे लक्ष्य की प्राप्ति हो सके, उस प्रत्येक सच्ची साधक आत्मा के लिए सदा वे उपलब्ध हैं। यह सत्य है। वे अमर हैं। वे समय-सीमा से परे हैं। इसलिए उन्हें नित्य-सिद्ध भी कहते हैं (मानव-जाति के लिए शाश्वत आध्यात्मिक शिक्षक)।

विजयादशमी के बाद का पहला दिन होने के कारण आज महान् श्रीगणेश करने का, नव शुभारम्भ करने का दिन है, आध्यात्मिक जीवन में पूरी लगन के साथ प्रवेश करने का दिन है। आज का दिन हमारी साधना की प्यास बुझाने के लिए संघर्ष करने हेतु हम सबमें एक नयी शक्ति-संचरण होने का दिन हैं। आध्यात्मिक जीवन की इन सच्चाइयों के लिए, गहराई से प्रवेश करने के लिए, उसे पाने के लिए तुम सभी के लिए निश्चित रूप से यह उचित समय है। जो दिखायी दे रहा है, वही सत्य है, वही वास्तविकता है—जब तक हम अपनी इस भूल से छुटकारा नहीं पा लेते और इस तथ्य के प्रति जागरूक नहीं हो जाते हैं कि जो नहीं दिखायी दे पा रहा है, वह ही महान् सत्य है, वही तथ्य है। जब तक यह नयी जागरूकता उत्पन्न नहीं की जाती, हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन का आधार नहीं बन जाती, उससे हमारे आध्यात्मिक जीवन की विश्वसनीयता में अभी भी अभाव ही है। हमारा आध्यात्मिक जीवन विशुद्ध होने के नाते उसमें अभी भी अभाव ही रहेगा।

जब बाह्य जगत् ही स्थूल सत्य के रूप में अनुभव किया जाता है, महत्त्वपूर्ण माना जाता है, तब आन्तरिक स्थिति कहीं दूर की वस्तु समझी जाती है, सत्य की जगह उसे कल्पना की वस्तु मान लिया जाता है। यह ठीक नहीं है। जैसा होना चाहिए, वह वैसा नहीं है। इसलिए उसके महत्त्व को समझ कर, आभ्यन्तर जागरूकता ला कर, नयी चेतना के साथ रह कर, सच्चे आदर्शों की भावना जगा कर अपने अन्दर परिवर्तन लाने की आवश्यकता है, और यही शुभ मुहूर्त है।

यदि कोई अनुभवी परिपक्व आध्यात्मिक व्यक्ति निश्चय करता है कि आज से ४० दिन तक अपने सारे सम्बन्धियों से कट कर एकान्त-वास का आरम्भ करके मौन रह कर, गहन ध्यान करके वह आन्तरिक आध्यात्मिक साधना करेगा। हो सकता है, कोई व्यक्ति लगभग पचास साल से आध्यात्मिक जीवन में रह कर यह मान चुका है कि अच्छा निर्णय करने की, नया प्रारम्भ करने की और आध्यात्मिक साधना के व्यावहारिक पक्ष में प्रवेश करने की यही शुभ घड़ी है। उनके बारे में क्या कहा जाये जो उनकी अपेक्षा आध्यात्मिक जीवन में नये हैं, कच्चे हैं और कम हैं, उनकी उत्सुकता कितनी अधिक होनी चाहिए। प्रत्येक अवसर का लाभ उठाने के लिए, उनके आध्यात्मिक जीवन के अन्दर नया उत्साह जगाने के लिए परिस्थिति अपने-आप उपस्थित हो जाती है। महान् शक्ति के साथ आगे बढ़ने के लिए, साधना की गहराई में प्रवेश करने के लिए ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता अधिक है। पूर्ण घट में पानी डालने की कोई आवश्यकता नहीं है; पर आधे या रिक्त घड़े में पानी भरने की आवश्यकता है।

गुरुदेव शिवानन्द जी जीवन-भर, १९६० तक एकादशी के दिन उपवास किया करते थे। केवल १९६० में दिल्ली के एक प्रसिद्ध डाक्टर जो भारत के राष्ट्रपति के भी व्यक्तिगत डाक्टर थे, उन्होंने गुरुदेव से प्रार्थना की कि मधुमेह के कारण वह व्रत-उपवास करना छोड़ दें। इस प्रकार अपने जीवन के अन्तिम कुछ वर्षों पहले तक उन्होंने इस अनुशासन का पालन किया। जब ऐसी महान् आत्मा भी अस्वस्थ होने का कारण जानते हुए भी उस अनुशासन पर टिकी

रही, इससे हमें यह संकेत मिलता है, यह निर्देश मिलता है कि हमें उनका अनुसरण करना चाहिए, उनसे सीखने का प्रयास करना चाहिए। हमारे आध्यात्मिक जीवन में हमें उत्सुक और व्यावहारिक होना चाहिए। यह हमारे लिए बड़ा गम्भीर प्रश्न है।

आज के इस शुभ दिन ईश्वर करे, प्रभु-कृपा और गुरुदेव की असीम आशीष और मंगल कामनाएँ, हमें आध्यात्मिक जीवन के सार को समझने के योग्य बनायें तथा हमें आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करें जिससे हम सर्वोच्च लक्ष्य की ओर धीरे-धीरे आगे बढ़ सकें। ईश्वर करे, असत् से सत् की ओर, तमस् से ज्योति की ओर, मृत्यु से अमृतत्व की ओर तथा नित्य जीवन की ओर ऊर्ध्वारोहण करते हुए हमारे जीवन सफलता प्राप्त कर आनन्दमय हो जायें!

४८

प्रश्न करो : मैं किस लिए जी रहा हूँ?

ईश्वर करे, सर्वशक्तिमान् दैवी कृपा की वर्षा तुम पर भरपूर हो! अब इन नौ दिनों की देवी माँ की आराधना के उपरान्त तुमने एक नये चरण में प्रवेश कर लिया है। यह अन्धकार पर प्रकाश की, आसुरी शक्ति पर दैवी शक्ति की विजय का आयोजन है।

तुम्हारे अन्दर आत्मोन्नति की ललक होनी चाहिए। तुम सबमें अपना विकास करने की ललक होनी चाहिए। प्रत्येक जागृत और प्रकाशित व्यक्ति की प्रामाणिक पहचान यह होनी चाहिए कि उसमें यह भावना हो कि जीवन स्थिर हो कर रहने के लिए नहीं है, जीवन का तात्पर्य नीरस हो कर लीक पर चलने के लिए नहीं है। एक ही प्रकार की क्रिया करते जाने के लिए एक-रस नहीं है; बल्कि कुछ उपलब्ध करने के लिए है, कुछ सिद्ध करने के लिए है। जीवन का अर्थ सर्वोच्च लक्ष्य, एक उदात्त, एक उच्च लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने का है। इसका अर्थ है—उच्च आदर्श का जीवन। जीवन एक ऊर्ध्वारोहण है। जीवन एक समुत्थान है।

जिन्होंने जीवन पर विचार किया है, वे शीघ्र ही यह जान जाते हैं कि जीवन मात्र शारीरिक प्रक्रिया नहीं है, मात्र मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं है, अशान्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का एक भ्रम नहीं है; अपितु यह एक उच्चतर गति है। यह उच्चतर आध्यात्मिक विकास है। एक बार ज्ञान हो जाये, तो व्यक्ति निरन्तर स्वयं से प्रश्न करता रहता है—"क्या मैं आत्मा की स्वाभाविक स्थिति, स्वाभाविक दशा—पूर्णत्व को पुनः प्राप्त करने के लिए (आत्मा के) ऊर्ध्वगमन की प्रक्रिया में संलग्न हूँ?"

इसलिए व्यक्ति को अपने-आपसे पूछते रहना अच्छा है कि 'मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है, मेरे कौन-से लक्ष्य हैं, मुझे क्या पाना है, यह जीवन

किसलिए है?' धीरे-धीरे बार-बार इस प्रकार से पूछने पर लक्ष्य की ओर चलना आरम्भ हो जाता है, तुम्हारे सामने तुम्हारा लक्ष्य स्पष्ट दिखायी देने लगता है। धीरे-धीरे पर स्थिर गति से, तुम दृढ़ता के साथ उसमें स्थित हो जाते हो कि 'मेरे जीवन का वास्तविक उद्देश्य यही है, मैं इसी की आकांक्षा कर रहा था, इसे पाना चाहता हूँ।'

''जीवन का उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार है। जीवन का लक्ष्य भगवत्साक्षात्कार है।'' यह कहना बहुत सरल है। यह तुम्हारा चरम लक्ष्य हो; पर तुम्हें इस संसार में मनुष्यों और वस्तुओं के बीच में रहना है जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभव होंगे, तरह-तरह की घटनाएँ घटेंगी। अत: इस परिवेश में, इस वातावरण में, जहाँ आप दिन-प्रतिदिन नित्य परिर्तनशील प्रक्रिया में अवगुण्ठित हैं, अपना जीवन आप कैसे बितायेंगे? यहाँ आपका लक्ष्य क्या है ?

सर्वप्रथम हमें तात्कालिक प्रमाण (विस्तार) को निश्चित करना है जिसका ज्ञान हम रखते हैं, जिसमें हमें प्रवेश करना है, जिसका प्रत्यक्षीकरण करके दिन-प्रतिदिन उसी का अंश बनना है। प्रथम, इसका समाधान करो। इसके पश्चात् तुम बड़े विषय ले सकते हो जो स्पष्ट दृष्टिगत और ज्ञात परिस्थिति में होने की अपेक्षा विचार में अधिक है और वह स्थिति सूर्योदय से पूर्व तुम्हारे समक्ष अनावृत होती है। प्रत्येक प्रात: जागने पर तुम्हें कुछ-न-कुछ कार्य करना होता है। तो सर्वप्रथम यह निश्चय करो कि वह कार्य कैसे करना है—किस सीमा तक और किस उद्देश्य को ले कर करना है।

नित्य प्रति के जीवन में वह कौन-सा अभिप्राय (उद्देश्य) है जो तुम्हें संसार में लिप्त होने को प्रेरित करता है? उद्देश्य क्या है? यहाँ कैसे रहना चाहिए? उसके पश्चात् हम ब्रह्मज्ञान, मोक्ष, भगवत्साक्षात्कार आदि का चिन्तन करते हैं। विचारधारा स्पष्ट हो, इसके लिए अत्यधिक अध्ययन अनिवार्य है। वह अवधारणा स्पष्ट हो, सुचारु रूप से बुद्धिगत हो और पूर्ण रूप से समझ में आ गयी हो, इससे पूर्व गहन चिन्तन और ध्यान आवश्यक है।

किन्तु यहाँ एक तात्कालिकी है और यावत् पर्यन्त इसे भली प्रकार समझ न लें, सही कोण से इसे समुचित रूप से देख न लें और यह जीवन जीने का एक स्पष्ट स्वरूप व्यवस्थित न हो जाये, हम सदा फिसलते रहेंगे अथवा ठोकर खाते रहेंगे, हमारे पाँव मानो बँधे रहेंगे। जो तत्काल करने का है, वह पहले स्पष्ट हो, उसका अच्छा ज्ञान हो और असन्दिग्ध रूप से निश्चित हो।

इसी सन्दर्भ में हमारी संस्कृति और हमारे गुरु जनों ने बहुत ज्ञान और मार्गदर्शन दिया है। गुरुदेव ने कहा—"कम बोलो, मीठा बोलो, प्रेम से बोलो।" दिन-प्रतिदिन जैसे-जैसे तुम व्यवहार में प्रवेश करते हो, मधुर और नम्र बोलने वाले व्यक्ति बनो। गुरुदेव ने कहा—"भले बनो। दयालु बनो।" दयालुता तुम्हारा आदर्श-वाक्य हो। दयालु व्यक्ति बनो। दयालु व्यक्ति तात्कालिक न्याय में नहीं फँसता। वह दानी होता है, सहनशील होता है। वह बुद्धिमानी से समझने का प्रयास करता है। वह वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति शीघ्र ही निर्णय नहीं देता। वह समझने का प्रयास करता है। 'कदाचित्, इस व्यक्ति की कोई समस्या होगी'—ऐसा विचार करके वह उसके अनुरूप तर्क करता है। इसीलिए दयालु व्यक्ति दानी और प्रेमी होता है। वह भुलाना और क्षमा करना जानता है और समझने का प्रयास करता है।

अत: गुरुदेव ने जीवन के लक्ष्य हमारे समक्ष रखे हैं। दिन-प्रतिदिन जीवन में अधिकाधिक प्रगति करते हुए हमें दयालु, सहानुभूतिपूर्ण, भद्र व्यक्ति बन कर रहना चाहिए। सेंट फ्रांसिस ने एक महान् मन्त्र हमें दिया है—"हे भगवन्, मुझे ऐसी शक्ति दो कि मैं सहानुभूति की अपेक्षा न करूँ, अपितु दूसरों के प्रति सहानुभूति रखूँ। मैं दूसरों को समझने का प्रयास करूँ। मैं प्रेम की अपेक्षा न करूँ, प्रत्युत दूसरों को प्रेम बाँटूँ; क्योंकि देने में ही हम प्राप्त करते हैं।" यह उत्कृष्ट जीवन है जिसमें लेने, लेने, लेने की अपेक्षा देना, देना, देना ही अच्छा लगता है।

हम महापुरुषों से ऐसा उच्च ज्ञान प्राप्त करने लगते हैं जिन्होंने न केवल अपने शब्दों से, अपितु अपने व्यक्तिगत दृष्टान्त से ऐसा पथ प्रदर्शित किया। यदि उन्हें हम अपने जीवन में उतारें, उनके प्रकाश में जियें, तो अकस्मात् एक

दिन ऐसा आयेगा, जब हम समझने लगेंगे कि स्वयं को प्रशिक्षित करना, सुसंस्कृत करना, अपना विकास करना और स्वयं को परिष्कृत करना ही जीवन का एक गम्भीर कार्य है जिससे हम एक आदर्श व्यक्ति बन सकें; परोपकारी, दयालु, सहानुभूतिपूर्ण, बुद्धिमान्, सहनशील और सहायक बन सकें। वस्तुत: यही एक लक्ष्य है जिसके लिए हमें जीना चाहिए। केवल इसी लक्ष्य को प्राप्त करने का हमारा प्रयास होना चाहिए।

नमक के समान बनो, बिना नमक के सब फीका है, कुछ भी स्वादिष्ट नहीं बन सकता। मध्य एशिया के महान् गुरु जीसेस ने अपने अनुयायियों से कहा था—"तुम पृथ्वी पर नमक के समान हो। यदि नमक ने अपना स्वाद खो दिया, तो वह अच्छा नहीं रहेगा, स्वादिष्ट न रहने के कारण उसे फेंक दिया जायेगा।" इसलिए हमें सदा ऐसा बनने की कोशिश में रहना चाहिए, जिससे दूसरों का जीवन सुखी हो सके।

हमें दिन-प्रतिदिन ऐसा जीवन जीना चाहिए कि धीरे-धीरे हम अच्छे व्यक्ति बन जायें, अधिक-से-अधिक आदर्श मानव बन जायें, जिससे कि हमारा जीवन और अच्छा बन सके। हम वास्तविक आनन्द उठा सकें; प्रेम, मधुरता और समन्वय के साथ रह सकें, यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

सारा संसार शक्कर की चाह करता है; क्योंकि जिसमें भी उसे डाला जाता, है वह मीठा हो जाता है। सारा संसार नमक की चाह करता है; क्योंकि जिसमें उसे डाला जाता है, वह स्वादिष्ट हो जाता है। इसी प्रकाश में हमें अपने बारे में सोचना चाहिए, अपने व्यक्तित्व को देखना चाहिए। हमें शक्कर और नमक दोनों बनना है। हम अभी तक ऐसे नहीं हैं; किन्तु ऐसा प्रयास करना चाहिए। यह बड़े साहस का कार्य है, यह महान् सौभाग्य है, यह जीवन का बड़ा गम्भीर कार्य है कि स्वयं पर स्वयं कार्य करें और अपने-आपको सुगन्ध का केन्द्र बना दें। एक विद्वान् के शब्दों में—"सुन्दर वस्तु सदा आनन्द प्रदान करती है।" इसे अपना लक्ष्य बनाओ। इसे पाने का प्रयत्न करो। इसे पाने के लिए आगे बढ़ो। तभी जीवन अच्छी तरह से रहने के योग्य हो जायेगा, जीवन व्यर्थ नहीं जायेगा।

दूसरों को मेरे साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए, दूसरों को मुझसे ऐसा कहना चाहिए, दूसरों को मेरे साथ ऐसा करना चाहिए, ऐसा सोचने के स्थान पर मुझे ही दूसरों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, मुझे ही दूसरों से ऐसा बोलना चाहिए। जो-कुछ भी मैं दूसरों से चाहूँ, मुझे स्वयं ही पहले वह प्रक्रिया अपने-आप शुरू कर देनी चाहिए जिससे दूसरों में अपने-आप ही इस प्रकार की भावना जागृत हो जाये। सामाजिक वातावरण में मुझे ही पहल करने दो, इसी के माध्यम से मैं अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आगे बढ़ सकूँ।

प्रत्येक व्यक्ति जिसका सामना प्रतिदिन करता है, यह वह महान् अवसर है। अत: यह एक रुचिकर गहन परीक्षण है, अत्यन्त रुचिकर कार्य है जिसे तुमने पूर्ण ज्ञान से, विशेष लावण्य से, महान् सच्चाई से, समाहित चेतना (एकाग्रता) से, अत्यन्त उत्साह से और सकारात्मक, सृजनात्मक, निर्माणात्मक और निश्चयात्मक हृदय से करना है—"परमात्मा ने मुझे शरीर (जीवन) दिया है। मैं इस पर कार्य करूँ और सदा के लिए इसे सौन्दर्य और आनन्द की वस्तु बना दूँ। मैं इस जीवन पर कार्य करूँ जिससे यह अधिकाधिक पूर्ण और विशिष्ट बन कर परमात्मा की मेरे प्रति योजना और इच्छा के अनुरूप हो जाये।" यह जीवन है—पूर्णत्व की ओर गतिमान होते हुए स्वयं पर नित्य कार्य करते रहना!

अपने-आपसे पूछो— मेरा जीवन किसलिए है? अपने-आपको सदा के लिए मानव-जाति की अनोखी एक सुन्दर और आनन्द की वस्तु बनाने का प्रयास करना चाहिए। इसीलिए मेरा जीवन है। यही जीवन का उद्देश्य है। सब-कुछ स्पष्ट है। तुम्हारे सामने एक लक्ष्य है। तुम्हारे अन्दर स्पष्ट समझदारी है कि तुम्हें क्या करना चाहिए। इसे शीघ्र ही प्राप्त करो। ईश्वर का आशीर्वाद तुम्हें प्राप्त हो !

गुरुदेव तुम्हारे जीवन-पथ को अपने ज्ञान की शिक्षाओं से प्रकाशित करने के लिए पहले से सहायक रहे हैं। यह शिक्षाएँ पहले से तैयार करके दी गयी हैं। तम्हें उन्हें पहचान कर, उसी रूप में स्वीकार करके उनका पालन करना

सब-कुछ स्पष्ट है। कहीं कोई सन्देह नहीं है, कहीं कोई भ्रान्ति नहीं है, कहीं कोई धुँधलापन नहीं है, कोई शंका नहीं है। यदि तुम जीवन पर गहराई से चिन्तन करो और समझदारी से अपना निरीक्षण करोगे, तो अपने-आप सब स्पष्ट हो जायेगा। अपने जीवन को देखो और सन्तों के जीवन को देखो कि वे किस प्रकार अपना जीवन जीते हैं। ईश्वर के अच्छे मनुष्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित करो।

विजय-पर्व के गरिमामय दिवस के पूर्व-दिवस, नव शुभारम्भ की देहलीज पर हम खड़े हैं। आगे आने वाले पावन पर्व दीपावली की ओर हम आगे बढ़ रहे हैं। यह अन्धकार पर प्रकाश की विजय है। यहाँ अँधेरे का कोई काम नहीं है। बस, चारों ओर प्रकाश-ही-प्रकाश है!

४९

प्रकाश में जियो

तेजस्वी पुत्रो! अनादि काल से जो पवित्र आह्वान हमें प्राप्त हुआ है, वह है : "**तमसो मा ज्योतिर्गमय**"—हे प्रभु, हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। हम अन्धकार की ओर प्रवेश न करके प्रकाश की ओर बढ़ें। ईशोपनिषद् में हमें स्पष्ट रूप से इसका ज्ञान दिया गया है। हमें सदा प्रकाश का सामना करना चाहिए, हमें प्रकाश में रहना चाहिए; क्योंकि हम प्रकाश के हैं।

यदि हम प्रकाश को अपना सर्वोच्च लक्ष्य नहीं बनायेंगे, यदि हम अन्धकार से परे सारे प्रकाशों के प्रकाश, उस परमात्मा के भक्त नहीं बनेंगे, तब भय यह है कि हम अन्धकार से और अधिक अन्धकार की ओर बढ़ते जायेंगे। "**अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते**" (जो केवल अविद्या की उपासना करते हैं, वे घोर अन्धकार में गिरते हैं)। जो अपना ध्यान उस ओर लगाते हैं जो क्षणभंगुर है, अनित्य है, जो शाश्वत सत्य नहीं है, वे गहन अन्धकार की ओर जाते हैं। यदि हम अपने जीवन को अविद्या की ओर प्रवृत्त करते हैं, उससे केवल हमारा अहंकार की विकसित होता है। हम बाह्य स्वरूप को सत्य समझने की भूल करके गहनतम अन्धकार में प्रवेश करते हैं।

अविद्या की उपासना करो या अपरा विद्या की दोनों में ही धोखा है, दोनों ही संकट से भरे हुए हैं। दोनों ही अँधेरे से गहनतर अँधेरे की ओर ले जाने वाले पथ हैं। इसलिए सदा परा विद्या की, परम ज्ञान की कामना करो जो तेज प्रदान करती है, जो ज्योति प्रदान करती है और मोक्षप्रद है—यही हमारा जीवन होना चाहिए। हमारा जीवन ऐसा होना चाहिए , जिसमें हम सदा प्रकाशों-के-प्रकाश की ओर आगे बढ़ते जायें जो अँधेरे से परे है। उस क्षेत्र को प्राप्त कर लेने से व्यक्ति कष्ट, मृत्यु और पुनर्जन्म के साम्राज्य में फिर लौट कर नहीं आता। "**यद्‌ गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम**" (जहाँ जा कर फिर नहीं लौटते, वही

मेरा सर्वोच्च धाम है)। इसे अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए। उस पर चिन्तन करना चाहिए, उस पर ध्यान करना चाहिए और उसे प्राप्त कर लेना चाहिए।

इसीलिए हम प्रार्थना करते हैं कि हमारे अन्त:करण में व्याप्त अविद्या के अँधेरे से प्रकाश की ओर जाने के लिए हमारी बुद्धि को प्रकाशित कर दो। यह हमें प्रतिदिन स्मरण दिलाने के लिए है कि हममें सदा अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने की ललक होनी चाहिए। कदाचित् यह हमें याद दिलाने के लिए है कि अपने महान् लक्ष्य को कभी भूलो मत, सदा अपने समक्ष इस महान् लक्ष्य को रखो कि हमारे बुद्धिशील पूर्वजों ने दीपों के उत्सव दीपावली की कल्पना की थी, जहाँ अमावास्या (नव-चन्द्र की अँधेरी रात) को कोटि-कोटि दीप जला कर, हिमालय से ले कर कन्याकुमारी तक प्रकाशित कर दिया जाता है। यदि तुम उपग्रह से नीचे की ओर देखो, तो समस्त भारत एक महान् प्रकाश-पुंज दिखायी देगा। यह हमें सदा स्मरण दिलाता रहता है कि हमें अपना जीवन निरन्तर अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने में व्यतीत करना है और स्वयं को दिव्य प्रकाश का जीता-जागता रूप बना लेना है।

जैसा कि भगवद्‌गीता में भगवान् स्वयं कहते हैं, यदि वह परम ज्योति स्वरूप परमात्मा है और हम उसके अंश हैं, तो फिर हम भी कुछ कम मात्रा में परम ज्योति हैं। हम अपने मौलिक रूप में अन्तर्ज्ञान का प्रकाश हैं। हमारी वास्तविक पहचान प्रकाश है, अन्धकार नहीं। हमारी वास्तविक पहचान प्रदीप्ति की है, धुँधलेपन की नहीं। हमारी वास्तविक पहचान चमकने की है। हमारी वास्तविक पहचान है हमारा तेज।

इसलिए हमें अपने अन्दर इस चेतना के प्रकाश को ज्योतित करके अँधेरे के लिए प्रकाश-दीप के समान हो जाना चाहिए। महान् प्रकाशित सन्त भगवान् बुद्ध ने जाते-जाते यह उद्‌बोधन दिया था—"ओ भिक्षुओ! तुम सब स्वयं के लिए प्रकाश बनो और दूसरों के चरणों के लिए दीप बनो।"

हमं पुन: इस घोषणा की पुनरावृत्ति करते हैं। हमें फिर से इस प्रार्थना को अपने अन्दर एक विशेष जागरूकता के साथ जगाना है: **"तमसो मा ज्योतिर्गमय"**—हमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ, परिश्रम के साथ संघर्ष

करना चाहिए जिससे हम सदा अपने-आपको दिव्य प्रकाश की प्रदीप्ति का एक चमचमाता हुआ केन्द्र बना दें, उदात्त चरित्र और अच्छे आचरण का केन्द्र बना दें, दिव्य रूप से रहने वाले जीवन का जागृत आध्यात्मिक, जागृत आध्यात्मिकता की गतिशीलता के प्रकट रूप का केन्द्र बना दें। अँधेरे से घिरे हुए आधे से अधिक हमारे संसार ने ईश्वर को त्याग दिया है, शास्त्रों को अन्धविश्वास कह कर त्याग दिया है और मानव की सर्वोच्च प्रकाश पाने की ललक को त्याग दिया है। उसके लिए इसे प्राप्त करने की बड़ी आवश्यकता है। इससे हट कर उसने सुखवाद की भावना को अपना लिया है कि खाओ, पियो और मौज करो; इच्छाओं की पूर्ति, इन्द्रियों का भोग करके सुखमय जीवन जिओ।

यह महान् अज्ञानान्धकार है। पृथ्वी पर जीवन के अर्थ, जीवन के मूल उद्देश्य के प्रति पूर्ण भ्रान्ति के कारण हम विपरीत दिशा में सिर के बल अवगाहन करते हैं। परिणामतः सुख की खोज में आचार-व्यवहार में अन्धानुकरणवश फैले अज्ञान और भ्रम मानव-समाज में, इस धरा पर सर्वत्र देखने को मिल रहे हैं।

सारे मानव-जगत् में फैले हुए अन्धकार के लिए क्या तुम प्रकाश नहीं बनोगे? क्या तुम्हें मिली हुई महान् सुविधा का तुम लाभ नहीं उठाओगे? **“महापुरुष संश्रयः”** (महान् सन्तों द्वारा रक्षित सहायता जो तुम्हें प्राप्त है)। जिसे ईश्वर ने तुम्हें आशीर्वाद-स्वरूप प्रदान किया है, उससे आप सभी चमकते हुए प्रकाश बन जाओ। विनय के साथ दूसरों के चरणों के लिए प्रकाश-दीप बनने का प्रयास नहीं करोगे क्या? अपने अन्दर के प्रकाश को जगाओ तथा अपने मन, वचन और कर्म के माध्यम से उसे प्रकाशित होने दो। इस प्रकार अपने जीवन को उपयोगी और यशस्वी बना कर ऊपर उठते हुए पूर्ण प्रकाश से प्रकाशित, आध्यात्मिक चेतना, दिव्य चेतना से प्रकाशित व्यक्ति बन जाओ।

यही लक्ष्य है। इसी के लिए संघर्ष करो। यह तुम्हारे लिए एक बड़ी सुविधा है तथा तुम बड़े भाग्यशाली हो कि उसे प्राप्त करने के लिए तुम संघर्ष कर

रहे हो। तुम धन्य हो। इस सुविधा का लाभ उठाओ। इस स्वर्णिम अवसर का लाभ उठाओ। इस परम सौभाग्य का लाभ उठाओ। अँधेरे से मुँह मोड़ कर प्रकाश की ओर जाओ।

अपने जीवन को दिव्य प्रकाश-पुंज बना दो—"**तमसो मा ज्योतिर्गमय।**" स्वयं को भास्वान प्रकाश-पुंज बना दो। अपने लिए प्रकाश बनो। दूसरों के चरणों के लिए दीप बनो (उन्हें सत्पथ प्रदर्शित करो)। अपना जीवन दिव्य गुणों के प्रकाश से भर दो, यह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यही परम पूज्य, परम प्रिय गुरुदेव का साररूप में सन्देश है। इसी प्रकाश को धारण करो, इसी में जिओ और दूसरों को प्रकाश दो।

५०

तुम प्रकाश हो

दो दिन पहले ३० अक्तूबर को गुरुवार था। प्रत्येक गुरुवार को गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी के एक वरिष्ठ शिष्य की यह इच्छा रहती थी कि वह जहाँ कहीं भी हो, मुझसे बात करके एक छोटा-सा सत्संग कुछ क्षणों के लिए कर ले। उस दिन गुरुवार की रात दस बजे आशीर्वाद पाने के लिए टेलीफोन आया।

इन अर्थों में वे वरिष्ठ शिष्य थे कि १९५९ में पहले पत्राचार के माध्यम से वे गुरुदेव के सम्पर्क में आये। तदुपरान्त १९६२ के आरम्भिक दिनों में गुरुदेव से व्यक्तिगत रूप से उन्हें मन्त्र-दीक्षा का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। चार-पाँच लोगों का उनका एक समूह था। सभी में अब तक गुरुदेव के प्रति निष्ठा है तथा सक्रिय रूप से आध्यात्मिक साधना में रत हैं।

जब उन्होंने गुरुवार की रात में फोन किया, उन्होंने आशीर्वाद माँगा कि प्रकाश प्राप्त करने के लिए उन्हें सहायता चाहिए। वह चाहते थे कि मैं उन्हें प्रेरित करूँ; क्योंकि दीपावली की रात्रि प्रकाशित होने के लिए सबसे पवित्र रात्रि मानी जाती है। उन्होंने कहा—"सारा भारत कोटि-कोटि दीपों से अन्धकार को दूर कर प्रकाशित हो गया है, जब कि बाहर सब-कुछ चमचमा रहा है, मेरे अन्दर केवल अन्धकार छाया है। मैं अभी तक यही समझता हूँ कि इस संसार में मैं ही एक अभागा हूँ। मैं वास्तव में हूँ ही क्या? उस आन्तरिक उद्‌बोधन का प्रकाश, उस ज्ञान के प्रकाश ने अब तक मेरे अन्दर चमक कर सामने आना प्रारम्भ नहीं किया है।"

तब मैंने कहा, सबसे पहले तुम्हें इस धारणा से मुक्ति पानी है कि अन्तर में कोई प्रकाश नहीं है, वहाँ केवल आध्यात्मिक अन्धकार है, उसी को जला कर, चमक कर अब सामने आना है। मैंने कहा—"यह तुमसे किसने कहा, कौन-से शास्त्र ने तुमसे कहा, कौन-से गुरु ने तुमसे कहा है? क्या मैंने अनेकों बार इसे

नहीं दोहराया है : 'मैं प्रकाश में हूँ। प्रकाश मेरे अन्दर है। मैं ही प्रकाश हूँ?' इस गलत धारणा पर किसलिए चिपके हुए हो? क्यों नहीं उसे अपने मन से निकाल कर फेंक देते कि हमारे अन्दर प्रकाश नहीं है।

''क्या सारे शास्त्रों ने तुमसे नहीं कहा है कि अन्तर में बसने वाली तुम्हारी दिव्यता ही तुम्हारी वास्तविकता है, सारे अन्धकार से परे प्रकाशों का प्रकाश अद्वैत रूप से चमकता हुआ अपनी पूरी भव्यता के साथ ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान की प्रक्रिया में निमग्न हो कर खो जाता है। उनका कोई अस्तित्व नहीं रहता, तीनों का कोई अस्तित्व नहीं रहता। केवल चेतना का अनुभव रहता हैं। वह प्रकाश सभी के हृदयों के अन्दर रहता है। **''ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमस: परमुच्यते; ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्''** (उन प्रकाशों के प्रकाश को अँधरे के प्रकाश के परे कहा गया है : ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता का लक्ष्य सभी के हृदयों में रहता है)।

''तुम संस्कृत के विद्वान् हो, संन्यासी तथा गुरुदेव के वरिष्ठ शिष्य होते हुए तुम मुझसे व्यर्थ का प्रश्न करते हो।'' मैंने कहा—''तुम्हें केवल यह सोचना बन्द करना होगा कि तुम्हारे अन्दर प्रकाश नहीं है। इसे पहचान लो कि तुम्हें प्रकाश प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि तुम स्वयं प्रकाशों के प्रकाश हो। तुम स्वयं ही वह प्रकाश हो जो तुम्हारे सम्पर्क में आता है, उन सभी को तुम अपनी कान्ति प्रदान करते रहते हो। वह करोड़ों प्रकाशों को, करोड़ों मनों को प्रकाशित कर सकती है।

''तुम वही प्रकाश हो। स्थिर हो कर अपने-आपको उस सत्य में स्थित कर दो। उस जागरूकता के प्रति निष्ठा रखो कि 'मेरे अन्दर कहीं कोई अँधेरा नहीं है। मैं ही प्रकाशों का प्रकाश हूँ। दिव्य प्रकाश ही मेरा नाम है, मैं पूरे संसार को प्रकाश प्रदान कर सकता हूँ। मैं जहाँ भी जाऊँगा, अँधेरा दूर हो जायेगा।' इसी सत्य का अभ्यास करो। इसी सत्य में अपने-आपको स्थापित करो। इस तथ्य में निष्ठा रखो। तुमसे यही अपेक्षा है। जहाँ अँधेरा है ही नहीं, उसके लिए मत डरो।''

उन्होंने उत्तर दिया—"आप जो कह रहे हैं, कृपया उसे समझने का आशीर्वाद प्रदान कीजिए।" मैंने फिर उनसे कहा—"तुम फोन पर जो-कुछ सुन रहे हो, वह सब शत-प्रतिशत आशीर्वाद ही है। एक आध्यात्मिक शिक्षक कोई मुद्रा नहीं बनाता, कोई आडम्बर करके आकर्षित नहीं करता, किसी आशीर्वाद की मुद्रा के लिए हाथ ऊपर उठा कर बड़े शान से घोषणा नहीं करता, 'मेरे बेटे, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ।' वह ऐसा नहीं करता। उसका जीवन आशीर्वाद से भरा होता है। वह ही आशीर्वाद है। वह क्या कहता है, वह जो बोलता है, वही आशीर्वाद है। वह जो करता है, तुम उसको जो देखते हो, वही आशीर्वाद है।

"वह चिरस्थायी आशीर्वाद से हट कर कुछ नहीं है, वह जो-कुछ सोचता, अनुभव करता, बोलता, क्रिया करता और जैसे रहता है, वही उसका आशीर्वाद है। इस प्रकार पिछले पाँच मिनट से तुम कितना कीमती आशीर्वाद प्राप्त कर रहे हो, फिर भी तुम उसे पहचान नहीं पा रहे हो।" मैंने कहा—"जो आशीर्वाद तुम्हें प्राप्त है, उसे पहचानने का प्रयास करो। तुम्हारे कान से सुना गया प्रत्येक शब्द केवल तुम्हारे लिए आशीर्वाद ही है। उसे इसी रूप में समझने पर तुम इस प्रकार के अनुचित प्रश्न नहीं पूछोगे।" इसके बाद मैंने कहा—"तुम्हारे लिए मेरा आशीर्वाद है, अब हमें अपनी बात को यहीं समाप्त करना चाहिए। हमारी बातचीत स्थानीय नहीं है, बड़ी दूर से हम बात कर रहे हैं।" मैंने ही कुछ जानकारियाँ लीं और उनसे कहा—"वहाँ सभी को मेरी शुभकामनाएँ देना। इस प्रकार हमारी बातचीत समाप्त हुई।" उन्होंने कहा—"इस दीपावली पर आशीर्वाद दीजिए कि मेरे अन्दर प्रकाश भर जाये।" मैंने उत्तर दिया—"हाँ, तुम ही प्रकाश हो।"

बड़ी जिज्ञासा के साथ दूसरे दिन एक ब्रह्मचारी ने कहा—"कृपया मुझे दीपावली के महत्त्व पर कुछ बताइए, विशेषकर नव-चन्द्र की अमावास्या की रात्रि में हम दीप क्यों जलाते हैं।" इस प्रकार २४ घण्टे में दूसरी बार मुझे दीपावली के महत्त्व की चर्चा करनी पड़ी। मैंने उससे कहा—"सूर्य के सामने

कुछ नया नहीं है। विगत पावन हमारे पूर्वजों ने वैदिक युग में जो घोषणा की थी, उसी का अर्थ है, उसी का महत्त्व है।

''बहुत पहले उन्होंने पुकार सुनी थी जो हमसे कह रही थी—अपनी सुप्तावस्था को झटक दो, वह अवस्था पूरी तरह से अन्धकार में डूबी हुई है जिसमें हमें अपनी सुप्तावस्था का ज्ञान भी नहीं रहता। हम गहरी नींद की अवस्था में अज्ञानावस्था में रहते हैं। सारी मानव-जाति केवल रात के अँधेरे में ही जब प्रकाश नहीं होता, इस प्रकार की सुप्तावस्था में रहता है।

''इसलिए अज्ञान की अवस्था तथा आध्यात्मिक अज्ञान का अँधेरा तभी होता है, जब व्यक्ति अपने प्रति जागरूक नहीं रहता है, यहाँ तक कि वह आत्म-जागृति को भी खो देता है। इसलिए उन्होंने आह्वान किया है कि 'जागो, सुषुप्तावस्था में मत रहो। उठो, जागो और प्रकाश (बोध) प्राप्त करो। उनके पास जाओ जो प्रकाशित हैं, उनके पास जाओ जो पूर्ण रूप से जागृत हैं। उनके पास जा कर पूछो। उनसे कहो, तुम्हारे अन्दर प्रकाश करें। पूर्ण जागरूकता प्राप्त करो। ज्ञानवान् शिक्षक के पास विनय के साथ जा कर ज्ञान प्राप्त करो।'

''**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत**'' (उठो, जागो, श्रेष्ठ पुरुषों के पास जा कर ज्ञान प्राप्त करो)। ''**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।**'' मैंने कहा—''यह ज्ञान तुम्हें तभी मिल सकता है, जब तुम उनके पास ज्ञान प्राप्त करने के लिए जाओगे। यह आह्वान ही भारतवर्ष का प्राण है, भारतीय संस्कृति का प्राण है, आध्यात्मिक भारत का प्राण है और दीपावली का महत्त्व यही है कि तुम्हारे अन्दर जो अन्धकार छाया है, उसे फिर से दूर कर दो, तुम जो सोये हुए हो अपने अज्ञान की नींद को झकझोर कर भगा दो तथा नये सवेरे के प्रकाश को अपने अन्दर ला कर अपने अन्दर पूरी जागृति और सावधानी ले आओ। इसी प्रक्रिया को तुम्हें अपने अन्दर लाने का प्रयास करना चाहिए।

''नये चाँद की सबसे अँधेरी रात अमावस्या के दिन यह दीपावली तुम्हें याद दिलाने के लिए हर वर्ष मनायी जाती है। प्रत्येक वर्ष यह याद दिलाने के लिए आती है कि तुम्हें क्या करना चाहिए—अँधेरे को दूर कर दो, अपने अन्दर

प्रकाश लाओ, रात्रि को दिन में बदल दो। पूर्ण प्रकाश के साथ प्रकाशित हो जाओ। अपने-आपको प्रकाश से भर दो। संसार में रह कर तुम संसार को प्रकाश से भर दो।

''हर वर्ष तुम्हें याद दिलाने के लिए, जिससे तुम कभी न भूल सको, इसीलिए उन्होंने यह आह्वान किया है—भारत भूमि पर उत्पन्न होने वाले उसके प्रत्येक पुत्र और पुत्री को प्रत्येक दिन की प्रार्थना में एक बार ही नहीं, दिन में अनेकों बार उच्चारण करना चाहिए : **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'**—अन्धकार से उठ कर प्रकाश की ओर जाना है। **'असतो मा सद्गमय; तमसो मा ज्योतिर्गमय; मृत्यो मा अमृतं गमय'** (हमें असत् से सत् की ओर ले चलो, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मृत्यु से अमृतत्व की ओर ले चलो)।

''अँधेरे में रहना मरण के समान है। अँधेरे से उठ कर प्रकाश की ओर जाने से ही मृत्यु से ऊपर उठ कर अमर जीवन की ओर आगे बढ़ना है। अँधेरे में रहने के कारण, सत्य को असत्य समझने के कारण भ्रान्ति और माया के जाल में फँसते जाते हैं। अपने अन्दर प्रकाश को जगा कर ही इस माया के जाल से मुक्ति पा सकते हो। भ्रम के जाल को काटने के लिए, नाम, रूप, आकृति का नाश करके पूर्ण रूप से जागृति ले आने पर इनसे परे जो सत्य है—जो उत्पत्ति, स्थिति, पालक सब-कुछ हैं, वही अन्धकार से हमें प्रकाश की ओर ले जाते हैं—**'तमसो मा ज्योतिर्गमय।'**

''आत्मा और चेतना को और अधिक गहराई में ले जा कर उन्होंने उससे आगे यह अनिवार्य बना दिया कि इस महान् मन्त्र का उच्चारण करो जिसकी अन्तिम पंक्ति में सर्वोच्च दिव्य शक्ति से अनुनय-विनय की गयी है । प्रदीप्ति के रूप में उनकी कृपा से हमारे अन्दर जो प्रकाश है, जो हमारी आन्तरिक सत्ता को प्रकाशित करता है, हमारे अन्तःकरण, हमारी बुद्धि, हमारी जागरूकता, हमारे अन्दर छिपे प्रकाश को उद्घाटित करता है, उसे प्रकाश से भर देता है, वह प्रभु हमारी बुद्धि को प्रकाशित कर दे, हमारी आन्तरिक सत्ता को प्रकाशित कर दे—**'धियो यो नः प्रचोदयात्'** (ईश्वर हमारी बुद्धि को प्रकाशित कर दें)।''

इस प्रकार मैंने ब्रह्मचारी से कहा कि तत्त्वत: भारतवर्ष में जन्म लेने वाले मनुष्य धन्य हैं जिन्हें उत्तराधिकार-रूप में जीवन-निर्वाह का ऐसा पथ प्राप्त हुआ है जिसकी यात्रा पूर्ण प्रकाश और मोक्ष पाने के लिए है। हमें उत्तराधिकार-रूप में ऐसी परम्परा प्राप्त हुई है जो हमसे कहती है — "तुम प्रकाश हो। अपने अन्दर उस प्रकाश को जगाओ, उस प्रकाश का बोध करो, सारे अन्धकार से परे, प्रकाशों के प्रकाश को पहचान कर धन्य हो जाओ। इसी उद्देश्य के लिए जियो। इस सर्वोच्च प्राप्ति के अनुभव पाने के लिए ही जियो।"

इसलिए हमें अपने जन्मसिद्ध अधिकार की प्राप्ति करनी चाहिए। हमें अपनी परम्पराओं के प्रति सच्चा हो कर दिव्य जीवन यापन करके महान् प्रकाश की ओर आगे बढ़ना चाहिए। हम अपनी परम्पराओं को नकारने की हिम्मत नहीं कर सकते। इससे विपरीत दिशा में जाने का हमारे पास कोई औचित्य नहीं है। वह न केवल हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, प्रत्युत यह हमारा पवित्र कर्तव्य है, न केवल यह हमारा पवित्र कर्तव्य है, बल्कि यह हमारा सौभाग्य है।

इस प्रकार प्रतिवर्ष हमें स्मरण कराने के लिए हमारे विवेकी पूर्वजों ने इस दीपावली के त्योहार की योजना बनायी जहाँ हम प्रतीक-रूप में अँधेरे को भगाने के लिए, वहाँ प्रकाश लाने के लिए बाहरी क्षेत्र में दीप जलाते हैं और खुशी से झूम उठते हैं। इससे बड़ी खुशी का कारण और क्या हो सकता है, जब हम अपनी नींद से जाग कर अपने-आपको प्रकाश से भर दें। यही सर्वोच्च प्रसन्नता है। ईश्वर करे, हम सभी इसी प्रकार से आनन्द मनायें!

५१

क्या हम सदा उल्लसित रह सकते हैं

दीपावली वर्ष का ऐसा दिवस है जब सर्वत्र प्रकाश-ही-प्रकाश रहता है। इस त्योहार पर पुनर्मिलन और अनुष्ठान होते हैं तथा मनुष्य कुछ समय के लिए अपनी समस्याएँ और अपनी कठिनाइयाँ भूल कर आनन्द मनाते हैं।

प्रश्न उठता है : क्या यह सम्भव नहीं है कि इस प्रकार की, तुम्हारी आन्तरिक सत्ता की मनोवृत्ति निरन्तर बनी रहे? क्या तुम कम-से-कम यह देखने का प्रयास करोगे कि हो सके तो इस मनोवृत्ति को स्थायी बना कर अपने अन्तर्मन को सदा के लिए इसी मनोवृत्ति में स्थापित कर दो जिससे केवल एक ही आनन्द मनाने के स्थान पर वर्ष के बारहों महीने आनन्दित, प्रकाशित, प्रदीप्त और उल्लसित रह सको?

ईश्वर के लिए किसी विशेष दिन के आयोजन की आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि ईश्वर तो हर दिन, हर जगह, सदा हैं ही। हम उनके साथ सदा उल्लसित रह सकते हैं, उनके साथ आयोजन कर सकते हैं; क्योंकि वह तो नित्य सत्ता हैं। वे शाश्वत हैं और सर्वव्यापक होने के कारण उनका अस्तित्व सब कहीं है, हम कभी उनसे दूर नहीं हैं। वे सदा हमारे साथ रहते हैं।

इसी तथ्य, इस महान् सत्य को हमारे पूर्वजों ने अपने-आप समझ कर हमें प्रश्नों के उत्तरों के साथ प्रदान किया है। निश्चित रूप से इस स्थिति को स्थायी बनाना सम्भव है; क्योंकि अन्धकार से परे प्रकाशों-का-प्रकाश वह प्रभु तुम्हारे हृदय में स्थायी, शाश्वत रूप से निवास करता है। वह प्रकाश तुम्हारे अन्दर है। इसलिए यह निश्चित रूप से सम्भव है; क्योंकि शाश्वत सत्ता के अनुरूप रह कर तुम उन्हीं के स्वभाव के समान बन जाओगे। अत: यह सम्भव क्यों न होगा ?

बड़े आश्चर्य की बात है कि इस सम्भावना को हम भूल गये हैं तथा जो असम्भव है, उसकी कल्पना हमने कर ली है। असम्भव, न्यायविरुद्ध तथ्य जैसे

ईश्वर और प्रकाश की अनुपस्थिति की कल्पना कर ली गयी है। यह महान् आश्चर्य है। इस आश्चर्य, इस असम्भव और असम्भव स्थिति का ज्ञान आवश्यक था। अत: उसे भारतीय दर्शनशास्त्र में 'माया' कहा गया है।

अपने स्व के प्रति सच्चा होने के लिए हमें वैसा ही होना चाहिए जैसे हम हैं। इसलिए कान्तियुक्त हो जाओ! अपने जीवन को प्रदीप्त कर दो। जहाँ-कहीं तुम जाओ, वहाँ अँधेरा मत रहने दो। सारी नकारात्मकता अँधेरा है। असीसी के सेंट फ्रांसिस की छोटी-सी प्रार्थना इस तथ्य और इस सत्य की याद दिलाती है : अपने जीवन को ऐसा तेजस्वी द्युतिमान बना दो कि मानव-जीवन-चक्र में आने पर उसकी सारी नकारात्मकता के स्थान पर उसमें ऐसा दिव्य, ऐसा सकारात्मक गुण आ जाये जिसकी हम कामना करते हैं तथा जो द्युतिमान है।

सेंट फ्रांसिस हमें शिक्षा देते हैं कि किस प्रकार अन्धकार से छुटकारा पाया जा सकता है—"जहाँ-कहीं घृणा है, वहाँ प्रेम के बीज बो दो; जहाँ क्षति पहुँची है, वहाँ क्षमा के बीज बो दो; जहाँ शंका है, वहाँ विश्वास; जहाँ निराशा है, वहाँ आशा; तथा जहाँ दु:ख है, वहाँ आनन्द के बीज बो दो।"

यह सरल कविता न केवल महान् है; बल्कि अपने विचारों में सुन्दर भी है तथा इन सरल शब्दों में महान् दर्शन निहित है। निष्कर्ष-रूप में कविता कहती है कि आनन्द पाने का सबसे अच्छा ढंग यही है। इसी से अपने अन्दर आनन्द लाया जा सकता है, अपने अन्दर, शान्ति अपने छोटे स्व से मुक्त हो कर अपने जन्मसिद्ध अधिकार के शाश्वत प्रकाश तथा अमर जीवन को पाया जा सकता है।

५२

सर्वोच्च नियम का आज्ञा–पालन

गुरुदेव प्राय: कहा करते थे—"आज्ञा-पालन आदर करने से अच्छा है।" क्योंकि गुरु के व्यक्तित्व के प्रति किया गया आदर बाहरी क्रिया है, जब किं गुरु की आज्ञा का पालन उनकी शिक्षाओं के प्रति, जिनके लिए वह जिये, उनके कार्यों के प्रति और उनकी बौद्धिक सम्पत्ति जिसे वे तुम्हें सौंपना चाहते थे, इस सबके प्रति आदर का भाव है। वह तुम्हें बुद्धिमानी का ज्ञान देने तथा पथ को प्रकाशित करने के लिए, मार्ग-दर्शन करने के लिए ही आये थे।

इस प्रकार आज्ञा-पालन का अर्थ है—उनके व्यक्तित्व के प्रति सतत आदर, जो वे साररूप में थे। इसलिए यही उच्चकोटि का नमन और वन्दन है। उनके आदेश का पालन, उनकी शिक्षाओं के अनुरूप रहना, जिस पथ को उन्होंने दिखलाया है, उस पर चलने के लिए तथा अपना जीवन उस दिशा में चलाने के लिए जैसा वह चाहते थे, उस सर्वोच्च लक्ष्य भगवत्साक्षात्कार की ओर बढ़ना ही आज्ञा-पालन है।

इसलिए यह कोई क्रिया नहीं है, बल्कि गुरु के अनुरूप अपना जीवन यापन करके यह हमारी गुरु के प्रति अनवरत आदर दिखाने की प्रक्रिया है। गुरु की शिक्षाओं का पालन मन-वचन-कर्म से करके अपना जीवन उनके ज्ञानोपदेश के प्रति अनुकरणीय और अनुस्मरणीय बना दो। जिस प्रकार का दिव्य, उदात्त और सच्चा जीवन गुरु तुमसे चाहते हैं, वैसा ही जीवन तुम्हें जीना चाहिए। इस प्रकार के जीवन से हम सतत गुरु का आदर करेंगे, सतत गुरु के सामने नमन करेंगे, सतत हम गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा समर्पित करेंगे।

एक महान् गुरु ने एक बार कहा था—"ईश्वर ने अपनी सर्वोच्च इच्छा को तुम्हारे लिए सार्वभौम शिक्षाओं, विश्व के शास्त्रों, सन्तों, सन्देशवाहकों, पैगम्बरों के माध्यम से प्रकट किया। 'तुम मेरे पिता, माता, सखा, मित्र, तुम मेरे

ज्ञान-धन हो, तुम मेरे सब-कुछ हो, पर मैं अपनी तरह से रहूँगा और तुम जहाँ हो, वहीं रहो। तुम मेरे जीवन-व्यवहार में हस्तक्षेप मत करना। बहुत परेशान मत होना। जो मैं चाहूँ, उसे करने देना।' यह गाने की अपेक्षा उनकी इच्छापूर्ति के लिए उनके अनुरूप जीवन यापन करने पर वह अधिक प्रसन्न होंगे।''

उन्होंने कहा है—''यदि तुम्हारी आज्ञाकारिता कहने भर की है, जब आदर करने का अवसर आये, उसे क्रिया-रूप में व्यक्त करने का समय आये, तब भी केवल उनके प्रति आदर के कुछ शब्द बोल कर अपने रास्ते पर ही चलते रहते हो, उससे पिता प्रसन्न नहीं हो सकते, तुम उनकी कृपा अपने जीवन में प्राप्त नहीं कर सकते। तुम अँधेरे में ही रहोगे, क्योंकि उनकी इच्छा ही प्रकाश का निर्माण करती है।

''परमात्मा द्वारा समय-समय पर भेजे गये ऋषि-मुनि और दिव्य बौद्धिक शिक्षण प्रकाश के पुंज हैं। वे धरती पर परमात्मा की इच्छा की अभिव्यक्ति स्वरूप है। अत: उन शिक्षाओं की अवज्ञा करके तुम अन्धकार में चलते हो, प्रकाश में नहीं। वे सभी जो 'भगवन्, भगवन्' पुकार कर उसको प्रसन्न करने अथवा उसकी कृपा प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, वे उसकी आनन्दमयी अहेतुकी कृपा के योग्य नहीं बन सकते। कृपा-वृष्टि तो उन पर होती है जो ऋषियों-मुनियों द्वारा प्रकट किये गये शास्त्रों के कथन अथवा परमात्मा के प्रकटित वचनों का अनुसरण करते हैं।''

ईश्वर मनुष्य को श्रीमद्भगवद्गीता के द्वारा शिक्षित करते हैं कि उसे अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए जिससे वह उन्हें देख सके, सुन सके, उन्हें समझ सके, अनुभव कर सके। यह ईश्वर की ओर ले जाने वाला एक संक्षिप्त ग्रन्थ है। ईश्वर अपनी आज्ञा के पालन के लिए न तुम्हारे ऊपर कोई दबाव डालते हैं और न विवश करते हैं। वे कहते हैं—''मैं अपने मन के प्यार से ही तुम्हारे कल्याण की कामना करता हूँ, मैंने तुम्हें ये शिक्षाएँ प्रदान की हैं; अब यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम इनका पालन करो या न करो, तुम इनके अनुरूप कार्य करो या न करो—**'यथेच्छसि तथा कुरु'** (जैसा चाहो, वैसा करो)।''

वह कहते हैं—"जो मेरी इच्छाओं का पालन करते हैं, वह सर्वोच्च पद की प्राप्ति करते हैं। पर यदि अपनी इच्छानुसार स्वयं तुम दूसरे रास्ते पर जाते हो, उसके लिए मैं उत्तरदायी नहीं होऊँगा। अपनी मूढ़ता के लिए तुम्हें उसके परिणामों को सहना पड़ेगा।" बुद्धिमानी का क्यां अर्थ है? आज्ञा-पालन से समझ आती है; क्योंकि तुम ईश्वर की इच्छा के साथ समन्वय कर लेते हो, तुम ब्रह्माण्डीय नियमों के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेते हो, तुम उसमें अस्त-व्यस्तता लाने का प्रयास नहीं करते, तुम उनके विपरीत नहीं जाते।

यदि तुम अपने जीवन में नियमविरुद्ध होते हो, वही तुम्हारे पतन का कारण बनता है। यदि तुम उसके साथ संघर्ष करते हो, और यदि तुम नियमों के साथ सामंजस्य नहीं बैठाते, उससे नियमों पर कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं है, चाहे पालन करो अथवा न करो। उसका प्रभाव तुम पर ही पड़ेगा। हानि और लाभ का सामना तुम्हें ही करना होगा।

सरकार नियम और कानून बनाती है। यदि अपने दैनिक जीवन में तुम उनके अनुकूल चलते हो, तब तुम्हें कभी कोई परेशानी उठानी नहीं पड़ेगी, तुम अपने लिए कोई समस्या खड़ी नहीं करते। उदाहरण के लिए यदि तुम नियम भंग करते हो और अपनी गाड़ी को विपरीत दिशा में ले जाते हो, तब शीघ्र ही तुम अपने जीवन के साथ-साथ दूसरों के जीवन को भी संकट में डाल देते हो, दूसरी ओर यात्रा के नियमों का सच्चाई से पालन करने पर सब अच्छी तरह से चलता है। तुम अपने गन्तव्य पर ठीक से पहुँच जाते हो। क्यों और कैसे ? बस, केवल नियमों और कानूनों के प्रति समन्वय के कारण, केवल बुद्धिमानी से उनका पालन करके।

समझदारी से आज्ञा-पालन तुम्हें नियमों और कानूनों के प्रति समस्वर बना देता है, इस प्रकार तुम प्रगति करने के योग्य, सरलता से आगे बढ़ने में समर्थ हो कर अपने लक्ष्य तक सुगमतापूर्वक पहुँच जाते हो। इसलिए आज्ञा-पालन कार्पण्यता नहीं है। उच्च नियम का पालन आज्ञा-पालन है, उच्च नियम के साथ समन्वय स्थापित करना है। इससे तुम्हारे साथ-साथ तुम्हारे चारों ओर का समाज, जगत्, सभी का कल्याण होगा। इसी से तुम धर्मात्मा बन जाते

हो। तुम्हारे धर्म-पालन से तुम्हारे सभी साथियों को लाभ पहुँचता है तथा सर्वाधिक कल्याण और लाभ तुम्हें पहुँचता है; क्योंकि तुम धर्म का पालन कर रहे हो, नियमों का पालन कर रहे हो तथा कानून का पालन कर रहे हो।

यही वास्तविक श्रद्धा है। यही सर्वोच्च वन्दना और नमन है। जीवन में जो-कुछ भी उदात्त और सच्चा है, उसके प्रति आदर भाव, पूज्य भाव दर्शाने का यही सबसे महान् पथ है। इसलिए जब हम कहते हैं, **'श्रीमद् गुरुं नित्यमहं नमामि'** (मैं अपने आदरणीय गुरु को सदा प्रणाम करता हूँ), हमें जानना चाहिए कि इसके पीछे क्या भाव है। इसका अर्थ है कि मैं समझदारी के साथ धर्म के साथ समस्वर हो गया हूँ। जिस धर्म को हम सबकी भलाई के लिए बनाया गया है, मैं उसका आदर करता हूँ। इस प्रकार मेरे जीवन का आधार बुद्धिमानी है। धर्म के साथ, ईश्वर की इच्छा के साथ मैंने समन्वय स्थापित कर लिया है। मेरे जीवन की दिन-प्रतिदिन की मेरी मानसिक, वाचिक और शारीरिक क्रियाएँ ईश्वर की इच्छापूर्ति के लिए ही हैं। जो सभी धर्मों से परे हैं, उन गुरु और सर्वोच्च सत्य की यही वास्तविक पूजा है।

दीपावली, अमावास्या के आगामी दिवस प्रतिपदा के दिन इन विचारों को आपके समक्ष रखा गया है। यह दिवस राजा बलि का स्मरण कराता है। उन्होंने स्वार्थ भाव और आत्म-परिरक्षण के स्थान पर सर्वोच्च नियम का पालन किया। असुरों के गुरु शुक्राचार्य का कोप-भाजन बनना पड़ेगा, इसे अच्छी तरह से जानते हुए भी उन्होंने कानून का आदर करते हुए उसका पालन किया तथा अपनी समझदारी के कारण वह मानव-स्मृति में अमर हो गये। उन्होंने ईश्वर को प्रसन्न करके सर्वोच्च आशीर्वाद प्राप्त कर लिया।

इसलिए जब हम कहते हैं—**"वन्दे गुरु परंपराम। कृष्णं वन्दे जगद् गुरुं। श्रीमद् गुरुं नित्यमहं नमामि"** (मैं गुरुओं की परम्परा को प्रणाम करता हूँ)। हमें पूर्ण रूप से इस विषय में जागरूक होना चाहिए कि इसका अर्थ क्या है? तथा यह क्या सूचित करता है? यह कोई क्रिया नहीं है। यह मौलिक रूप में गुरु की इच्छा को सतत पूर्ण रूप से अपने मन, वचन और कर्म से पूरा करके इस कर्मक्षेत्र में अपने कर्मों के अनुसार फल की प्राप्ति करता है।

यही बुद्धिमानी है। ईश्वर करे, आप सभी शास्त्रों में उद्घाटित, उनकी इच्छाओं का पालन करके ईश्वर की दिव्य कृपा पाने के अधिकारी बन जायें! ईश्वर करे, आप गुरुदेव का विशेष आशीर्वाद पाने के अधिकारी बन जायें! जिस जीवन-पथ पर चल कर गुरुदेव ने दिव्य जीवन के रूप में आपके सर्वोच्च कल्याण के लिए आपको उसे दिखाया है, आप भी उस पथ पर चल कर गुरु-तत्त्व का सर्वोच्च आदर करें। ईश्वर का आशीर्वाद आपको प्राप्त हो!

५३

दिव्य नायक

भगवान् मुरुगन, शरवणभव, कार्तिकेय, सुब्रह्मण्यम् या षण्मुख की छह दिन की मांगलिक पूजा के दूसरे दिन में हमने प्रवेश किया है। षण्मुख का अर्थ है—ऐसा व्यक्ति जिसके छह मुख हों। शब्दविज्ञान के आधार पर और तात्त्विक दृष्टि से वह छह मुख धारण करने वाले माने जाते हैं।

छह तरफ फैले हुए दीखने के कारण हम उन्हें छह मुख वाला मान सकते हैं। उनके छह पक्ष और छह प्रकार के रूप के आधार पर उन्होंने स्वयं को प्रकट किया है। सभी से उनकी कृपा का प्रतिनिधित्व होता है। कोई सुरक्षा का प्रतिनिधित्व करता है तो दूसरा आशीर्वाद का, तीसरा प्रोत्साहन का 'जब मैं यहाँ हूँ, तो तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं है। डरते क्यों हो?' किसी का प्रतिनिधित्व मांगलिकता के लिए, सौम्य अनुकम्पा और विवेक के प्रकाश के लिए है। षण्मुख के प्रत्येक मुख से सर्वोच्च सत्ता का एक विशेष प्रकार का उदात्त गुण प्रतिबिम्बित हो कर विकीर्ण होता है, एक विशेष प्रकार का उदात्त दैवी गुण प्रकट होता है। उन गुणों का सम्बन्ध हमसे है। इस जीवन-यात्रा में प्रत्येक आत्मा का इनसे सम्बन्ध है।

व्यक्ति को बोध होने पर लगता है कि जीवन-यात्रा का अन्त मृत्यु नहीं है; बल्कि आध्यात्मिक पूर्णता है, मुक्ति है, अमृतत्व की प्राप्ति है। इस तथ्य के प्रकाश में, इस महान् सत्य के आधार पर मृत्यु का कोई अर्थ नहीं है। प्रत्येक प्राणी का जन्मसिद्ध अधिकार सुस्पष्ट रूप से अमृतत्व है; क्योंकि वह ब्रह्माण्डीय शक्ति का अंश है, वह ब्रह्माण्डीय शक्ति का शाश्वत सत्य है, केवल वह ही एक शाश्वत सत्य है, अपरिवर्तनशील नित्य उपस्थित रहने वाला सत्य है। इस सत्य का अनुभव करने पर यह सिद्ध होता है कि हमारी सत्ता कालातीत है, काल से परे है, शाश्वत तथा अनश्वर है, अविनाशी और अमर है। जो

अनश्वर है, उसके लिए मृत्यु का कोई महत्त्व नहीं है। अमर की मृत्यु कभी नहीं हो सकती।

शरीर मर्त्य है; परन्तु शरीर के अन्दर का प्रकाश अपार है, अमर्त्य है। शरीर जन्म लेता है; पर अन्तरात्मा अज है— "**विनश्यत्स्वविनश्यन्तम्।**" अन्तर की सत्ता नित्य शाश्वत है। वह अजन्मा है, शाश्वत है, नित्य है, पुरातन है, यह समय से परे है, अनादि है। पुरातन का अर्थ है जिसका आरम्भ किसी को पता नहीं है। इसलिए इसे अनादि, सनातन कहते हैं।

नश्वर शरीरस्थ आत्मा की विशेषता का वर्णन, संसार के महान् गुरु श्री कृष्ण ने अपने ग्रन्थ गीता के दूसरे अध्याय में सांख्ययोग की शिक्षा के रूप में किया है। वह अजन्मा है, वह सनातन है, वह शाश्वत है, वह कालातीत है। तुम्हारा स्वरूप भी ऐसा ही है। इसलिए जो कालातीत है और अजन्मा है, उसके लिए मृत्यु का कोई अर्थ नहीं है। मृत्यु उसी की होती है, जिसका जन्म हुआ है। अजन्मा की मृत्यु नहीं होती। "**जातस्य ही ध्रुवो मृत्युः।**" तुम अमर हो। तुम्हारे लिए मृत्यु का कोई अर्थ नहीं है। इस जीवन-यात्रा की नियति शाश्वत जीवन है जो नित्य विद्यमान है।

पूर्णत्व की पुनः पूर्ण अनुभूति ही मनुष्य की दिव्य नियति है । इस सम्भावना को प्रत्येक पीढ़ी में बार-बार सहस्रों वर्षों से सिद्ध किया जाता रहा है। आत्मानुभूति के द्वारा मुनियों ने बार-बार सिद्ध करके ऐसी महान् घोषणा की है— "**अमृतस्य पुत्रः।**" इस महान् घोषणा के पीछे कितना गहरा अनुभव रहा होगा कि हम अमृत-पुत्र हैं। अपरोक्षानुभूति के इस देदीप्यमान महान् अनुभव की, इस भावना को महान् आत्माओं ने प्रत्येक पीढ़ी के लिए कृपा करके, इसे जीवित रखा है। यह महान् आत्माएँ मानव-जाति की सम्पत्ति हैं। यह सारे संसार की सम्पत्ति हैं। निश्चित रूप से ईश्वर ने उन्हें शाश्वत आशीर्वाद-स्वरूप, शाश्वत कृपा-स्वरूप धरती पर भेजा है।

षण्मुख का प्रत्येक मुख प्रदीप्त हो कर उनकी सारी कृपा, सारी मांगलिकता और सारे सौम्य स्वभाव के एक-एक पक्ष को प्रकट करके हमें अभय, शक्ति और उनके प्रति भक्ति प्रदान करता है। इसलिए उनका आह्वान

करने के लिए उनकी इस सारी मनोहरता, सारी दयालुता, सारी कृपा से भरा हुआ उनका सर्वोच्च आविर्भाव भगवान् शंकर के अनुग्रह से ही हुआ है जिसे दिव्य सत्ता द्वारा हमें अर्पित किया गया है। दुष्ट शक्तियों के साथ संघर्ष में उनका सामना करके उनसे विजित होने के लिए ही वह कहते हैं—"आओ! मैं तुम्हें विजय दिलाऊँगा। मेरे साथ-साथ चलो। मेरे महान् समूह का अंग बन जाओ। मैं तुम्हें विजय की ओर ले जाऊँगा।" निरन्तर ऐसी दिव्य सत्ता के तुम्हारे साथ रहने पर तुम्हें डरने का प्रश्न ही नहीं उठता, इसमें चिन्ता की कोई बात ही नहीं है। तुम्हें बस अपने कर्तव्य का पालन करते जाना है।

एक कवि ने घोषणा की है—"तुम धूल हो और धूल में ही पुनः मिल जाते हो। आत्मा के विषय में यह नहीं कहा गया।" बड़े स्पष्ट रूप से यह पंक्तियाँ अन्दर रहने वाली मानव की आत्मा के अमरत्व के महान् वेदान्तिक सत्य और तात्त्विक सत्य को प्रकट करती हैं। इसलिए कवि कहता है कि आशा के साथ, हिम्मत के साथ काम करो। "Heart within and God overhead" —"हृदय भीतर और सिर पर छत्रछाया भगवान् की।" निश्चिन्त रहो। परमात्मा की महान् उपस्थिति इस कठिन कार्य में तुम्हें सफलता प्रदान करवायेगी। इसलिए "Heart within" — "हृदय भीतर" दृढ़ हृदय वाले बनो, साहसी बनो, चारों ओर से घिरी हुई अपनी नियति के इस संघर्ष में वीरोचित कार्य करो। इससे वंचित मत होओ। उस व्यक्ति की तरह मूर्खता नहीं करना जो स्वयं किनारे पर बैठ कर पथ पर गिरने वाले के लिए रुदन करता रहता है।

उपनिषद् कहते हैं—"गिरने से क्या हुआ? उठ जाओ।" वे कहते हैं—"**उत्तिष्ठत उत्तिष्ठत।**" सुब्रह्मण्यम् का आह्वान भी यही है—"भयाक्रान्त हो कर क्यों भाग रहे हो? भ्रान्तिवश विक्षिप्त क्यों हो रहे हो? दिव्य स्वरूप, एकत्रित हो कर आओ, आओ-आओ! मेरा अनुगमन करो! मैं तुम्हें विजय की ओर ले जाऊँगा!" और वास्तव में वे उनके चारों ओर एकत्र हो गये। उन्होंने कहा—"आप देवसेनापति हैं। आप हमारे भी सेनानायक हैं आप हमारे भी सेनापति हैं। हमारी विकीर्ण शक्तियाँ अब एकत्रित हो गयी हैं। आपके आह्वान

के कारण हमने हिम्मत नहीं हारी है। हम एकत्र हो आपका कर अनुसरण करेंगे।'' इस प्रकार वे उनको विजय की ओर ले जाते हैं।

यही स्कन्दषष्ठी की, भगवान् कीर्तिकेय, षण्मुख, स्कन्द, सुब्रह्मण्यम् की पूजा की पूर्ण कथा है। जिस प्रकार महान् ब्रह्माण्डीय शक्ति, महान् देवी माँ दुर्गा, भगवती, शक्ति की पूजा के नौ दिन निश्चित हैं, ऐसे ही उसी तरह की दिव्य शक्ति के रूप में समान शक्ति सम्पन्न महान् सेनापति के लिए भी छह दिन उनकी पूजा के लिए निश्चित हैं। वह देवों के सेनापति हैं। वह तुम्हारे अन्तर में दृढ़ निश्चय के रूप में विद्यमान हैं। वह तुम्हारे अन्तर में निर्णय की शक्ति के रूप में निवास करते हैं। वह तुम्हारे अन्तर में, तुमने अपने लिए जो कार्य चुना है, उसके लिए एकाग्रता के रूप में स्थित हैं। वह तुम्हारे अन्तर में, तुमने जिन आदर्शों को चुना है, उनके लिए समर्पित होने की शक्ति के रूप में निवास करते हैं। वह तुम्हारे अन्तर में अपार साहस और आशा के रूप में निवास करते हैं। यह सभी दैवी-सम्पद् हैं। जो दैवी शक्ति तुम्हारे अन्तर में निवास करती है और जो तुम दिव्य हो, वह उसका प्रतिनिधित्व करते हैं।

उनकी प्रार्थना करना उस आह्वान का उत्तर है—''**उत्तिष्ठत** (उठो)! **जाग्रत** (जागो)।'' सदा जागरूक और सावधान रहो। प्रमाद में नहीं पड़े रहना। ''**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत** (उठो, जागो, वरिष्ठ जनों के समीप जा कर ज्ञान प्राप्त करो।''

स्कन्दषष्ठी की यही आत्मा है। यही उपनिषदों का आह्वान है। यही तुम्हारी बपौती है। भय नहीं, साहस तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। निराशा नहीं, आशा तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। दृढ़-निश्चय तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है, दुर्बलता नहीं।

इस प्रकार हम दैवी शक्तियों के सेनापति के प्रति अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं। आपके भीतर विराजित वह महान् सत्ता अपनी सकारात्मक, निर्माणात्मक दिव्य शक्ति के साथ तुम्हारे आदर्शों की सफलता तथा तुम्हारे आध्यात्मिक विकास के लिए पूर्ण आश्वासन प्रदान करती है।

५४

सफल आध्यात्मिक जीवन के आवश्यक उपादान

अन्धकार युक्त स्थूल आसुरी शक्तियों को जीतने में जब देव गण असमर्थ थे, तो उन्होंने परम करुणानिधान परमेश्वर से एक नायक के लिए प्रार्थना की, ताकि वे पुन: अपनी विकीर्ण शक्तियों को समाहित कर सकें, निर्णायक रूप में युद्ध कर सकें और अन्धकारमयी शक्तियों पर विजय प्राप्त कर सकें। युद्ध प्रतिनिधित्व करता है शाश्वत संघर्ष का, मानव-मन की चेतना के क्षेत्र में निहित तनाव का, सकारात्मक और नकारात्मक शक्तियों के द्वन्द्व का, स्थूल और सूक्ष्म का, अन्धकार और प्रकाश का, आत्मा एवं उसे बन्धन में रखने वाली परिस्थिति का, एक अनिर्वचनीय अवस्था का और इसी कारण से इसे ब्रह्म की अलौकिक शक्ति 'माया' का वैश्विक भ्रम कहा गया है। इसी तनाव से मुक्त होने के लिए भगवान् कार्तिकेय की छह दिवसीय आराधना का विधान बनाया गया है।

कार्तिकेय के ध्वज पर मुरगा प्रतीक-रूप में है। उषाकाल में मुरगा बाँग दे कर रात्रि के अन्धकार के पश्चात् चिर निद्रा से तुम्हें जगा कर सन्देश देता है कि पर्वत-शिखर पर अरुणोदय हो गया है। **''उत्तिष्ठत जाग्रत''**—उठो, जागो और धैर्यपूर्वक परिश्रम के साथ प्रयास करके अपनी सारी शक्ति संचित करो। तुम्हारे सारे व्यक्तित्व की बिखरी हुई किरणों की सारी सम्भावनाओं—तुम्हारी शारीरिक क्रिया, तुम्हारी भावनात्मकता, तुम्हारी आसक्ति, तुम्हारा अनुराग, भाव, प्रेम सबको एक जगह एकत्रित करके सबको संकेन्द्रित करके अपने एक ही लक्ष्य, एक ही प्राप्ति, एक ही सर्वोच्च अनुभव, आत्म-साक्षात्कार में लगा दो।

एकाग्रता अर्थात् स्व-अस्तित्व को समाहित करके परम सत्य में स्थित करना ही एक सच्चे साधक, योगी का शुभ लक्षण है। योगविज्ञान की प्राप्ति तथा

आध्यात्मिक जीवन का यह आदि और अन्त है। यह बाह्य आकार का व्यावहारिक पक्ष तथा धर्म का वास्तविक स्वरूप है।

यह तुम्हारे समस्त सम्भावित व्यक्तित्व की, तुम्हारे मन की बिखरी हुई किरणों को समेटना है जो तुम्हारी इन्द्रियों के अगणित विषयों की ओर विभक्त हो गया है, जो तुम्हारे मन को चारों ओर से आकर्षित करता है, उन्हें सभी ओर से हटा कर, धैर्यपूर्वक, अनुशासन के साथ अपने मन को एकाग्र करके, निरन्तर अथक प्रयास से, आधे-अधूरे मन से न करके, अनिच्छा से न करके, पूरे उत्साह के साथ परिश्रम करके धैर्य के साथ करना है।

इसमें समय लगता है; क्योंकि यह तुम्हारे स्वभाव का परावर्तन (reversal) है जैसा कि परमेश्वर ने तुम्हें बनाया है। तुम्हारी सम्पूर्ण चेतना का यह नवीनीकरण है। यह पवित्रता में पुनर्जन्म है और दैवी शक्ति के साथ तुम्हारे शाश्वत सम्बन्ध की आध्यात्मिक जागरूकता है। महान् लक्ष्य की ओर उन्मुख होने के लिए यह तुम्हारे अस्तित्व के पूर्ण संयोजन का एक बिन्दु पर मानो स्थिर होना है।

भगवान् कार्तिकेय किसी तलवार, गदा अथवा त्रिशूल के धारक नहीं हैं। वे नोक वाले बरछे को धारण करते हैं जो संकेत देता है—आओ, अभ्यास, धैर्य और उत्साह से पूर्ण रूप से एक हो जाओ। अब इस एकत्व का परावर्तन न हो, तुम्हारे भौतिक क्रियाकलाप की विकीर्ण शक्तियाँ अब दैनिक जीवन के निरर्थक कार्यों में प्रकीर्ण न हों, तुम्हारा मन विषयों की ओर उन्मुख न हो, तुम्हारे हृदय का शुद्ध प्रेम कहीं विविधता में विकसित न हो, कहीं बाहर आकर्षित (आकृष्ट) न हो, दीर्घ स्वप्नवत् क्षणभंगुर वैश्विक अभिव्यक्ति में तुम्हारा मन कहीं छिद्रान्वेषण में न लग जाये। अभ्यास को वैराग्य से पुष्ट करो। आत्म-संयम की चट्टान तुम्हारे योग को शक्ति दे। स्वयं को सर्वोपरि रखो, योग के ढाँचे की नींव संयम हो। प्रतिक्षण, प्रति घण्टा, प्रतिदिन अपने जीवन को और महान्, गौरवान्वित, उत्कृष्ट (ज्ञानवृद्ध) बनाते चलो जिसका सर्वोच्च शिखर हो सच्चिदानन्द प्रभु, परम पिता परमात्मा।

कार्तिकेय संगठन के लिए दृढ़ रहते हैं। कार्तिकेय जागरूकता, सतर्कता, सावधानी के लिए दृढ़ रहते हैं। एक सफल साधक के लिए यह सारे आवश्यक उपादान हैं। आध्यात्मिक रूप से विजित जीवन के लिए यह सारे आवश्यक उपादान हैं। ईश्वर करे, इस प्रकार तुम्हारे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक सारे प्रयास उसी दिशा में हों, जिस कारण से तुम पृथ्वी पर आये हो। ईश्वर करे, तुम्हारे सारे प्रयास संगठित हो कर दिव्य लक्ष्य-प्राप्ति की दिशा में हों। केवल उन्हें ही पा कर तुम्हारा जीवन अनुकूल हो जाता है, पूर्ण हो जाता है; अन्यथा यह अपूर्ण है। चाहे तुम्हारे पास तीनों लोकों की धन-सम्पत्ति हो जाये, फिर भी तुम्हारा जीवन अपूर्ण है।

इस पूर्णता की ओर जाने के लिए, इस अनुकूलता की ओर जाने के लिए ईश्वर करे, तुम्हारे जीवन का हर क्षण जागरूकता में व्यतीत हो तथा भगवान् कार्तिकेय का आशीर्वाद तुम्हें जीवन में सफलता प्रदान करे!

५५

विजय का आश्वासन

आज के दिन भक्त देवताओं के महान् सेनानायक की दिव्याभिव्यक्ति की आराधना करते हैं जो उन्हें युद्ध में आसुरी शक्तियों, नकारात्मकता और अज्ञान-रूपी अन्धकार से युक्त शक्तियों के विरुद्ध लड़ने में उनका नेतृत्व करते हैं। ईश्वर स्वयं महान् सेनानायक के रूप में अपनी उपस्थिति से स्वर्गीय जीत का आश्वासन दे देते हैं। हम उनके प्रति आदर के साथ नत हैं। हम उनकी कृपा पाने के लिए प्रार्थना करते हैं। ईश्वर करे, तुम भी ऐसी शक्ति बन जाओ, जो हमारी मूल प्रकृति दिव्यता के विपरीत, आन्तरिक युद्ध का नेतृत्व करती है।

हमारी प्रकृति त्रिविध है—तामसिक पशु प्रकृति, राजसिक मानवीय प्रकृति और सात्त्विक दिव्य प्रकृति। परमात्मा शुद्ध सत्त्व है। हमारी प्रकृति के अनैतिक मध्यस्थ पक्ष राजसिक पर आधिपत्य जमाना, उसे संयत करना और उसकी स्थापना करना तामसिक और सात्त्विक का कार्य है।

हम सभी सदा गतिशील रहते हैं। हमें किस दिशा में अपनी गति को ले जाना है? क्या हमारी गतिशीलता राजसिक होगी, अपनी उन्नति में सहायक पूर्णता लाने के प्रयास में ऊपर उठते जाने के लिए अथवा नीचे की ओर गिरने के लिए? इस प्रश्न पर विचार करना है। प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व में इस प्रश्न को सोद्योग खोजना है—यह मानवीय और दैवी जटिल, समाहित व्यक्तित्व।

तुम्हारे व्यक्तित्व की सत्ता के मध्य में दिव्यता है और मनुष्य अपने मनोभावों, चित्रवृत्ति, भावों, इच्छाओं, सनक, कल्पनाओं, स्मृतियों, गहरी पसन्द-नापसन्द तथा मनुष्यों के छह शत्रुओं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य के साथ भिन्न रीतियों से इसे घेरे रहता है। श्रीमद्भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय में कहा गया है कि दैवी और आसुरी दोनों प्रवृत्तियों के कारण

मनुष्य सदा तनाव और प्रतिकूलता की स्थिति में रहता है। कुछ शिक्षाओं में कहा गया है कि यह आत्मा तथा भौतिक शरीर के मध्य संघर्ष है।

यदि इस युद्ध का दैवी विजय के रूप में हम अपने लाभ के लिए समाधान नहीं खोजते, तो हमें दैवी सहायता प्राप्त करनी होगी। हमें इस सहायता के लिए प्रार्थना करनी होगी। यही है प्रार्थना। यही है आराधना। पर पहले हमें स्वयं ही संघर्ष करना होगा। पहले प्रयास, फिर प्रार्थना। ऐसा नहीं कि चुपचाप आँखें बन्द करके बैठ कर प्रार्थना कर रहे हैं कि ईश्वर अपने-आप सब-कुछ ठीक कर देंगे। कृपा पाने के लिए पुरुषार्थ अनिवार्य है। दैवी कृपा का आवश्यक तत्त्व आत्म-प्रयास है। सच्चे और उत्साहपूर्ण प्रयास से ही दैवी कृपा के विस्तृत कपाट स्वयं खुल जाते हैं।

तुम्हारे रास्ते में जो-कुछ भी संकीर्ण, तुच्छ, अधम, आसुरी, अनाध्यात्मिक आये, अपनी इन निम्न वृत्तियों पर विजय पाने के लिए अनथक प्रयास करो। ऊपर उठ कर कुछ करो। यह संघर्ष अखण्ड रूप से चलना चाहिए। यह प्रयास निरन्तर चलना चाहिए। यह प्रयास तुम्हारे दैवी जीवन के किसी एक दिन या किसी विशेष घड़ी में नहीं, बल्कि अबाध गति से सतत चलते रहना चाहिए। नदी अपने बहाव को रात्रि-विश्राम हेतु एक क्षण के लिए भी नहीं रोकती है, बहती रहती है।

स्वर्गिक सेना के प्रधान सेनापति देदीप्यमान प्रदीप्त देवता हैं। वह अपने वाहन मोर की सवारी करते हैं, उनका ध्वज-चिह्न मुरगा है तथा हाथ में बरछा थामे रहते हैं। अपने पिता की तरह त्रिशूल नहीं, बरछा थामे रहते हैं। मोर ऐसा पक्षी है जो विषैले सर्पों से भी नहीं डरता। वह अपने भारी पंजों में उसे कस कर पकड़ लेता है। सर्प असहाय हो जाता है। आत्म-विजय का यह बड़ा सुन्दर प्रतीक है।

भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में बौद्धिक ज्ञान देते हुए एक महत्त्वपूर्ण शब्द का प्रयोग किया है। अपवित्र कामनाएँ, क्रोध और लोभ इन तीन भयानक आसुरी गुणों के प्रति वे हमें सचेत करते हैं। वे कहते हैं कि ये आसुरी गुण आत्मा का हनन करने वाले हैं। आत्मा की अमरता की साहसिक घोषणा के साथ गीता का

ज्ञान प्रारम्भ होता है। इस सन्दर्भ में यह शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। पुनरपि भगवान् श्री कृष्ण आत्मा के नाश के विषय में कहते हैं। क्या तुमने कभी सोचा है कि श्री कृष्ण ने जो कहा है, वह उनके कथन का विरोधाभास है? एक स्थान पर आत्मा को अमर कहना तथा ठीक उसके बाद दूसरी जगह कामनाएँ, क्रोध और लोभ आत्मा का हनन करने वाले हैं। हाँ, वे तुम्हारी आध्यात्मिकता का नाश कर सकते हैं। इसलिए सावधान! देवसेनापति की सहायता से उन्हें वश में करो। दैवी आदेश का पालन करो। निम्न मन को मत सुनो।

स्कन्द या कार्तिकेय मोर की सवारी करते हैं जिसके पंजे में विषैला सर्प विवश होता है। वह असहाय हो कर तड़पता है। वह पूरी तरह से विवश है, नियन्त्रित है। वह अपने हाथ में बड़ा नुकीला, एकाग्र बरछा भी रखते हैं जो यह संकेत देता है कि तुम्हें अपने व्यक्तित्व की सारी शक्तियों को एक स्थान पर एकत्रित करके एक ही केन्द्र-बिन्दु पर ले आना चाहिए। तुम्हारा अन्तर्मन एक ही केन्द्र-बिन्दु पर केन्द्रित हो जाना चाहिए। वह बरछा पूर्णरूप से एकाग्रता का, समर्पण भाव का, तुम्हारी सत्ता को ईश्वर-प्राप्ति के एक ही लक्ष्य हेतु स्व-अस्तित्व के संगठन का प्रतीक है।

इस प्रकार के सारे प्रयासों में सदा सावधान, सदा जागरूक रहना चाहिए, कभी सुप्तावस्था में नहीं रहना चाहिए। उनके ध्वज पर मुरगा इसी सत्य का प्रतीक है। प्रभातकाल में सूर्योदय होते ही, चमकते हुए दिन के आरम्भ होते ही जहाँ अँधेरे का नामोनिशान नहीं है, जहाँ अज्ञान की निद्रा नहीं है, उस समय मुरगा बाँग दे कर सबको जगाता है। यह कहता है कि अपने मन को वश में लाने के लिए, उसे संगठित करने के लिए सारे प्रयास करके उसे अपनी पूर्ण शक्ति के साथ ईश्वर की प्राप्ति के लक्ष्य, दिव्य पूर्णत्व, प्रकाश और मोक्ष पाने के लिए तुम सुप्त नहीं रह सकते। स्वयं को निद्रा के वशीभूत नहीं कर सकते।

तुम्हें जागरूक रहना है, सदा जागरूक रहना है। **''उत्तिष्ठत जाग्रत''**—उठो, जागो; यह ही महान् आह्वान है। कार्तिकेय अथवा स्कन्द के रथ पर लहराते हुए ध्वज पर मुरगे का फड़फड़ाता हुआ प्रतीक सदा जागते रहने की याद दिलाता है, सदा सावधान रहने की याद दिलाता है, सदा सावधान

रहने की, सदा सजग रहने की आवश्यकता है जिससे निद्रा की हर सम्भावना को दूर किया जा सके। अपनी प्रत्येक क्रिया को सदा सजग हो कर विवेकपूर्वक इस प्रकार किया जाये जिससे हम कभी भी एक क्षण के लिए भी अपने ईश्वर से विलग न हों। हमें सदा अपने-आपको उस सत्ता से जो हमारे सर्वेसर्वा हैं, जो हमारे आदि, मध्य और अन्त हैं, उनसे आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित करना है।

साररूप में ये तीनों कारण—मोर, बरछा और मुरगा, ये तीनों प्रतीक हमारे लिए आध्यात्मिक जीवन के आवश्यक तत्त्व हैं, योग-वेदान्त-साधना और साक्षात्कार के अनिवार्य उपादान हैं। ईश्वर को प्राप्त करने वाली दैवी नियति में ये तीनों कारण निश्चित रूप से हमें विजय दिलवाते हैं। आत्म-संयम, समर्पण और निरन्तर जागृति हमें प्रभावशाली उन्नति के लिए, दिव्य पूर्णता और मुक्ति की आन्तरिक प्यास जो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, इसकी उपलब्धि में सफलता प्रदान कराते हैं।

इन तीनों गुणों को अपने भीतर विकसित करके, अपनी साधना, आध्यात्मिक प्यास का आन्तरिक जीवन, इनके मिश्रण से अपनी सफलता को निश्चित क़र लो। ईश्वर करे, तुम्हारे मन में यह जागरूकता बनी रहे। ईश्वर करे, तुम अपने मन को सब तरफ से हटा कर उसे दैवी शक्ति को अर्पित कर दो। वह दैवी शक्ति से चले। दैवी शक्ति के अतिरिक्त जीवन में और कुछ न हो।

ईश्वर करे, तुम्हारा दृष्टिकोण स्पष्ट हो। ईश्वर करे, इस युद्ध-क्षेत्र में तुम आ़भ्यन्तर जीवन की जय-यात्रा प्रारम्भ करके अपनी विजय निश्चित कर लो जो तुम्हें शान्ति, आनन्द और मोक्ष के रूप में यश प्रदान करने वाली होगी।

५६

कभी निराश मत होओ

सर्वोच्च सत्ता का वास्तविक स्वभाव कृपा करने का है और उनकी सर्वव्याप्त उपस्थिति का अर्थ है कि वह कृपा हमारे साथ, हमारे चारों ओर, हर समय रहती है। हम सदा दैवी कृपा में ही रहते हैं, उसी में हमारी गति है, उसे हमें प्राप्त करना है।

गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी कृपा का ही प्रकट रूप हैं। सारे महान् सन्त और ऋषि, सारे महान् प्रबुद्ध और मुक्त बुद्धिमान् पुरुष सभी निश्चित रूप से ईश्वर की कृपा के प्रमाण हैं। वे सभी ईश्वर की कृपा का प्रकट मूर्त रूप हैं। वे इस मानव-जगत् में अन्धकार में प्रकाश के रूप में आते हैं। वे व्यक्तियों को यह विश्वास जगाने के लिए जगत् में रहते हैं कि यदि उनका मन ईश्वर की ओर उन्मुख हो जाता है, तो ईश्वर की कृपा सदा उनके साथ है। ईश्वर की कृपा इन महान् सन्देशवाहकों के माध्यम से ही काम करती है।

पूज्य गुरुदेव को यह मुहावरा बड़ा प्रिय था। अक्सर वे इसे कहते भी थे और लिखते भी थे : "Nil desperandum" —"कभी हतोत्साह मत होओ।" कभी निराश मत होओ; क्योंकि कृपा तुम्हारे पास है। ईश्वर तुम्हारा कभी परित्याग नहीं करेंगे, ऐसी स्थिति में भी जब तुम्हें लगने लगे कि सब समाप्त हो गया है, आध्यात्मिक जीवन नष्ट हो गया है, तुमने सब-कुछ गँवा दिया है, अपने-आपको जीतने के सारे प्रयासों का कोई लाभ नहीं हो रहा है, तुम पूरी तरह से हार गये हो, जड़ से उखाड़ दिये गये हो, ऐसी अवस्था होने पर भी ईश्वर की कृपा तुम्हें सारी परिस्थितियों से उबार देती है। वह तुम्हारी हार को जीत में परिणत कर देती है।

यह तथ्य हमारे सामने भगवान् शिव की दूसरी सन्तान भगवान् कार्तिकेय के रूप में प्रकट हुआ है। यद्यपि भगवान् शंकर अपनी आनन्दमय दिव्यता के

साथ सदा ध्यान-मुद्रा में पूरी तरह से बड़ी गहनता के साथ डूबे हुए दिखायी देते हैं, पुनरपि वे उनके द्वारा निर्मित इस प्रातिभासित जगत् के प्रति पूरी तरह से असावधान तथा उसे भूले नहीं हैं। कभी-कभी अपने आनन्दमय आत्म-बोध के गहन ध्यान में होने पर भी वह अपने भक्तों की पुकार के उत्तर में अपने ध्यान से बाहर आ जाते हैं। इस तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण भगवान् कार्तिकेय का जन्म है। हारे हुए देवताओं की विनति की प्रतिक्रिया-स्वरूप भगवान् शंकर ने उन्हें अपने प्रतिरूप में प्रकट किया।

कार्तिकेय परम सत्ता की सर्वोच्च कृपा हैं। वह लोकोत्तर विश्वजनीन सत्ता, सर्वव्यापी और अन्तर्यामी होने के कारण उनकी कृपा भी इसलिए सर्वव्यापी, अन्तर्यामी तथा सदा रहने वाली है। यह तुम्हारे मन में भी उचित विवेक और उचित प्रश्न-परिप्रश्न के रूप में प्रकट होती है। जब महान् विषमावस्था में तुम्हारे मन में एकाएक विचार कौंधे कि 'इस क्षण में मुझे यही करना चाहिए।' यही कृपा का क्रियारूप है, कृपा सक्रिय हो कर तुम्हारे अन्दर काम कर रही है। इसलिए कृपा सदा तुम्हारे पास है। इसीलिए पावन गुरुदेव का यह वचन है— "निराश मत होओ।" संघर्ष करो! कभी हार मत मानो।

मैंने एक कविता कभी पढ़ी थी, उन विचारोत्तेजक पंक्तियों को मैंने छोटी-सी पुस्तक 'प्रेरक विचार' (Inspiring Thoughts) में देना उचित समझा। कविता का शीर्षक है—"आशा छोड़ो मत।" जब तुम्हें लगने लगे कि सब लुट गया है, या लगे कि तुम हारने वाले हो, असफल होने वाले हो, कविता कहती है कि तभी सहायता तुम्हारे पास पहुँच जाती है तथा अत्यधिक हारी हुई कही जाने वाली बाजी तुम जीत जाते हो, तुरन्त ही तुम सफलता के चरण चूमने लगते हो। जब तुम सोचते हो कि तुम असफल होने ही वाले हो, सब प्रकार से हानि हो गयी है, शीघ्र ही तुम सफल हो जाते हो; क्योंकि कृपा सदा तुम्हारे पास रहती है।

इसलिए कभी आशा छोड़ो मत। उठो, जागो, प्रकाश प्राप्त करो। मुक्त हो जाओ। तुम इसीलिए धरती पर आये हो। अपनी दैविक नियति पूर्ण करो। कृपा सदा तुम्हारे पास है।

५७

महान् आश्वासन

सर्वोच्च सत्य के प्रति श्रद्धास्पद श्रद्धांजलि जो निर्गुण निराकार तथा पूर्ण, दोनों है। प्रकट रूप होने के साथ-साथ सगुण साकार भी है। आदरणीय प्रिय पावन गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी महाराज को प्रेम के साथ प्रणाम, जो हमारे लिए देवत्व का जीवन्त, प्रकट, मूर्त रूप थे। वह हमारे लिए दैवी कृपा का प्रकट रूप भी थे। समय-समय पर दैवी कृपा ऐसे मनुष्यों के माध्यम से प्रकट होती रहती है तथा उनका अवतरण अनेक संघर्षरत सच्चे साधकों के लिए दुःख, कष्ट, पीड़ा तथा बन्धन से मुक्ति का साधन बन जाते हैं।

विस्तृत ब्रह्माण्डीय फलक जहाँ जगत् में चारों ओर कष्ट है, मानव-जाति जब आसुरी सत्ता से पीड़ित और उसकी धूर्तता से दुःखी है, तब सभी सर्वोच्च सत्ता की ओर उन्मुख हो कर उनसे प्रार्थना करते हैं, तभी अधिदैविक शक्ति के रूप में उनकी कृपा का मानो विशेष अवतरण होता है । जो देव पहले से सृष्टि, स्थिति और रक्षण की कृपा के रूप में था, वह अब मानव-रूप धारण कर लेता है। वे कहते हैं कि मनुष्य के जीवन में दुःख की पराकाष्ठा में ईश्वर के अवतरित होने की सम्भावना रहती है। हिन्दू धर्म में कहा गया है कि इसी प्रकार का अधिदैविक आगमन शंकर की आदि दैविक सन्तान के रूप में हुआ। वे स्वर्गिक सेना के सेनापति कहे गये।

हम सभी को ज्ञात है कि जो-कुछ भी बाह्य जगत् में घटित होता है, वही मनुष्य की आन्तरिक चेतना में भी होने का संकेत मिलता है। मनुष्य की प्रकृति में दोनों प्रकार की शक्तियों—प्रकाश और अन्धकार, सकारात्मक और नकारात्मक, निर्माणात्मक और ध्वंसात्मक, दैवी और आसुरी शक्तियों का अस्तित्व होता है। मानव-स्वभाव में इन दोनों शक्तियों के मध्य सतत उनका सामना, तनाव और संघर्ष चलता रहता है।

साधना का एक आयाम ऐसी स्थितियों के प्रति जागरूकता है तथा व्यक्ति को अपने अन्दर ऐसे साधनों से ऐसा आध्यात्मिक विकास करना है जो इस संघर्ष को ऐसे संकल्प से सत्य के माध्यम से असत्य को सहज ही पराजित करके, आसुरी शक्तियों के ऊपर दैवी शक्तियों की विजय प्राप्त करके व्यक्ति को ऐसे विकसित स्वभाव का बनाता है जहाँ आध्यात्मिक गुणों का प्राधान्य होता है, जहाँ आध्यात्मिक गुण शक्तिशाली हो कर असत्य पर विजय पा कर अपने वास्तविक स्वभाव में आ जाता है।

अत: बहुत से स्थानों पर अनेक जातियों की पृष्ठभूमि में यह कहा गया है—"मनुष्य को अपना रक्षक स्वयं होना है।" तुम्हें अपने-आपको अपने स्व से स्वयं ही ऊपर उठाना है—"**उद्धरेदात्मनात्मानम्।**" भगवान् बुद्ध ने कहा है कि 'अपने को जीत लेना सबसे बड़ी जीत है।' इस प्रकार न केवल पृथ्वी पर मानव-जीवन के बाह्य अस्तित्व में प्रत्युत प्रत्येक जीवात्मा के अन्तर में भी इस स्थिति के अस्तित्व को सभी धर्म पहचानते हैं।

पुराणों में भी कहा गया है कि विषमावस्था होने पर ही ईश्वर को स्वर्गिक सैनिक के रूप में अपने-आपको अवतरित करने, अपनी कृपा-वृष्टि करने का अवसर प्राप्त होता है। इस सेनापति का उदय शिव और शक्ति के सम्पर्क से नहीं हुआ है, कार्तिकेय या स्कन्द के अवतरण के लिए पार्वती और शिव-शक्ति को कुछ नहीं करना पड़ा है, वह शिव की सर्वश्रेष्ठ समानतुल्य सन्तान थे, सीधे-सीधे शिव से ही उनका सम्बन्ध था।

मनुष्य में सर्वोत्कृष्ट शक्ति परमात्मा के सूक्ष्मदर्शीय पक्ष की वह सार शक्ति है जो सर्वव्यापक, अनन्त, आदि और परा वैश्विक शक्ति है, जो अगणित नाम-रूप और भावों में अभिव्यक्त हुई है। यह अद्वैत ब्रह्म का सक्रिय पक्ष है (स्वरूप है) जिसे आदिशक्ति, पराशक्ति अथवा महाशक्ति कहते हैं। इसकी कोई उपमा नहीं; क्योंकि अभिव्यक्ति से पूर्व वह (शक्ति) भी अद्वैत थी। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था। वह ब्रह्मशक्ति पूर्णरूपेण अद्वैत है। इसका आधार अद्वैत है।

यह महान् शक्ति अपने व्यष्टि रूप में अथवा सूक्ष्मदर्शीय रूप में व्यक्ति के भौतिक शरीर के मेरुदण्ड के आधार (मूलाधार चक्र) में विराजित है। यह भौतिक शरीर में नहीं है, प्रत्युत यह महाशक्ति हमारे आन्तरिक सूक्ष्म वायवीय शरीर में अवस्थित है। किन्तु इसकी अभिव्यक्ति जीवन के सभी क्रियाकलापों के द्वारा होती है जैसे—श्वसन, रुधिराभिसरण, पाचन, सम्मिश्रण, चिन्तन, विचारण, स्मरण, मनःकल्पना और विश्लेषण। इस महती दिव्य शक्ति की विविध अभिव्यक्ति मनुष्य में दृष्टिगोचर है।

यह सम्भोग शक्ति के रूप में समस्त सृजित प्रकृति में व्याप्त है जो सर्वोच्च सृष्टा को सृष्टि में निरन्तरता (सातत्य) लाने में सहायक है। प्रकृति पुनः-पुनः अभिव्यक्त अथवा जीवित न हो तो सृष्टि की निरन्तरता असम्भव हो जाये। घास का प्रत्येक तिनका, प्रत्येक पौधा, सारे मानव प्राणियों की प्रत्येक प्रजाति, प्रत्येक कृमि, यहाँ तक कि ऐसे छोटे-छोटे जीव जिन्हें आँख से देखा भी नहीं जा सकता, उन सबके अन्दर नव-जीवन-प्रदान करने की विस्मयकारी, असामान्य शक्ति होती है जो कल्प के अन्त तक सातत्य बनाये रखती है। किस जीवनी-शक्ति से यह होता है! कौन-सी महान् शक्ति इसके पीछे है! एक छोटा-सा बीज भूमि के अन्दर दबा हो कर भी इतना सक्रिय रहता है कि इसी जीवनी-शक्ति से कठोर भूमि को फोड़ कर वृक्ष के अंकुर को बाहर करता और मूल को नीचे (भूमि में) विकसित करता है।

इस प्रकार पुराणों में कहा गया है कि देवता जब आसुरी शक्ति द्वारा पीड़ित किये गये, तो उन्होंने भगवान् शंकर से गुहार की। उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोला। अपने दिव्य जीवन के नियम के आधार पर एक अन्य देव को प्रकट करने के लिए उन्होंने अपने तीसरे नेत्र को खोल कर आग्नेय शक्ति का प्रक्षेपण किया। भगवान् स्कन्द या कार्तिकेय के मनुष्य रूप में आने का यह प्रसंग है। उनके अवतरण की महान् शक्ति इतनी प्रबल, प्रज्वलित और शक्तिशाली थी कि उस वेग के अनायास आगमन को पृथ्वी वहन करने में असमर्थ थी। इसलिए उन्होंने माँ गंगा से, जिनका उद्गम भी स्वर्गिक है, प्रार्थना की। उन्होंने अपने

अलौकिक जल में उनके स्वागत की स्वीकृति दे दी। इस प्रकार भगवान् शंकर की शक्ति पृथ्वी में समाहित हुई।

सामान्य मानव-प्रकृति में व्यक्तित्व की शक्तिशक्यता (सामर्थ्य) उसकी इच्छा के प्रबल आवेश के रूप में रहती है जो अनैतिक है। यह सकारात्मक भी हो सकती है, नकारात्मक भी। यह सच्ची, उदात्त, पवित्र इच्छा हो सकती है। यह इन्द्रियगत इच्छा केवल क्षणिक सुख के लिए इन्द्रियों की भूख मिटाने के लिए, उसमें लिप्त होने के लिए हो सकती है। संस्कृत में इसे काम कहते हैं। आप सभी उसके परिणाम को जानते हैं।

जहाँ इस प्रकार की इच्छा होती है, वहाँ क्रोध होता है; क्योंकि यदि कोई उस इच्छा का विरोध करेगा, वह क्रोध में बदल जायेगी—काम क्रोध में बदल जायेगा। क्रोध होने पर व्यक्ति सम्मोह की स्थिति में आ जाता है। सारा विवेक, सारी शिक्षा, जो अब तक ज्ञान प्राप्त किया था, सब उड़ जाता है। वह व्यक्ति को मोह के चंगुल में फँसा देता है। एक बार जब व्यक्ति की दशा भ्रान्त हो जाती है, तब वह सब-कुछ भूल जाता है। जो-कुछ भी उसे सिखाया गया था, जो-कुछ उसने हृदयंगम किया था, वह कुछ समय के लिए सब शून्य हो गया। क्रोध की शक्ति इतनी प्रबल होती है कि यदि कोई व्यक्ति विद्वान् है, विवेकी है, जब वह भी भ्रान्ति के चंगुल में पड़ता है, उसका सारा ज्ञान व्यर्थ हो जाता है। क्रोध के कारण उपजी दशा में व्यक्ति पूरी तरह से मोह में अन्धा हो जाता है। इस प्रकार वह अपने सर्वनाश का कारण स्वयं बन जाता है।

इसलिए यदि व्यक्तित्व की अन्तःशक्ति सांसारिक अनुभवों की ओर मोड़ दी जाती है, तो हम उसमें बँध जाते हैं, हमारा पतन हो जाता है। यदि इसी शक्ति को दैवी प्रयोजन में प्रयोग किया जाये, तो दिव्यता की प्राप्ति का वह ऐसा साधन बन जाता है जिससे जीवन को अन्तिम आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर जाने के मार्ग में आने वाली बाधाओं को तुम पार कर सकते हो, तथा विरोधी आसुरी शक्ति को जड़ से उखाड़ कर उस पर विजय पा कर तुम अपने सर्वोच्च लक्ष्य की ओर पहुँच सकते हो। जिसे स्कन्द या कार्तिकेय हमारी आन्तरिक आध्यात्मिक स्थिति के रूप में, हमारी महान् आध्यात्मिक पिपासा के रूप में, अन्तःस्थित

आसुरी और अनाध्यात्मिक शक्तियों को परास्त करने के हमारे प्रयासों के रूप में हमारा प्रतिनिधित्व करते हैं।

यदि हम अपनी शक्तियों को ईश्वर की ओर जाने वाले पवित्र सात्त्विक गुणों में रूपान्तरित कर दें, तो भगवान् स्कन्द हमें विजय का आश्वासन देते हैं। किसी भी शक्ति को अपशब्द कह कर उसका दुरुपयोग करके उसे नकारात्मकता में लगा सकते हैं या उसे सही दिशा में लगा कर उससे अपना सर्वोच्च कल्याण और सर्वोच्च लाभ प्राप्त करके सर्वोच्च सत्ता को प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् षण्मुख (स्कन्द) के दिव्य क्रियाकलापों की अभिव्यक्ति और विधा जिज्ञासु साधक को यह निर्देश देने के लिए सांकेतिक निरूपण है कि वह (साधक) कितना योग्य है और अपने प्रति उसे क्या करना है।

साधना करने के लिए हमें अपनी महान् शक्ति और क्षमताओं को परिष्कृत करके उन्हें रूपान्तरित करना चाहिए, ईश्वर की ओर जाने के लिए उसे ऊपर की ओर जाने की दिशा प्रदान करनी चाहिए। ईश्वर की ओर जाने के इस विशेष उद्देश्य के लिए दृढ़ता के साथ गतिशील हो कर आगे बढ़ना चाहिए। यही योग है। भगवान् श्री कृष्ण ने इसे ही अभ्यास कहा है अर्थात् पूर्णता के लिए संघर्ष।

साधक का परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सब बाधाओं का अतिक्रमण करके प्रबल जिज्ञासा के साथ हर्षोल्लास-भरी विजय प्राप्त करना ही भगवान् स्कन्द की अभिव्यक्ति और उनके क्रियालापों को मनुष्य की आभ्यन्तर यात्रा में अभिलक्षित करता है—ऐसा ही एक अन्य पक्ष लाक्षणिक रूप से नवरात्र आराधना काल में वैश्विक शक्ति की, देवी माँ की आराधना के रूप में हमारे समक्ष आता है जिसकी पराकाष्ठा वार्षिक आराधना में दसवाँ दिवस अर्थात् विजयादशमी है—जो विजय का उत्सव है।

सारतत्त्व यह है कि अपनी सारी शक्ति का संचय ईश्वर को प्राप्त करने के लिए है। उसके लिए दृढ़तापूर्वक अथक प्रयास करके, रास्ते में आने वाली सारी बाधाओं को पार करके उन पर विजय प्राप्त करना है। यदि दृढ़ता के साथ तुम उसके लिए तत्पर होगे, तो विजय निश्चित है। उपलब्धि और परम लक्ष्य की

प्राप्ति में समय लग सकता है; किन्तु विजय निश्चित है। जीवन में आशा का यही महत्त्व है, यही उसका सन्देश है। उसी के सहारे तुम दैविक आश्वासन, निश्चित विजय की उपलब्धि प्राप्त कर सकते है।

हमें सर्वोच्च सत्ता को धन्यवाद देना चाहिए कि उन्होंने किस प्रकार सरल रूप से, प्रतीकात्मक रूप से, गुह्य रूप से हमें समझा दिया है कि हमारे जन्मसिद्ध अधिकार ईश्वर की प्राप्ति के अधिकार से हमें कोई वंचित नहीं कर सकता। एक बार इसका अर्थ अच्छी तरह से समझ में आ जाने पर तुम उसे निश्चित रूप से प्राप्त कर सकते हो। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए असम्भव शब्द तुम्हारे लिए निरर्थक हो जायेगा तथा सब-कुछ सम्भव है, इसका शाश्वत आश्वासन तुम्हें मिल जायेगा। तुम सारी बाधाओं के बाद उन्हें प्राप्त करके विजय का मुकुट अपने सिर पर बाँध सकते हो।

इस प्रकार हम धारणा कर लें कि हमें प्राप्ति करनी ही है। हम यहाँ असफलता का सामना करने नहीं आये, अपना अधिकार लेने आये हैं—माँगो और दिया जायेगा। हम परम पिता परमात्मा और गुरुदेव के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने हमारा हृदय आशा के ज्वलन्त प्रकाश से उदीप्त कर दिया और आत्म-साक्षात्कार को हमारे लिए आश्वस्त कर दिया। वे (गुरुदेव) पुनः-पुन कहा करते थे—"सुदूर भविष्य में नहीं; अभी, यहीं, इसी जीवन में, इसी क्षण में लक्ष्य को पाना है।"

अतः गुरु और भगवान् को धन्यवाद देते हुए हम स्वयं को उसकी उस अद्भुत अहेतुकी कृपा के योग्य अधिकारी बनाते हुए आगे बढ़ें जिस कृपा की वर्षा इस वर्तमान पार्थिव जीवन में उन्होंने हम पर की है। आप सबको परमात्मा का आशीर्वाद प्राप्त हो!

५८

गीता योग

अधिदैविक उपस्थिति के लिए श्रद्धापूर्वक श्रद्धांजलि, वह जो सारे अस्तित्व में प्रकट हैं, जो असीम हैं, हमारी निरन्तर उन्नति के लिए जिनके अनेकों नाम और रूप हैं, जो हमें सदा याद दिलाते रहते हैं कि वह सर्वव्यापी हैं। इस सर्वव्यापकता को देखना ही वास्तविक दर्शन है। उसे न देखना दृष्टि का अभाव है। वह ऐसी दृष्टि है जो दृश्य से परे जा कर अदृश्य को देखती है।

इसे आध्यात्मिक दृष्टि कहते हैं। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता चाहती है कि हम उसके ज्ञानयोग के माध्यम से इस ज्ञान को प्राप्त करें। प्रत्येक वस्तु के प्रति हमारी पहुँच ऐसी होनी चाहिए कि हम दीखने वाली प्रत्येक वस्तु के परे जा कर, बारीकी से अपनी आन्तरिक दृष्टि के आधार पर उसमें कुछ अदृश्य देख सकें। गीता में हमें अच्छी तरह से समझाया गया है—"प्रत्येक वस्तु में छिपा हुआ सारतत्त्व हूँ, मैं अशाश्वत में शाश्वत रूप से छिपा हुआ हूँ।"

मनुष्य की दृष्टि के दो दोष हैं, वह नाम और रूपों की ओर ही जाती रहती है तथा नाम-रूपों के पीछे निहित तत्त्व को देखने में वह असमर्थ रहती है। उसकी दृष्टि का प्रसार सदा बाहर की ओर ही रहता है। इसीलिए वह इसमें छिपे तत्त्व को उसके सबसे अधिक निकट होते हुए भी देख नहीं पाता है।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के छठे अध्याय में गीता-ज्ञान की शिक्षाएँ हमें समझाती हैं कि अपनी दृष्टि का प्रकाश अन्दर की ओर करो। भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं—"तुम्हारी दृष्टि बाहर की ओर लगी हुई है, इसीलिए तुम मुझे नहीं देख पाते हो कि मैं तुम्हारे हृदय-मन्दिर में प्रदीप्त हूँ। अपनी दृष्टि को अपने अन्दर की ओर ले जाओ। तुम शीघ्र ही मेरे प्रति जागरूक हो जाओगे।"

इसी प्रकार यम धर्मराज अनेकों प्रकार से नचिकेता, जो जिज्ञासु-मुमुक्षु और बालक है, उसे कहते हैं कि तुम्हें आवृत्त-चक्षु ('आवृत्तचक्षुः') होना है

(इन्द्रिय-विषयों से पराङ्मुख)। तुम्हारी इच्छा भीतर देखने की हो, बाहर देखने की नहीं। तभी तुम अमरत्व को प्राप्त कर सकते हो।

गीता के अनेक श्लोक कठोपनिषद् की शब्दश: पुनरावृत्ति लगते हैं। बार-बार वह दोनों अनुशासन के विषय में कहते हैं जहाँ अन्तर्दृष्टि, इन्द्रियों का संयम तथा अन्त:करण में देखने की बात कही है। **''आवृत्तचक्षु: प्रत्यगात्मानं ऐक्षत्''** (विषयों से विमुख हो कर भीतर देखना)। भीतर भासमान आत्म-तत्त्व को देखने की उसकी इच्छा रहती है; क्योंकि यह सब प्रकाशों से अधिक तेजवान् है। यह प्रकाशों का प्रकाश सारे अन्धकार से परे है। हम जितने प्रकार के प्रकाशों से परिचित हैं जैसे सूर्य, चन्द्र, तारे, अग्नि, विद्युत्—उन सभी से यह बहुत अधिक प्रकाशमान और प्रदीप्त है। **''न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि:। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति''** (ईश्वर के प्रकाश से ही सूर्य, चन्द्र, तारे, अग्नि, विद्युत् प्रकाशित हैं। जब वह प्रकाशित होते हैं, तभी यह सब उन्हीं के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं)।

वह तुम्हारे हृदय में निवास करते हैं; इसलिए दृष्टि अन्तर्मुखी करो। वही परमात्मा का प्रकाश हैं। इसलिए अपने मन को अन्तर्मुखी करना है। वही सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है, वही तुम्हारा आध्यात्मिक मन है। **''ईश्वर: सर्वभूतात्मां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति''** (ओ अर्जुन, ईश्वर सबके हृदय में निवास करते हैं)। यह आन्तरिक आध्यात्मिक हृदय का जो क्षेत्र है, वह सारे विश्व का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। हम इसे भूल बैठे हैं; क्योंकि हम बाहर की अन्य अनेकों वस्तुओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करते रहते हैं।

इसलिए यदि तुम अपने ध्यान को बाहरी वस्तुओं से हटा कर अन्दर की ओर मोड़ कर उस प्रकाश के प्रति जागरूक होना चाहते हो जो तुम्हारे आध्यात्मिक हृदय का क्षेत्र है, तब तुम्हें शान्ति से एकान्त में बैठ कर जहाँ बाह्य विषय न हों, अभ्यास करना चाहिए। इसलिए आध्यात्मिक साधक सदा एक कोने में दीवार की ओर मुँह करके बैठते हैं। तब वह जिसे देखना चाहते हैं बस अपने इष्टदेव और ॐ के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखते।

यदि तुम सारे संसार से मुख मोड़ कर दीवार की ओर मुख करके बैठो, तो एक ही झटके में भ्रमित करने वाले विषयों को अब तुम्हें भ्रमित करने का अवसर ही नहीं मिलेगा। इसीलिए साधक विषयों के दूर एकान्त में जा कर साधना करते हैं। अत: कुछ समय के लिए एकान्त में बैठो। बाहरी वस्तुओं से अपना ध्यान खींच कर सर्वोच्च सत्य पर स्थित करो। यही अभ्यास है। यही गीता योग है।

जब तुम कोने में दीवार की ओर मुख करके नहीं बैठ सकते और तुम्हें संसार के कार्यों में लिप्त रह कर उसे देखना, उसी में डूबे रहना है, तब भी कोई समस्या नहीं। गीता कहती है कि तुम जो-कुछ भी देखते हो, वह भी वही है जिसे तुम खोज रहे हो, यह वही है जिसे अन्तिम सत्य कहते हो। पर केवल एक बात है कि तुम्हें इसमें निहित उपस्थिति को देखना है।

"सबमें मैं निवास करता हूँ, मैं सबमें व्याप्त हूँ। इस सारे विश्व को और सब पदार्थों को धारण करते हुए भी मैं अपने भावातीत ध्यान में मग्न रहता हूँ। मैं इन सबसे ऊपर हूँ; पर मैं पूरी तरह से उन सबमें हूँ। मैं निश्चित रूप से तुम्हारे चारों ओर अन्य सारी वस्तुओं की तरह हूँ। मैं ही एक से अनेक आभासित होता हूँ। मैं सभी वस्तुओं में हूँ, अकेला मेरा ही अस्तित्व इन आभासित अनेकों वस्तुओं में है। मैं ही वह सूत्र हूँ जो सारे मोतियों को माला में पिरोये हुए है। मोती अनेक हैं, विभिन्न प्रकार के हैं; पर सूत्र एक ही है। वह एक ही सूत्र अखण्ड रूप से सभी में निरन्तर प्रवाहित हो रहा है। मैं सूत्रात्मा हूँ (सूक्ष्म शरीरों का अन्तरस्थ देव)। तुम इस रूप में मुझे जान लो, इसी रूप में मुझे देखो और मेरी दृष्टि में स्थित हो जाओ।"

"समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरं विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति" (जो देखता है, वही सारे प्राणियों में समान रूप से सर्वोच्च ईश्वर के अस्तित्व को देख सकता है, वही नश्वर में अनश्वर को देखता है)। गीता का यही बाह्य योग है, सभी में समान रूप से एक ही कारण को देखना । यही तथाकथित युद्धक्षेत्र का योग है।

रूई से सैकड़ों वस्तुओं का निर्माण होता है; परन्तु उनमें समान तत्त्व रूई है। सैकड़ों आभूषणों में समान तत्त्व सोना ही है, केवल सोना ही। सैकड़ों घड़ों में तथा कुम्हार की दुकान की अनेकों वस्तुओं में समान तत्त्व मिट्टी ही है। इसी प्रकार लाखों अन्य वस्तुओं में समान तत्त्व ईश्वरीय सिद्धान्त ही है, दिव्यता ही है, केवल आत्मन् ही है। **''इदं सर्वं यदयमात्मा''** (ओ प्रिय! यह सभी आत्मा हैं)। इस प्रकार अति-उच्च व्यक्तित्व वाले महान् ऋषि याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी मैत्रेयी से कहते हैं—''ओ तुम सुनो और जान लो कि यह सब-कुछ और कुछ नहीं, बस सर्वोच्च सत्य ब्रह्माण्डीय सत्ता, सर्वोच्च आत्मा का ही रूप है। **'इदं सर्वम्।'** यहाँ यह सब और कुछ नहीं, बस आत्मा ही है।''

यह गीता योग है। यह गीता दर्शन है। यह गीता का अभ्यास है। बस, तुमसे एक ही अपेक्षा है कि तुम सतत बिना विघ्न के ईश्वर का स्मरण, उन्हीं का ध्यान, उन्हीं का विचार, ईश्वर का ज्ञान, सबके अन्दर एक को ही देखो, इस सारे संसार में सभी वस्तुओं और प्राणियों में ईश्वर को ही देखो। इस प्रकार, ध्यानावस्था इस सीमा तक हो जाये कि क्रियाशील रहते हुए भी उसी स्थिति का अनुभव करो।

इस कालावधि में जब कि 'गीता जयन्ती' समीप आ रही है, हम इस विभिन्न यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करें। हम अनेक में एक को देखने का प्रयास करें—वही परम तत्त्व जो अपनी सृष्टि में विराजित है। गीता, गीता की विचारधारा, गीता के सार का सतत ध्यान करो। गीता का चिन्तन करो तथा गीता के दृष्टिकोण और अभ्यास को बढ़ाने का प्रयास करो। इसे अपने जीवन का आधार बना लो। अपने अन्दर गीता-दृष्टि जगा दो। अविच्छिन्न रूप से गीता का अध्ययन करो।

ईश्वर करे, तुम्हारे अन्तर में रहने वाले परमात्मा अपनी कृपा से तुम्हें वह शक्ति प्रदान करें जिससे तुम उन्हें अपने अन्दर देख सको तथा उनकी उपस्थिति का आभास कर सको, जिससे तुम उनकी उपस्थिति की मधुर सुगन्ध से अपने जीवन को सुगन्धित बना सको। जैसे जलती हुई धूपबत्ती के कोने पर सुगन्धित

पदार्थ लगा दिये जाने पर वह अपनी सुगन्धि बिखेर कर चारों ओर के वातावरण को सुगन्धित बना देती है; वैसे ही अपने ज्ञान की अग्नि को जागृति की सदा प्रज्वलित अग्नि को अपने अन्त:करण से आकृष्ट कर दिव्य सुगन्धि से भर दो।

ईश्वर करे, यह देवत्व की सुगन्ध जो अन्दर से आये, इससे तुम अपने भीतर के वातावरण को सुगन्धित बना दो। इसे अपने भीतर से अपनी वाणी, विचार और कर्मों से प्रकट होने दो। जहाँ-कहीं भी तुम जाओ, हर समय इस दिव्य सुगन्ध को अपने साथ ले जाओ और अपने चारों ओर के वातावरण को इससे भर दो। इसे ही दिव्य जीवन कहते हैं। हृदयस्थ दिव्य शक्ति तुम्हें आशीर्वाद दें!

५९

होना और करना

सर्वोच्च शाश्वत ब्रह्माण्डीय आत्मा, महान् दिव्य सत्ता जो नित्य, अपरिवर्तनशील, पूर्ण, अनुभवातीत—अनित्य, परिवर्तनशील नाम-रूपों में प्रकट हो कर जो स्थायी और अनित्य है, स्थायी और अनश्वर है, उस पूजनीय सत्ता को प्रणाम ! ईश्वर करे, उसकी दैवी कृपा हम सबको ज्ञान से होने और करने तथा सिद्धान्त से अभ्यास की ओर आगे बढ़ने के योग्य बनाये।

आदरणीय प्रिय पावन गुरु, गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी महाराज को सप्रेम वन्दन! वे व्यावहारिक ज्ञान के सन्त थे। उन्होंने हमें सिखाया, कहा और लिखा कि केवल जानना ही पर्याप्त नहीं है; बल्कि जाने हुए को व्यवहार में लाना है।

रसायनशास्त्र की एक शाखा जिसने मनुष्यों को सदा मुग्ध किया है, वह है कीमियाविधि—किसी एक वस्तु का एक स्थिति से दूसरी स्थिति में रूपान्तरण जो उससे बहुत अधिक अच्छी और मूल्यवान् हो जाती है जिसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। अति-प्राचीन काल से रसायनशास्त्र की इन शाखाओं ने लोगों को आकृष्ट किया है। आध्यात्मिक जीवन, आध्यात्मिक पथ और इस आन्तरिक आध्यात्मिक पथ की साधना एक प्रकार से कीमिया के समान ही है। इन सभी का अर्थ एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने के लिए हमारी चेतना और जागरण का रूपान्तरण ही है। ऐसी स्थिति जो बहुत ही उच्च और सर्वोत्तम, अमूल्य और अनमोल स्थिति, असामान्य, अनुपमेय, योग्यता में अनुपम और अद्वितीय है। यह आन्तरिक कीमिया है तथा यह सिद्धान्त नहीं है। यह व्यावहारिक है।

श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय में भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को विस्तार से ज्ञान देने के पश्चात् अठारहवें अध्याय में एक कठिन प्रश्न पूछा—

‘‘मैंने तुम्हें अनेक प्रकार का ज्ञान दिया है, तुमने उसे सुना है और अब तुम्हें उसकी जानकारी हो गयी है। क्या अब तुम, जैसा मैं तुम्हें बनाना चाहता था, वैसे हो जाओगे? और जो मैंने तुमसे करने के लिए कहा है, क्या तुम उसे करोगे?’’

अर्जुन का उत्तर स्वीकृति के रूप में आता है—‘‘हाँ, मैं करूँगा। मैं वह बनूँगा, जैसा आपने मुझसे बनने के लिए कहा है—एक साहसिक नायक, एक आज्ञाकारी शिष्य, कायर नहीं। मैं वह सब करूँगा जिसे आपने मुझसे करने के लिए कहा है, जिसे पूर्ण करना मेरा कर्तव्य है, मेरे कर्तव्य का निर्वाह करना मेरा सर्वोच्च धर्म है।’’ सारे साधकों, सारे ज्ञानप्राप्तकर्ताओं के लिए यह शाश्वत संकेत है कि ज्ञान प्राप्त करने के साथ-ही-साथ उन्हें अपने ज्ञान को तुरन्त ही व्यावहारिक आध्यात्मिक जीवन के रूप में प्रकट करना चाहिए। यह आध्यात्मिक विज्ञान का व्यावहारिक पक्ष है।

इसलिए हमें आज के बाद अपना मन ऐसा बना लेना चाहिए कि हमारे जीवन का लक्ष्य सिद्धान्त को व्यवहार-रूप में परिणत (अभ्यास) कर देना होगा तथा जो-कुछ भी अब हम जान पाये हैं, उसे कार्य-रूप में परिणत करें।

पूज्य गुरुदेव और परमात्मा इस अनिवार्य प्रक्रिया में हमारी सहायता करें जो मोक्ष के लक्ष्य की महती यात्रा में सफलता हेतु प्राणभूत रूप से आवश्यक है। ईश्वर का आशीर्वाद आपको प्राप्त हो!

६०

देव-त्रयी

त्रिमूर्ति-अवतार पूजनीय दत्तात्रेय को श्रद्धांजलि। वे अति-संयमी और प्रकाशित, श्री अत्रि महर्षि और सती-साध्वी महापतिव्रता ऋषि-पत्नी श्री अनसूया के दिव्य तेजस्वी पुत्र थे। ईश्वर करे, सारे संसार के सभी देशों के सभी दम्पतियों को इस दैवी दम्पति का आशीर्वाद प्राप्त हो।

इस अनोखे दैवी बालक के रूप में त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने जन्म लिया था। वास्तव में जब दत्तात्रेय का जन्म हुआ था, तो तीन बालकों का जन्म एक-साथ होने वाला था। पुनरपि उनका जन्म हुआ भी नहीं था। वे पवित्र गर्भ थे। बाद में उन्होंने यह वरदान प्राप्त किया कि जैसे सभी बालकों का जन्म होता है, वैसे ही वे ऋषि अत्रि और साध्वी अनसूया के बालकों के रूप में जन्म लेंगे। उसके पश्चात् वे लुप्त हो गये। अनसूया इन बच्चों की माँ हो गयीं। बाद में उनमें से दो ने अपने-आपको अपने स्थान से हटा लिया। सौमत्रय सर्जनहार ब्रह्मा के प्रकट रूप थे और दुरस्त्रेय विलीनकर्ता रुद्र के प्रकट रूप थे, दोनों ही विष्णु के प्रकट रूप दत्तात्रेय में विलीन हो गये और बाद में अपने अनोखे चिह्नों को छोड़ कर अपने-अपने स्थानों पर चले गये। ब्रह्मा ने अपने कमण्डल और माला छोड़ दीं। भगवान् शिव ने अपना त्रिशूल और डमरु, और भगवान् विष्णु ने अपना शंख और चक्र छोड़ा। इस प्रकार दत्तात्रेय ब्रह्मा, विष्णु और महेश के प्रकट रूप थे।

यह अनोखा प्रकटीकरण महान् सन्त महर्षि अत्रि की सती-साध्वी धर्मपत्नी सती अनसूया की अटूट भक्ति का सीधा परिणाम था। उनके सतीत्व के विषय में तीनों लोकों में सभी जानते हैं। गृहस्थ पत्नी के रूप में उच्चतम पवित्रता के प्रतीक रूप में वह जानी जाती थीं। उनके सतीत्व की शक्ति के वश में हो कर ही ईश्वर ने त्रिमूर्ति को बालकों के रूप में उन्हें सौंपा था। उसके बाद

उनके उसी सतीत्व की शक्ति के बल पर ही, उनका तीनों बच्चों के प्रति सच्चा प्रेम होने के कारण ही जैसा वह चाहती थीं, वैसा महान् वरदान उन्हें प्राप्त हुआ।

आज सती-साध्वी अनसूया का आशीर्वाद सारे संसार की सारी महिलाओं को प्राप्त हो! ईश्वर करे, वे सब जीवन को पवित्र करने वाले उदात्त सतीत्व की शक्ति से सम्पन्न हों! ईश्वर करे, अत्रि महर्षि की तपस्या की शक्ति से सारे सद्गृहस्थों को आशीर्वाद प्राप्त हो कि वे सदाचार के गुण से, पवित्रता की शक्ति से, आत्म-संयम से, अपने जीवन-साथी के प्रति कर्तव्य-परायणता की शक्ति से चमक उठें। आज के युग में यह अनिवार्य है।

माता-पिता के चरित्र, उनके स्वभाव, उनकी पवित्रता, उनके आचरण से ही बच्चे का स्वभाव निर्मित होता है। जो बच्चा उनके यहाँ जन्म ले रहा है, उस बच्चे की नैतिक प्रकृति उन्हीं के अनुरूप बनती है। बच्चा जीववैज्ञानिक और शारीरिक रूप से माता-पिता से भिन्न नहीं है। वे एक ही हैं। नयी पीढ़ी माता-पिता की ही अभिव्यक्ति होती है। इसलिए जैसे माता-पिता हैं, उनकी आन्तरिक स्थिति जैसी है, उनकी शारीरिक संरचना जैसी है, वैसा ही बच्चे का स्वभाव बन जाता है। वही उसके व्यवहार का निश्चय करते हैं।

इसलिए यदि संसार के कल के नागरिकों को सच्चा चरित्रवान्, आत्म-संयमी, मिताहारी, सन्तुलित, पवित्र, आदर्श, उदात्त चरित्र वाला बनाना है, तो माता-पिता का इतना ही उत्कृष्ट होना अनिवार्य है। यह अनिवार्य हो जाता है कि जो बच्चों का पालन-पोषण कर रहे हैं, वह जैसे स्वभाव और गुणों वाले हैं, वैसे ही गुण बालकों में आ जायेंगे। यदि एक पीढ़ी उदात्त आदर्शों से, सच्चे नैतिक गुणों से विकसित हो जायेगी, तो आगे आने वाली पीढ़ी उसी प्रकार के महान् नैतिक गुणों की हो जायेगी।

इसलिए वैवाहिक दम्पति और उनके बच्चों के बीच में निकट का सम्बन्ध होता है। बच्चों को देख कर तुम पहचान सकते हो कि माता-पिता किस स्वभाव के रहे होंगे। माता-पिता को देख कर कोई भी समझ सकता है कि बच्चे किस प्रकार के होंगे। बिलकुल इस तथ्य के विपरीत कि प्रत्येक जीवात्मा अपने पूर्व-कर्म जनित संस्कार और वासना के कारण जन्म लेता है। अत्रि महर्षि

अति-गम्भीर आत्म-संयमी, मनीषी, सच्चे चरित्र और आचरण वाले और पूर्ण सतीत्व के चमकते हुए उदाहरण तथा कर्तव्य-परायणा सती अनसूया, दोनों इन्हीं गुणों के आधार पर ऐसे बालक के माता-पिता बन गये जो ईश्वर से किसी प्रकार भी कम नहीं थे। दैविक त्रयी—ब्रह्मा-विष्णु-महेश स्वयं आ गये। उनके सतीत्व की शक्ति और अपनी तपस्या से उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वे उत्कृष्ट रूप में दिव्य शक्ति के माता-पिता बनने योग्य हैं।

ईश्वर करे, दत्तात्रेय की अहेतुकी कृपा तुम सबके ऊपर हो! वे सर्वोच्च योगी थे। दक्षिणामूर्ति के समान वे आदि गुरु थे। उनके जीवन पर विचार करो। उनकी दिव्य उपस्थिति का अनुभव करो। अपने मन में सती अनसूया और महर्षि अत्रि की पवित्र स्मृति को जगाओ। बड़े उत्साह के साथ अनुनय-विनय और भक्ति भाव से भरी हुई प्रार्थनाओं, सतीत्व की शक्ति के कारण दैविक कृपा से ईश्वर, मानव-रूप धारण करके जन्म ले रहे हैं। भक्ति से भरे हुए मन से विह्वल हो कर की गयी प्रार्थनाएँ कभी इच्छा पूरी किये बिना नहीं रह सकतीं। दत्तात्रेय का अवतरण यही सिद्ध करता है।

सदा गुरु दत्तात्रेय की शिक्षाओं को सीखने का प्रयास करना चाहिए। उनकी एक शिक्षा थी ईश्वरीय चेतना। जब तक तुम ईश्वर को पा नहीं लेते, ईश्वरीय चेतना की प्राप्ति नहीं कर लेते और ईश्वरीय चेतना में स्थित नहीं हो जाते, तब तक सदा उसे पाने के लिए अपने बौद्धिक स्तर पर, अपनी दिव्यता की जागरूकता की स्थिति में, निरन्तर अखण्ड प्रयास के लिए संघर्ष करते हो। तुम्हारे मन और बुद्धि में एक क्षण के लिए भी तुम्हारी दिव्यता के सम्बन्ध में शंका नहीं होनी चाहिए। तुम्हारी बुद्धि पूरी तरह से इस सत्य पर, इस विश्वास पर दृढ़ होनी चाहिए कि 'मैं दिव्य हूँ, मैं अमर आत्मा हूँ, अजन्मा, अमर्त्य, दिक्काल से परे, अनाम और अरूप हूँ, मैं निराकार आत्मा हूँ, मैं असीम सर्वव्यापी दिव्य चेतना हूँ। यही मेरी सच्ची पहचान है। यही मेरा सच्चा स्वभाव है।'

अपने आन्तरिक मन में निरन्तर दिव्यता की पुष्टि होते रहने से उसके विश्वास के आधार पर हमारे भाव, विचार और बौद्धिकता, हमारा स्वभाव

उसी प्रकार का हो जाता है। आदि गुरु, जगद्गुरु दत्तात्रेय की उदात्त शिक्षाएँ इसी प्रकार की हैं। आत्म-विस्मृति और अज्ञान में सोते रहने की भूल कभी मत करो। सदा अपनी दिव्यता की जागरूकता के प्रति जागृत रहने का प्रयास करो। उनके आशीर्वाद और प्रसाद स्वरूप यही हमें आज उनसे पाने का प्रयास करना चाहिए। वह अमर हैं, वह सदा उपस्थित हैं। वह नित्य अवतार एक प्रत्यक्ष देवता हैं, धरती पर दिव्यता के एक जीवित जागृत प्रकट रूप हैं। उनकी सीधे-सीधे चेतावनी है : ''सावधान रहो, जागृत रहो, अपनी दिव्यता के आवश्यक स्वभाव की चेतना में अपने-आपको सुस्थिर कर दो।''

परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज सदा इस तथ्य को अपने शिष्यों, साधकों, अनुसन्धानकर्ताओं तथा जो भी उनसे आध्यात्मिक निर्देश लेने के लिए आता था, उनसे जोर दे कर कहते थे : ''तुम यह शरीर नहीं हो, तुम यह मस्तिष्क नहीं हो, तुम अमर आत्मा हो, अपने-आपको जान कर मुक्त हो जाओ।'' ऐसे थे गुरुदेव! गुरुदेव का केन्द्रीय सन्देश यही था, आधुनिक मानव के लिए मुख्य आह्वान : ''जागो! तुम यह नश्वर माटी नहीं हो, यह हाड़-मांस का पिंजरा नहीं हो। तुम अहंकार से भरा चंचल मन नहीं हो; अविवेकी, अज्ञानी, स्वार्थी नहीं हो। तुम यह सीमित सैकड़ों त्रुटियाँ करने वाली बुद्धि नहीं हो, तुम भ्रमित होने के लिए नहीं हो जो तुम्हें अपने अविचार और अविवेक से पथ-भ्रष्ट करती रहती है। शरीर-मन-बुद्धि की क्रियाएँ सभी अपनी सीमित अपूर्णता की परिचायक हैं।

''धन्य अमर आत्माओ! आप जाग्रत रहो कि धरती पर मानव-जन्म ले कर जिन्हें आपने प्राप्त किया है, आप इन तीन सीमित उपलब्धियों से परे हो, यह आपकी वास्तविक पहचान को न तो परिवर्तित कर सकती है और न उसे छू सकती है। अपने-आपसे प्रश्न पूछो, 'मैं कौन हूँ?' अपने-आपको जानो और मुक्त हो जाओ। तुम यह शरीर नहीं हो, यह बुद्धि नहीं हो, तुम अमर आत्मा हो।'' इस प्रकार पूज्य पावन गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने हमारे लिए ही बस, जैसे प्राचीन काल में दत्तात्रेय की इन शिक्षाओं की गूँज थी, वैसे

ही बीसवीं सदी के मानवों के लिए गुरुदेव ने हमारे लिए प्रतिध्वनित की। वह हमारे लिए प्राचीन काल के दत्तात्रेय के समान थे।

ईश्वर करे, गुरुदेव तथा तथा दत्तात्रेय का आशीर्वाद, सती अनसूया और महान् ऋषि अत्रि की मंगल-कामनाएँ आपके आध्यात्मिक जीवन का विकास करें और आपमें दैवी चेतना की उदात्त ऊँचाइयों की जागरूकता पैदा कर दें!

६१

तेजस्वी आह्वान

सादर नमन उस दिव्य सत्ता को जिसकी विद्यमानता में हम इस समाधि मन्दिर में एकत्रित हुए हैं। सप्रेम वन्दन गुरुदेव की आध्यात्मिक विद्यमानता को जिन्होंने अपने असीम प्रेम और अहेतुकी कृपा से इस आध्यात्मिक केन्द्र को स्थापित किया है। जीवन का चरम लक्ष्य भगवत्साक्षात्कार, आत्म-साक्षात्कार, अपरोक्षानुभूति एवं आनन्द-प्राप्ति हेतु आदर्श और दिव्य जीवन का वरण करने वाली भाग्यशाली आध्यात्मिक आत्माओं के लिए, जो इस धरा पर अवतरित हुई हैं, आध्यात्मिक रहस्योद्भेदन तथा प्रगति के लिए यह एक आदर्श संस्थान है। अनिवार्य सुलभ सुविधाओं से युक्त इस आदर्श केन्द्र में सहायता ले कर परमानन्द की प्राप्ति हेतु परमात्मा और गुरुदेव की प्रेरणा आपको प्राप्त हो, यही प्रार्थना!

जब तक जीवात्मा स्वयं तुच्छ वस्तुओं के प्रति आकर्षित हो कर माया की शक्ति से अपने-आपको भ्रमित होने देगी, अपने मन को विभिन्न बाहरी विषयों में इधर-उधर भटकाती रहेगी, तब तक उपलब्ध सौभाग्य से अपने-आपको वंचित रखती रहेगी। जब तक इस सौभाग्य को मनुष्य पहचानेगा नहीं, तो इसके सौभाग्य प्रदान करने के गुण होते हुए भी जीवात्मा अन्धकार में ही रहेगा, विषयों के विभिन्न रूपों में अपने को भटकाता रहेगा तथा अपनी इच्छाओं के अपने जाल में अपने-आपको फँसाता रहेगा। जिसे स्वतन्त्रता और मुक्ति के विशाल कपाटों तक ले आया गया हो, केवल समझदारी के अभाव में, उत्साह, उत्सुकता और सावधानी के अभाव में वह फिर भी बन्धन में रहना चाहता है। व्यक्ति अपने प्रमादवश, आलस्यवश, विषयभोगवृत्ति होने के कारण बन्धन में रहना चाहता है। इस प्रकार उन्नति के लिए सब प्रकार की आवश्यक सुविधाएँ उसके प्रकाशित होने के लिए, मुक्ति

पाने तथा आशीर्वाद पाने की होने पर भी वह अपने-आप बनाये गये भ्रम के जाल में स्वयं फँसता रहता है।

इसीलिए प्रतिदिन साधना की आवश्यकता है, प्रतिदिन स्व-निर्मित जाल से मुक्त होने की, आलस्य को दूर करने की, दृढ़निश्चय से स्वयं को बद्ध करने की आवश्यकता है। प्रतिदिन भगवान् कृष्ण के दिये गये आश्वासन का उत्तर देने की आवश्यकता है—"**क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप**" (हे अर्जुन! मन की इस तुच्छ दुर्बलता को त्याग कर खड़े हो जाओ)। "**जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्**" (ओ अर्जुन ! काम-रूपी शत्रु को जीतना कठिन है, उसे मार डालो)। प्रतिदिन उपनिषद् के आह्वान के उत्तर की आवश्यकता है—"**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत**" (उठो! जागो! श्रेष्ठ जनों के पास जा कर ज्ञान प्राप्त करो)।

यह आह्वान आज भी उतने ही महत्त्व का है। जब तक जीवात्मा आत्म-विस्मृति, असावधानी, अपनी सक्रिय दैनिक साधना के प्रति पराङ्मुख रहेगा , यह आह्वान सदा उपयुक्त रहेगा। यह आह्वान न केवल उचित प्रत्युत सदा विद्यमान है।

"उठो और मेरा अनुगमन करो।" दो सहस्र वर्ष पहले इस आह्वान को सुना गया था। आज भी इसका महत्त्व है; क्योंकि व्यक्ति ने उठ कर उस पथ का अनुगमन नहीं किया है जिसे उसे दिखाया गया था। व्यक्ति अभी भी अपने मन से चलता है, अपनी इन्द्रियों के वश में है, अपने पुराने ढंग से सोचता, विचारता, अनुभव करता है। वह अविचार और अविवेक में रहता है। इसीलिए हम सभी तीन प्रकार से धन्य हैं, हम बड़े भाग्यशाली हैं कि ईश्वर ने हमें निवृत्ति के पथ पर बुलाया है। हम तीन प्रकार से धन्य हैं, हमने आध्यात्मिक जीवन स्वीकार किया है। हम तीन प्रकार से धन्य हैं जहाँ अपने-आपको ईश्वर में स्थापित करने के लिए सब-कुछ व्यवस्थित है वहाँ हमें बुलवाया गया है, जहाँ ईश्वर से सम्बन्धित कार्यों में हम शारीरिक रूप से व्यस्त रहते हैं और मनोवैज्ञानिक रूप से निरन्तर ईश्वर के विचारों और ईश्वर के प्रति जागरूक हो कर उनमें स्थित हो जाने के स्थिति में आ जाते हैं।

पर आवश्यकता है कि हम सदा अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को ईश्वरोन्मुख करने की लालसा रखें, हम निरन्तर अपने मन, मस्तिष्क और आत्मा को ईश्वर की ओर ले जाने की कामना करें। इस दिशा में जाने के लिए गीता का आह्वान है—**''तत: पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गाता न निवर्तन्ति भूय:''** (उस लक्ष्य की प्राप्ति करनी है जहाँ जाने के बाद फिर लौट कर नहीं आते)। ऐसे पथ पर ही चलना चाहिए जहाँ जा कर मनुष्य फिर दु:ख और मृत्यु के इस संसार में वापस नहीं आता। **''यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम''** (जहाँ पहुँचने पर लौटते नहीं, वही मेरा सर्वोच्च धाम है)।

हमने अभी ही श्रीमद्भगवद्गीता जयन्ती की समाप्ति की है। परसों हम दत्तात्रेय की पूजा करेंगे, जो हमसे बार-बार कहते हैं कि नष्ट होते हुए नाम और रूप के इस संसार में आ कर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम किस उद्देश्य से यहाँ आये हैं। दत्तात्रेय अपने दैनिक जीवन, अपने आदर्शों से आध्यात्मिक पथ पर एकाग्र भाव से दृढ़ता से उस पर चल कर सर्वोच्च गुरु हो गये। 'अवधूत गीता' के माध्यम से उन्हें हमारे लिए बहुत कुछ कहना है।

''वेदान्त-सार-सर्वज्ञानं ज्ञानं विज्ञानं एव च; अहं आत्मा निराकार: सर्वव्यापी स्वभावत:'' (वेदान्त का सार यही है, यही ज्ञान और विवेक है कि मैं आत्मा हूँ, जो निराकार है, स्वभाव से सर्वव्यापी है)। **''अहमेव अव्ययो नान्त: शुद्ध-विज्ञानविग्रह; सुखं दु:खं न जानामि कथं कस्यापि वर्तते''** (मैं ही अकेला अनश्वर असीम पूर्ण चेतन स्वरूप हूँ। मैं सुख-दु:ख कुछ नहीं जानता तथा वह कैसे दूसरों को प्रभावित करता है, यह भी नहीं जानता)। **''न मानसं कर्म शुभाशुभं मे, न कायिकं कर्म शुभाशुभं मे, न वाचिकं कर्म शुभाशुभं मे''** (शरीर, मन और वाणी से मेरा कोई कर्म नहीं है अच्छा अथवा बुरा)। **''जन्म मृत्युर्न ते चित्तं बन्धमोक्षौ शुभाशुभं, कथं रोदिषि रे वत्स, नामरूपौ न ते न मे''** मे (तुम्हारा न कोई जन्म है न मृत्यु, न बुद्धि का तुम्हारे लिए कोई बन्धन है न मुक्ति का, न कुछ बुरा है न कुछ अच्छा मेरे बच्चो, तुम रोते क्यों हो? तुम्हारे कोई नाम-रूप नहीं हैं और न मेरे हैं)।

हमें इसकी रक्षा करनी है। हमें दृढ़ता के साथ इसकी पुष्टि करनी चाहिए। इसका अभ्यास करना है। ऐसा जीवन जीना है। इसका पालन करना है। यह चेतना हमारे लिए सहज और स्वाभाविक हो जानी चाहिए। इस सीमा तक व्यक्ति को प्रति-दिन, दिन-पर-दिन इसकी लालसा करनी चाहिए। तभी आध्यात्मिक जीवन से हमारा परिचय होता है।

आध्यात्मिक जीवन केवल प्रातः और संध्या वंदन के लिए ही नहीं है। यह हमें प्रत्येक चरण पर जीना चाहिए। यह हमें हर श्वास-प्रश्वास के साथ जीना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन हमारे पूरे अस्तित्व में परिपूर्ण होना चाहिए। यह अहोरात्र के चौबीसों घण्टे चलना चाहिए। तभी केवल यह सम्भव है। हम अन्य सब-कुछ भूल जायें, उससे हमारी कोई हानि नहीं होगी; पर यदि हम अपनी आध्यात्मिक साधना भूल गये, तब हमारी बड़ी हानि होगी। हम अपने सर्वोच्च कल्याण से वंचित रह जायेंगे। और सब-कुछ भुलाया जा सकता है; किन्तु आध्यात्मिक साधना नहीं।

यही गीता का सन्देश है। यही दत्तात्रेय का सन्देश है। यही दिव्य जीवन का सन्देश है। यही अलौकिक गुरु 'जीसेस' का सन्देश है—"अरे ! स्वर्ग के साम्राज्य की पहले कामना करो।" जीसेस ने यह सन्देश बड़ी मृदुता, बड़ी शिथिलता से मिश्रीघुला सन्देश नहीं दिया। उन्होंने बड़ा ज्वलन्त सन्देश दिया था। उन्होंने कहा—"मैं तलवार ले कर आया हूँ। मैं धरती के सारे सांसारिक बन्धन काटने के लिए आया हूँ। मेरी बात ध्यान से सुनो। उसे अस्वीकृत मत करना।" इस प्रकार दैविक गुरु जीसेस आये उनका वास्तविक तात्पर्य यही था कि वे बड़े भीषण गुरु थे वैसे नहीं जैसा कलाकारों ने अपनी कल्पना से उनके चित्र को चित्रित कर रखा है। उनके काल में कैमेरा नहीं था। वे एक उद्‌बोधक, एक सन्देशवाहक के रूप में आये थे। वे सबसे यही चाहते थे—"मृतकों को अपने मृतक को गाड़ने दो। तुम्हारे पास जो-कुछ है, उसे बेच कर मेरा अनुगमन करो। पहले स्वर्ग के साम्राज्य को खोजो।"

पैगम्बर गुरु नज़रथ के सन्देश का सार भी एक बड़ा ज्वलन्त अटल आदर्श था। उन्होंने दिव्य जीवन का मार्ग मृदुता से नहीं, बल्कि कठोरता से

दिखाया। उन्होंने लगातार ध्यान के द्वारा आत्म-त्याग और आत्म-संयम का पथ दिखाया। उन्होंने कहा कि 'अविराम अर्चना करो। यदि तुम रुकते हो, तो धारा के साथ बह जाओगे। तुम्हें निरन्तर पतवार चलानी है। तुम्हें अपने चप्पू को विश्राम नहीं देना है।' यही जीसेस का सन्देश था।

ऐसा मत समझो कि सब-कुछ तुम्हारे अनुकूल ही होगा। क्या तुम समझते हो कि सब-कुछ यों ही घट जाता है। जो-कुछ घटेगा, वह तुम्हारे कर्मों से ही परिचालित होगा। आध्यात्मिक ज़ीवन में सब-कुछ ऐसे ही नहीं घटता। वह सब तुम्हारे श्रम से सम्बन्धित है। यह तुम्हारे मन से सम्बन्धित है। यह तुम्हारे पुरुषार्थ का प्रश्न है। यह अभ्यास का प्रश्न है। यहाँ अनायास कुछ नहीं होता। तुम प्रतीक्षा नहीं कर सकते। तुम जो भी करोगे, उसका फल तुम्हें मिलेगा। यह वह नहीं है कि दूसरे तुमसे क्या कहते हैं या तुम अपने लिए क्या सोचते हो। आध्यात्मिक जीवन में इसका महत्त्व है कि तुम क्या करते हो।

दूसरे तुमसे तुम्हारे बारे में वही कहेंगे जो उनके लिए सुविधाजनक होगा। वह ऐसे कहेंगे कि तुमसे अधिक-से-अधिक लाभ उठा सकें। मानवीय सम्बन्धों में सामान्य जगत् में यही होता है। इसलिए दूसरे तुमसे क्या कहते हैं, उसके आधार पर यदि तुम अपने बारे में अपनी धारणा बनाते हो, तो तुम कहीं के नहीं रहोगे। तुम्हारा विनाश हो जायेगा। तुमने अपने बारे में अपनी जो धारणा बनायी है, उसे भी तुम आधार नहीं बना सकते। तुम्हारी सोच का आधार माया है। तुम्हारा विचार ऐसा विचार है जो सौ प्रतिशत अहंकार के वश में है। अहंकार ही सारे विचारों पर छाया रहता है, यदि कोई उससे ऊपर उठ कर शास्त्रों की सार्वभौम विरासत की जो बौद्धिक शिक्षा हमें उत्तराधिकार-रूप में मिली है, उस पर सामान्य विचार करता है। वैसे यह है बड़ा कठिन कार्य कि महान् व्यक्तियों की शिक्षाओं और उनकी चेतावनियों पर हम विचार करें; किन्तु सहायता उसी से प्राप्त होनी है, अपने ही विचारों के मार्ग-दर्शन से नहीं।

हमारा मन सदा हमारा विमार्ग-दर्शन करता है। पथ-भ्रष्ट करने पर वह हमें यह सोचने को बाध्य करता है कि हम बहुत स्पष्ट चिन्तन वाले हैं, हम

असाधारण हैं। मन का यही काम है। यही अहं की वृत्ति है। यही भ्रम की धुरी है। और जब तक हम इन पर पार नहीं पा लेते, इनके वश में रहेंगे।

भगवान् श्री कृष्ण का यही काम था कि अर्जुन को ऐसे विचारों से रोकें, जब वह कल्पना करे कि वही सबसे बड़ा विवेकी है, बड़ा ज्ञानवान् है; जो वह सोचना है, वह सब सही है। जब तक अर्जुन का चिन्तन इस प्रकार का चलता रहा, वह भ्रम की स्थिति में रहा। भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाने का प्रयास किया कि वह इस प्रकार का विचार करना छोड़ दे। समझदारी पर आधारित उच्च विवेक के ज्ञान का चिन्तन करे। तभी अर्जुन अपने-आपसे युद्ध कर सका और स्वयं ही अपना अतिक्रमण करके विश्वास की स्थिति में आया। केवल तभी वह स्वयं से स्वयं को मुक्त करने के योग्य बना।

इस प्रकार जब हम वर्ष के अन्त की ओर बढ़ रहे हैं, समस्त बौद्धिक शक्तियों और विवेक को ऐसे आचरण करने में लगाओ जिससे तुम अति-विनयी, अत्यन्त जागरूक हो कर अपने दिव्य जीवन को सक्रिय करके धीरे-धीरे अपने जीवन की आध्यात्मिकता की ओर ले जाओ। हमें प्रतिदिन हर क्षण हर कदम पर निरन्तर अपने को जागरूक रखना है। हजारों बार हम विपरीत दिशा में सुप्तावस्था में जायेंगे, हजारों बार हमें अपने-आपको जगाने के लिए मुँह पर थप्पड़ मारना होगा, तभी कुछ पाया जा सकता है। यही 'भगवद्गीता' का आह्वान है। यही 'अवधूत गीता' का आह्वान है। यही गुरु जीसेस की शिक्षा का आह्वान है। यही सारभूत आह्वान गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का है—"सच्ची साधना करो, मेरे प्यारे बच्चो! सच्ची साधना करो।"

प्रतिदिन सबको अपनी आध्यात्मिक साधना को फिर से नया करना चाहिए। तभी जीवन निरन्तर आध्यात्मिक बना रहेगा। प्रतिदिन सबको अज्ञान-रूपी अँधेरा भगाने के लिए जागृति, प्रश्न-परिप्रश्न और विवेक के प्रकाश से अन्तःकरण को उद्दीप्त करने के लिए संघर्ष करना चाहिए। यह बहुत बड़ा कर्म है। इसे अपने ऊपर लागू करके धन्य हो जाओ। बार-बार 'भगवद्गीता' पढ़ो, बार-बार 'अवधूत गीता' पढ़ो, बार-बार 'न्यू टैस्टामेंट' (New Testament) पढ़ो, बार-बार 'हिमालय की वाणियाँ' (Voice of the

Himalayas) सुनो। त्याग, आकांक्षा, भक्ति-समर्पण और साधना के प्रति अग्नि-स्वरूप बन जाओ। साधना की अग्नि तुम्हारा समस्त्य मल (दोष) जला दे और तुम्हें जागृति और प्राणिक दिव्यता के प्रकाश से तेजस्वी बना दे। एकाग्रता से इस कार्य में संलग्न हो जाओ। पराङ्मुख मत बनो। इसी की आवश्यकता है।

६२

महापुरुषों का आह्वान

शाश्वत वैश्विक सत्ता सार्वभौम आत्मा को सादर नमन जिसने प्रत्येक व्यक्ति को इस भूतल पर आत्म-विकास हेतु भेजा है, दिव्यता में आरोहण के लिए भेजा है, परमात्मा की उस आत्यन्तिक योजना की पूर्ति के लिए यहाँ भेजा है जिसके अनुसार उस प्रभु का प्रत्येक व्यष्टि अंश पूर्ण आलोक और प्रकाश स्वरूप है और स्वयं को प्रभु का अंश मान कर पूर्णत्व, स्वतन्त्रता (मोक्ष), अखण्ड और सम्पन्न देवत्व को प्राप्त करके ही उसे इस लौकिक यात्रा से वापस लौटना है। पुन: उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा को सादर वन्दन जिसने हमें यहाँ भेजा है और निश्चय कर लिया है कि अब हमारी बाह्य यात्रा पर्याप्त हो चुकी है और अब हमें निज स्रोत तक लौटने के लिए आभ्यन्तर यात्रा प्रारम्भ करनी है।

परम प्रिय गुरुदेव को सप्रेम नमन! प्रणाम उन सभी दिव्यात्माओं को जिन्हें परमात्मा ने हमारे मूल स्रोत की ओर प्रत्यागमन में हमारी सहायतार्थ यहाँ भेजा है। वे ईश्वर के दूत हैं, सिद्ध पुरुष हैं जो हमें वापस बुलाते हैं। वे ज्योतिर्मय गुरु हैं। वे प्रकाश-प्राप्त विश्व-गुरु हैं। ईश्वरीय चेतना में स्थित वे ऋषि हैं जो इस संसार में अवतरित हो कर भटकती आत्माओं की खोज करते हैं जिनका आत्म-साक्षात्कार के लिए अन्तर्मुख होने का समय आ गया है। उन्हें खोज कर वे उन्हें प्रेरित करते हैं। एवंविध, वे मानवता का सर्वोच्च कल्याण करते हैं।

पूर्णत्व की प्राप्ति हेतु इस आभ्यन्तर यात्रा में आमन्त्रित आप सभी धन्य हैं, अत्यन्त भाग्यशाली हैं। त्रिविध धन्य हैं वे लोग जिन्हें इस आन्तरिक, रहस्यात्मक, असात्त्विक सत्य का आभास होता है, ज्ञान होता है और जो इस शाश्वत सत्य की पुकार को तथा आध्यात्मिक वृत्ति को पहचान कर उसका

समुचित प्रयोग करते हुए पूर्ण हृदय से आध्यात्मिक यात्रा में अवगाहन करते हैं और दिव्यता में ऊर्ध्वारोहण प्रारम्भ करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता का यह आह्वान है—"**तस्मात् योगी भवार्जुन**" (ओ अर्जुन, इसीलिए योगी बन जाओ)। आओ, जागो, दृढ़ता के साथ निश्चय करो और अमर्त्य को खोजो, शाश्वत की ओर आगे बढ़ो। आत्मोपलब्धि के लिए संघर्ष करो। इस प्रकार जो आत्मा यह पहचान जाती है कि धरती पर मानव के आने का क्या तात्पर्य है, वह भाग्यशाली है। उस ओर जा कर उसे कोई असुविधा और कष्ट नहीं है, बल्कि वह लाभकारी लक्ष्य की ओर आगे बढ़ रहा है। वह उस महान् अवसर का लाभ उठा कर अपनी सारी शक्ति उसी में केन्द्रित कर देता है। वह अपना पूरा ध्यान इस महान् लक्ष्य की लाभकारी स्थिति में रख कर तीन प्रकार से धन्य हो जाता है।

महान् गुरु दत्तात्रेय का आह्वान इसी प्रकार का है—"तुम सदा मुक्त आत्मा हो। तुम्हारे लिए कोई कार्मिक बन्धन नहीं है। न तुम किसी शारीरिक बन्धन में बँधे हो, न वाणी के और न मानसिक बन्धन में बँधे हो। तुम सारे बन्धनों से मुक्त हो। तुम सदा मुक्त ब्रह्माण्डीय आत्म-सत्ता हो। इस तथ्य को तुम क्यों नहीं पहचानते? तुम क्यों भटक रहे हो, क्यों इधर-उधर टटोल रहे हो, क्यों ठोकर खा कर गिर रहे हो? तुम क्यों रो कर विलाप कर रहे हो? आओ। आनन्द मनाओ। जीवन के इस साहसिक कार्य में प्रवेश करो। प्रसन्नतापूर्वक इस यात्रा के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचने के लिए प्रवृत्त हो जाओ।

जीसेस का भी यही आह्वान है—"तुम सबसे भाग्यशाली और धन्य हो। आओ! शाश्वत को खोजो। उसे सबसे मुख्य स्थान पर रखो। वही सबसे प्रधान है। वह अमूल्य मोती है। इसे प्राप्त करने के लिए सर्वस्व (सब कार्य) एक ओर कर दो।"

यदि कोई किसान या श्रमिक यह जान जाये कि भूमि के अन्दर सोना गड़ा है। वह घर जा कर अपनी सारी सम्पत्ति बेच कर उस जमीन के छोटे-से टुकड़े को खरीद लेता है। हो सकता है, दूसरे सोचें कि यह व्यक्ति कितना मूर्ख है—"क्या कर रहा है? इस छोटे-से टुकड़े की इतनी कीमत चुका रहा है।

पागल हो गया है वह!'' पर वह जानता है कि जो मूल्य वह चुका रहा है, उसके आगे वह कुछ नहीं है; क्योंकि उस जमीन में सोना छिपा है और वह जानता है कि उसका मूल्य शत-शत गुणा अधिक है।

एसा ही जाग्रत व्यक्ति आत्मा के साथ होता है। वह जानता है कि आध्यात्मिक आदर्श के लिए वह जो-कुछ भी त्याग रहा है, उसके आगे कुछ भी अकिंचन है, उसने कुछ नहीं छोड़ा है। सारे संसार का सारा सोना, चाँदी, हीरे, धन-सम्पत्ति सब एक ओर हैं और मूल्यवान् आध्यात्मिक आदर्श दूसरी ओर। यह कोषों का कोष है, निधियों की निधि है। अमूल्य मोती है; अतुल्य है। वह उसके मूल्य को पहचान कर ही इतना आनन्ददायक कदम उठाता है। वह कहता है—''मेरा परित्याग, परित्याग नहीं है। यह महान् उपलब्धि है, महान् प्राप्ति है।''

इस प्रकार ज्ञान और प्रज्ञा से, मेधा बुद्धि और प्रमाण से, स्पष्ट दृष्टिकोण और अन्तर्दृष्टि से एक बड़ा पग उठाया जाता है जो पूर्ण पथ पर्यन्त सुखद होता है। भाग्यशाली व्यक्ति की आत्मा के लिए हर क्षण, हर कदम पर, हर साँस के साथ ईश्वर की दिव्य योजना की पूर्ति होती है। इसलिए परम लक्ष्य, दिव्य आदर्श और आध्यात्मिक जीवन का, मनुष्य को समुचित ज्ञान, (मूल्य) निरूपण, मूल्य-निर्धारण और अभिज्ञान कर लेना चाहिए। यही विवेक है। यही वास्तविक आनन्द है।

तब व्यक्ति पूरे उत्साह के साथ, पूरी शक्ति से, इस प्यास को बुझाने के लिए तत्पर हो जाता है; क्योंकि वह समझता है कि वह जो करने जा रहा है। उसका मूल्यांकन उसने कर लिया है और यह बहुत अच्छी बात है। इस प्रकार आज के दिन का सम्मिलन परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के नाम है, जिनकी उपस्थिति में हम सब मिल कर यहाँ खिंचे चले आये हैं, जिससे हम अपना हर दिन भ्रम के साथ नहीं स्पष्ट रूप से, उत्साहपूर्वक मन लगा कर प्रारम्भ करें, आधे-अधूरे मन से नहीं, निरुत्साहित हो कर नहीं। हम उनका आशीर्वाद पा कर उनके प्रकाश में चल सकें। जीवन इस अभिज्ञान और समझदारी के प्रकाश में जिया जाये।

अत्यन्त भाग्यशाली आत्माओ! आप सबको ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त हो! इस प्रकार विवेक के साथ रह कर दैवी पूर्णता प्राप्त कर लें, यही हमारा आह्वान है और हमारी दिव्य नियति है।

६३

अपने साम्राज्य को आने दो

हम भाग्यशाली हैं कि हमने ऐसे जीवन की कल्पना की है जहाँ प्रत्येक दिन दिव्य नाम, प्रार्थनाओं तथा दिव्य ध्यान से आरम्भ होता है। प्रिय पूजनीय गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी के प्रेम, कृपा, शुभकामनाओं से उनके इस पवित्र आश्रम में जहाँ पूरी सम्भावना है कि हम लगातार ईश्वर-स्मरण में रह सकते हैं, यहाँ ईश्वर के साथ दिन का आरम्भ, ईश्वर के नाम से दिन पूर्ण तथा ईश्वर के नाम के साथ दिन का अन्त होता है। इस ईश्वरमय वातावरण में हर दिशा में किसी-न-किसी रूप से ईश्वर का सामना करना होता है। विभिन्न स्थानों पर, विभिन्न व्यक्तियों के साथ, विभिन्न अवसरों पर व्यक्ति को मनन, चिन्तन, आत्म-चिन्तन, तत्त्व-चिन्तन का अवसर मिलता है। व्यक्ति को ईश्वर-स्मरण, सर्वोच्च लक्ष्य के प्रति जागरूकता, महान् सत्य के प्रति जागरूकता और गहराई से अपने जीवन के उद्देश्य के प्रति जागरूकता, हमारी मानवीय स्थिति के महत्त्व की जागरूकता का अवसर प्राप्त होता है।

इस लौह युग में जहाँ अधर्म, भगवद्-विस्मृति, ईश्वर के प्रति विमुखता, अत्याचार जीवन का अंग बन गया है। विचार करो ऐसे जीवन का जो ईश्वरमय हो और जिसमें तुम्हारे जीवन की उपयोगिता हो तथा विचार करो ऐसे जीवन की जहाँ कलियुग का उपर्लिखित असामान्य जीवन हो। दोनों की तुलना करो तुम किस पथ का चयन करोगे? इसका महत्त्व क्या है? तुम कितनी अच्छी तरह से जीवन का उपयोग कर सकते हो? इससे कैसे लाभ उठा सकते हो?

इन सब बातों का नये वर्ष के निकट पहुँचते-पहुँचते हमें विचार करना चाहिए कि दिव्यता के अवतरण महान् अवतार जीसेस का आगमन इस घोषणा के साथ हुआ है—"पहले स्वर्ग के साम्राज्य की कामना करो" और "यदि संसार का सब-कुछ पा कर भी वह अपनी आत्मा का नाश कर देता है, तो

उससे क्या लाभ?'' उन्होंने जीवन के मुख्य उद्देश्य भगवत्प्राप्ति के महान् लक्ष्य के सम्मुख अन्य सर्वस्व को गौण कहा।

उनका महान् ईश्वरीय आदेश था कि ईश्वर की आराधना अपने पूरे मन-मस्तिष्क से करो। अपनी पूरी सत्ता को, अपने पूरे जीवन को पूर्ण रूप से पराभक्ति में लगा दो। उन्होंने न केवल यह घोषणा की, केवल यही शिक्षा दी; बल्कि इन शिक्षाओं को पूर्णतया अपने जीवन में भी उतारा। नियमित रूप से, स्थायी रूप से वह दूसरों की सहायता, उनकी भलाई करने, दूसरों को उनके दु:ख से उबारने के लिए यत्न करते रहे। उसके साथ-साथ आन्तरिक रूप से वह ईश्वर के ध्यान में डूबे रहते थे। वे स्थायी रूप से अपने मन में ईश्वर से जुड़े रहते थे, सही अर्थों में वह ईश्वर की सत्ता में ही रहते थे, उसी में विचरण करते थे।

वह गीता-ज्ञान-उपदेश के मूर्त रूप थे। उनके अन्दर हम गीता-ज्ञान और गीता-योग मूर्त रूप से देख सकते हैं—''**योगस्थ: कुरु कर्माणि**'' (योग में स्थित हो कर कर्म करो), ''**मामनुस्मर युध्यच**'' (मेरा स्मरण करते हुए युद्ध करो)। ईश्वर के ध्यान में रहते हुए अपने साथियों के साथ अच्छा व्यवहार करो। उन्होंने यह शिक्षा दी और कहा कि इसका रहस्य यह है कि अन्दर से सदा ईश्वर की प्रार्थना में लीन रहो।

प्रार्थना वह स्थिति है जिसमें मनुष्य ईश्वर से जुड़ा रहता है। प्रार्थना वह स्थिति है जिसमें आन्तरिक रूप से व्यक्ति ईश्वर से भावात्मक रूप से जुड़ा रहता है। दिखायी देने वाले तुम्हारे बाहरी रूप का प्रवाह ईश्वर की सृष्टि के विभिन्न बाहरी प्रपंचों में अभिव्यक्ति और संसार की अनेकता की ओर होता रहता है। तुम्हारा ऊपरी जीवन सदा बाहर की ओर घूमता रहता है; क्योंकि इन्द्रियाँ और मन सदा बहिर्मुखी हैं, जब कि तुम्हारी सत्ता का सारतत्त्व निरन्तर ईश्वर की ओर उन्मुख हो कर बिना रुकावट के सतत उसमें निरत रहता है।

जिस प्रकार नदियों का प्रवाह सदा सागर की ओर ही होता है, उसी प्रकार तुम्हारी अन्त:चेतना, तुम्हारी आन्तरिक आध्यात्मिक चेतना लगातार अपने उद्गम, अपनी वास्तविक सत्ता ईश्वर की ओर प्रवाहित होती रहती है। आन्तरिक रूप से तुम्हारा जीवन ईश्वरमय होता है, बिना रुकावट के उसका

प्रवाह सदा ईश्वर की ओर होता रहता है। तुम्हारी चेतना की धारा अनवरत रूप से ईश्वर की ओर प्रवाहित होती रहती है। बाहरी रूप से अपने दायित्व का निर्वाह, अपना कर्तव्य-पालन नाटक के अभिनय के समान पूरा करो। बाह्य प्रपंच, संसार, अनेक की ओर भागने वाला तुम्हारा वास्तविक अस्तित्व नहीं है। यह तो प्रपंच से आयी वृत्ति क्षणिक कार्यशील शक्ति है।

तुम्हारा वास्तविक तत्त्व जिसका सम्बन्ध ईश्वर से है, उसका प्रवाह सदा ईश्वर की ओर होता रहता है। तुम्हारे जीवन की प्रामाणिकता निरन्तर ईश्वर की ओर जाने की है। ''उनकी स्मृति से, प्रार्थना से, उनके नाम-स्मरण से उनकी कृपा का आह्वान करके मनुष्य रोटी के सहारे नहीं, बल्कि ईश्वर के सहारे जीवन यापन करता है।''

इस प्रकार जीसेस ने हमें क्रियाओं के मध्य में भगवत्केन्द्रित जीवन का योग सिखाया है। उन्होंने स्वयं इस स्थिति का साकार रूप धारण कर लिया। उनका बाह्य स्वरूप निरन्तर परोपकार में रत रहता है तथा आन्तरिक रूप से वे सदा प्रार्थनाओं, नाम-स्मरण और समर्पण द्वारा ईश्वर से जुड़े रहते।

पिता हमारे स्वर्गलोक के
अर्चित हो तव नाम
हो साम्राज्य तुम्हारा
पूर्ण हो तेरी कामना
इस धरती पर, जैसे होती स्वर्ग में
दान दो अन्न का आज
भूलो सारे ऋण हमारे
ऋणी को भूले हम जैसे।
फँसाओ न हमें मोह जाल में
करो मुक्त अभद्र भाव से।

इस प्रकार उन्होंने अपने शिष्यों से प्रार्थना करने के लिए कहा—''आपके साम्राज्य में आने दो।'' इसका अर्थ है—''आपका साम्राज्य मेरे हृदय में आ जाये। आप मेरे मन पर शासन करें, किसी प्रकार की उत्तेजना आदि और कुछ न

हो, कोई स्वार्थ नहीं, कोई सांसारिकता नहीं, कोई इच्छा नहीं, बस आप ही मेरे हृदय के एकछत्र शासक हों, जैसे आप अपने साम्राज्य के शासक हैं उसी प्रकार अपने साम्राज्य की स्थापना यहाँ भी कर दीजिए, जैसा कि वहाँ पहले से स्थापित है आत्मा के आन्तरिक क्षेत्र में आत्मा के अदेखे संसार के रूप में यहाँ भी आ जाइए।''

इस प्रकार ईश्वर के लिए आह्वान है कि आइए और शासन का भार सँभाल लीजिए। ''मेरे ऊपर शासन कीजिए। मेरे जीवन पर शासन कीजिए। मेरे जीवन का केन्द्र हो जाइए। आप ही रहें मेरा अहंकार न रहे, न ही मेरी अहंकार-चेतना रहे, न मेरा अज्ञान न मेरे अविचार, मेरे ज्ञान का अभाव नहीं बस आपका ज्ञान रहे, आपका प्रकाश, आपकी दिव्यता रहे। मेरी सत्ता के अन्तर में केवल उसे ही रहने दो। इस प्रकार मुझे ईश्वर के भाव से भरा हुआ रहने दो। आपमें ही मैं डूबा रहूँ, दिव्यता से भरा हुआ रहूँ।''

इस महान् शिक्षक के अवतरण दिवस की पूर्व-सन्ध्या पर हमें उनकी शिक्षाओं के अर्थ को समझ कर उन्हें तौलने दो कि हमारे दैनिक जीवन में उनकी शिक्षाओं का क्या स्थान है। उनके आगमन के दिन पर उत्सव मनाने का यही महत्त्व और सार्थकता है। हमें खोजने का प्रयत्न करना चाहिए कि हमारी आध्यात्मिक सत्ता के लिए उनकी शिक्षाओं का, ईश्वर के भाव से भरे हुए वातावरण में, जहाँ वातावरण में ईश्वर-ही-ईश्वर हों, ऐसे हमारे जीवन में उनकी शिक्षा का क्या स्थान है!

प्रिय वन्दनीय गुरुदेव की विद्यमानता में इस ज्ञान के हम अंशभागी हैं; क्योंकि अगला दिवस हमने प्रारम्भ करना है। प्रत्येक दिवस नया है। यह अतीत दिवस की भाँति नहीं है। अतः ईश्वर करे, यह नया दिवस हमारे लिए ऊर्ध्वारोहण, उत्तरोत्तर प्रगति, ईश्वरोन्मुखी दिशा परम लक्ष्य की प्राप्ति का हो!

६४

धर्मानुरूप क्षुधा–पिपासा

हिन्दी में एक भजन है जिसका भाव है—"ओ मानव! मैं तुम्हारे निकट हूँ। जब तक तुम मुझे खोजते रहोगे, मैं तुम्हें नहीं मिल पाऊँगा; क्योंकि मैं तुम्हारे लिए कहीं ऐसी जगह नहीं हूँ, जहाँ तुम मुझे खोजो। जब तक तुम मुझे दूर-दूर खोजते फिरोगे, तुम्हारा खोजना व्यर्थ जायेगा। जब तक तुम मेरी उपस्थिति का अभ्यास नहीं करते, तुम्हारी खोज व्यर्थ है। सत्य यह है कि तुमसे निकट, तुम्हारे पास मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है। तुम मुझे ऐसे ढूँढ़ते हो जैसे जहाँ तुम हो वहाँ मैं नहीं हूँ, इसलिए मेरी उपस्थिति को पहचान नहीं पाते हो।"

ईश्वर की उपस्थिति को नकारना ही हमारी अधार्मिकता का मूल कारण है। ईश्वर की उपस्थिति को नकारना ही धर्म से दूर चले जाने का मूल कारण है। ईश्वर की उपस्थिति को नकारना ही मुख्य कारण है हमारी अनाध्यात्मिक आसुरी स्थिति में बन्धन का। ईश्वर की उपस्थिति को नकारने का अर्थ उस सत्य को नकारना है जिसे भगवान् श्री कृष्ण ने मेरे, तुम्हारे तथा सबके सदा लाभ के लिए कहा है : **"अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित:; अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च"** (ओ अर्जुन! मैं ही आत्मा हूँ। मैं सभी मनुष्यों के हृदय में निवास करता हूँ, मैं ही सारे व्यक्तियों के जन्म का आदि, मध्य और अन्त हूँ)। इस सार्वभौम सत्य और तथ्य के प्रति, उसे जागरूक रखने के लिए इससे अधिक ईश्वर मनुष्य से और क्या कह सकते हैं?

जो यहाँ बैठे सुन रहे हैं, उनमें से कितने ऐसे हैं जो गुरुदेव के सेवक के यह शब्द सुन कर इस सत्य के ऊपर अभ्यास करने का प्रयास करेंगे? तथा आपमें से कितने इस अभ्यास का पालन करने का प्रयास करेंगे? तथा आपमें से कितने सुबह से ले कर रात तक प्रतिदिन जागृति लाने तथा अपने मन-वचन-कर्म को इस तथ्य पर आधारित करके इस जागरूकता के प्रकाश में निर्देशन प्राप्त करेंगे?

इसीलिए हमारे पूर्वजों ने कहा है : ईश्वर का स्मरण जीवन है, उन्हें भूल जाना मरण है। ईश्वर को भूल जाना आध्यात्मिक मृत्यु है। ईश्वर का स्मरण आध्यात्मिकता में जीना है। ईश्वर का स्मरण धर्म में जीना है। जब ईश्वर की जागृति हमसे दूर हो जाती है, उसी क्षण धर्म भी हमसे दूर हो जाता है।

धर्म का आधार ईश्वर है। धर्म का आधार सर्वोच्च सत्ता की वास्तविकता है। धर्म का आधार ईश्वर के इस काल का सत्य है। वह ईश्वर के निकट हर काल में रहता है। इसलिए यदि ईश्वर को भुला दिया, तो धर्म नष्ट हो जाता है, वह दूर भाग जाता है। यदि ईश्वर का स्मरण किया जाता रहेगा, तो धर्म तत्क्षण वहाँ आ जाता है। धर्म को ईश्वर से तुम अलग नहीं कर सकते और ईश्वर को धर्म से अलग नहीं कर सकते। धर्म और ईश्वर से तुम अपने सर्वोच्च कल्याण और सर्वोच्च भलाई को अलग नहीं कर सकते। केवल धर्म और ईश्वर ही तुम्हारी सर्वोच्च भलाई, सर्वोच्च कल्याण और सर्वोच्च धन्यता का पथ निर्मित करते हैं।

इसीलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि महान् गुरु जिनके आगमन पर हमारा आधुनिक कैलेण्डर आधारित है, जिनका पवित्र और पावन जन्म-दिन हम आज रात को मना रहे हैं, उन्होंने कहा था—"वे धन्य हैं जिनकी भूख-प्यास अर्थात् आतुरता सब धर्म के लिए है; क्योंकि वे सन्तुष्ट होंगे।" ऐसा कहते हुए उन्होंने यह भी संकेत दिया है कि धर्म, धर्म-परायणता, उदात्त, अच्छे जीवन, चरित्र तथा आचरण के प्रति हमारी मनोवृत्ति कैसी होनी चाहिए।

इसके प्रति केवल स्वीकृति ही है अथवा इसके प्रति आदर भाव भी है? नहीं, तुम्हें इसकी भूख होनी चाहिए। तुम्हें इसके लिए प्रतिदिन, प्रतिक्षण मनसा, वाचा, कर्मणा इसकी प्यास होनी चाहिए। तुम्हें बड़ी लगन के साथ आतुरता से इसकी ललक के साथ पूरे जीवन को धर्म-परायणता के अनुकूल अपने को बनाना चाहिए। तुम्हें ऐसी कामना करनी चाहिए कि तुम अपने-आपको धर्म का मूर्त रूप बना सको। अपने-आपको धर्म-परायणता का मूर्त रूप बनाना ही तुम्हारी क्षुधा-पिपासा हो।

तभी तुम्हारा जीवन ईश्वरोन्मुख हो पायेगा। वास्तविक रूप से धर्म-परायणता के मार्ग पर चलने पर ही तुम्हारा जीवन ईश्वरोन्मुख हो सकता है। अपने सर्वोच्च लक्ष्य की ओर जाने वाले सीधे और सँकरे पथ पर जाने के लिए जब तुम्हारी भूख और प्यास, जब तुम्हारा तरसना-भटकना अपने-आपका पूर्णतया नैतिक, पूर्ण रूप से धार्मिक हो जायेगा, तभी ईश्वर अपना हाथ तुम्हारी ओर बढ़ा लेंगे। तब जीवन दिव्य हो जायेगा। तब सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति निश्चित रूप से हो जायेगी।

धरती पर ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो तुम्हारे धर्म के पथ पर चलने में विघ्न डाल सके। विश्व में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो तुम्हारे लक्ष्य से तुम्हें वंचित कर सके। सारी बाधाओं को तुम पार कर सकते हो। सारी बाधाएँ अपने-आप दूर हो जायेंगी। सारी समस्याएँ स्वयं सुलझ जायेंगी। यदि तुम धर्म का साथ दोगे, तो धर्म तुम्हारा साथ देगा। वह कभी तुम्हें असफल नहीं करेगा। तुम्हें ईश्वर की ओर जाने की आवश्यकता नहीं होगी, ईश्वर स्वयं तुम्हारे पास आयेंगे।

तुम्हारे चिन्तन, अनुभव और क्रिया में तुम्हारी बुभुक्षा धर्म के लिए होनी चाहिए। धर्म के आधार पर ही तुम्हारा जीवन यापन होना चाहिए। तुम्हारे विचार, तुम्हारी वाणी धर्म के अनुरूप, सत्यस्वरूपा, यथार्थ, शान्तिप्रद और मधुर होनी चाहिए। तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन दिन-प्रतिदिन धर्म की दीप्ति से दमकना चाहिए।

सभी सन्त, मनीषी, सारे पैगम्बर, सारे ईश्वर के सन्देशवाहकों ने इसी तथ्य को घोषित किया है कि यही एक आवश्यक तत्त्व है। धर्म से ही सबका कल्याण निहित है। धर्म ही सबसे आवश्यक आवश्यकता है। धर्म ही तुम्हारा सबसे बड़ा धन, मित्र और शुभचिन्तक है। धर्म ही तुम्हें आश्वासन देता है कि तुम जो आध्यात्मिक जीवन जीना चाहते हो, वह व्यर्थ नहीं जायेगा। इसका लाभ तुम्हें अवश्य मिलेगा। इसका फल अमरत्व का होगा, चिरकालिक जीवन का, चिरकालिक आशीर्वाद और शान्ति का होगा।

जो प्रतिदिन धार्मिक जीवन जीता है, उसे धर्म अनेक प्रकार से आश्वासन देता है—''वे धन्य हैं जिन्हें धार्मिकता की भूख-प्यास होती है।'' इस संक्षिप्त कथन में ईश्वर ने उनके साम्राज्य को प्राप्त करने के रहस्य को उद्‌घाटित कर दिया है। इसके साथ-ही-साथ यह भी चेतावनी दे दी है कि धर्म के प्रति तुम्हारी गतिशील मुख्य भावना कैसी होनी चाहिए। तुम्हें उसके लिए भूख, प्यास और ललक होनी चाहिए। तुम्हें हर क्षण आतुरता से धर्म का आलिंगन करना चाहिए। तुम्हारी सर्वोच्च धन्यता का यही रहस्य है कि हर कदम पर जीवन में धर्म का पालन करो।

दिंव्य गुरु जीसेस के जन्म की पूर्व-सन्ध्या पर आज की प्रातः वेला में गुरु के इस सेवक का यही योगदान है। पवित्र जन्मोत्सव की घड़ियों की ओर जाने के लिए तुम्हारे मन को तैयार करने का यही मेरा ढंग है कि धर्म को स्मरण रखो। तुम धर्म को तभी स्मरण रख सकते हो, जब तुम्हें स्मरण हो कि तुम्हारा जीवन ईश्वर की सत्ता में ही गतिवान् है और ईश्वर की उपस्थिति में कोई नीच, अधम, तुच्छ, आसुरी कार्य नहीं कर सकता।

सावधान रहो कि ईश्वर तुम्हारे आस-पास, चारों ओर हैं; इसीलिए धर्म भी वहीं तत्क्षण तुम्हारे जीवन का अंग हो जाता है तथा यह भी सत्य है कि तुम्हारा जीवन भी तत्क्षण दिव्य और अच्छा हो जायेगा।

इस सत्य का मनन करो। अपनी पूरी इच्छा और आतुरता से जीवन में धर्म को स्वीकार करो। जागरूक रह कर सावधानी से जीवन के लिए धर्म का चयन करो, ईश्वर तुम्हें अपना बनाने के लिए तुम्हारा चयन कर लेंगे। वह तुम्हें अपने आशीर्वाद से धन्य कर देंगे!

६५

ईश्वर! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो

सादर वन्दना उस दिव्य विश्वात्मा को, जो हमारे (ब्रह्माण्ड) जैसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों में व्याप्त हो कर उनसे भी अतीत है। हम उस परम सत्ता का चिन्तन करें जो सृष्टि की समस्त वस्तुओं में आभ्यन्तर रूप से विद्यमान है, अणु और महान् सबमें समान रूप से व्याप्त है। सब पदार्थों का कल्मष हरण करते हुए, उनका विशुद्धिकरण करते हुए वह परमात्मा मनसा, वाचा, कर्मणा हम जैसा जीवन यापन करते हैं उसमें वन्दनीय अर्चनीय है।

परम पावन गुरु, गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी की आध्यात्मिक उपस्थिति के लिए प्रेमपूर्वक प्रणाम, जिन्होंने हमें सिखाया है कि सारे नाम और रूपों में पूरी तरह से उसी सत्ता को देख कर उस सर्वोच्च सत्ता की सेवा उन सारे रूपों और नामों के माध्यम से करो। जिन्होंने हमें सिखाया है कि दिखायी देने वाले इस प्रतिभासित क्षणभंगुर जगत् में उस महान् सत्य का दर्शन करो। उनकी महिमा का गान करते हुए सदा उनके दिव्य नाम का स्मरण करो। दिव्य नाम पवित्र करने वाला और मुक्ति दिलाने वाला है, उन्हीं के विचार में निमग्न रहो।

वास्तव में इसी प्रकार से उन्होंने हमें प्रार्थना करना सिखाया था जैसे कि दिव्य गुरु ईसा ने हमें प्रार्थना करना सिखाया है कि बालक अपने पिता को सम्बोधन करता है, वैसे ही हम स्वयं सीधे-सीधे अपने शाश्वत स्रोत, हमारी सत्ता के उद्‌गम को सम्बोधन करते हैं—"स्वर्ग में रहने वाले हमारे पिता, आपका नाम ले कर हम आपको प्रणाम करते हैं। आपका नाम ही कल्मषहारी है। आपका साम्राज्य हो। स्वर्ग की भाँति धरा पर भी आपकी इच्छापूर्ण हो।" यह हमारे मन, बुद्धि तथा चित्त में बस जाये। "हमारी दैनिक रोटी आज हमें दीजिए। हमारे प्रति अमर्यादित अपराधकर्ता को जैसे क्षमा कर देते हैं, वैसे ही आप हमारे अपराधों को क्षमा करें। हमें सारे प्रलोभनों से बचायें, सारी बुराइयों

से हमें दूर रखें; क्योंकि आपका ही साम्राज्य है, आपकी ही शक्ति है और महिमा भी सदा आपकी ही है।'' इस प्रकार से उन्होंने हमें प्रार्थना करना सिखाया और हमारे समय में गुरुदेव ने हमें प्रार्थना करना सिखाया—

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव!
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।

हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें।
तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें।

इस प्रकार हमारे समय में हमारे गुरु ने हमें सीधे-सीधे उस सत्ता को सम्बोधन करना सिखाया जो अपरिवर्तनशील नित्य व्याप्त शाश्वत सत्य है जो दिखायी देने वाले प्रतिभासित परिवर्तनशील जगत् में हमारे नित्य परिवर्तित होने वाले अस्थायी नश्वर शरीरों के मध्य रहता है। वह ऐसा सत्य है जो हमारे नित्य घटते-बढ़ते नित्य चंचल मन में रहता है—चंचल मन में सुस्थिर तत्त्व वह एक अन्तर्यामी ही है। **''ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति''** (ओ

अर्जुन! ईश्वर सबके हृदय में निवास करते हैं)—सदा स्थिर सदा शान्त आध्यात्मिक सिद्धान्त और सारतत्त्व, चंचल और अशान्त मन में रहता है।

इस बुद्धि में उस सत्ता की उपस्थिति सदा प्रदीप्त रहती है, जो कभी-कभी विवेक से, आध्यात्मिक प्रश्न-परिप्रश्न से सतर्क रह कर चमकती है। कभी-कभी मूर्खता के अधीन हो कर आध्यात्मिक उदासीनता, अविवेक के वश में आध्यात्मिक विस्मृति, अविचार, अविवेक के अन्धकार में लिप्त हो जाती है। इस प्रकार मन और बुद्धि के बीच वह सदा प्रदीप्त रहती है। **''ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते; ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्''** (वह प्रकाशों का प्रकाश अन्धकार से परे कहा गया है; ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञान का लक्ष्य सभी के हृदय में निवास करता है)। अन्तर में ईश्वर का साम्राज्य है, स्वर्ग का साम्राज्य अन्तर में ही है। यह ईश्वर की आत्मा है। इस शरीर-भवन में जो प्रकाश है, वह सदा चमकता रहता है। वह प्रकाश धुँधला नहीं, वरन् प्रदीप्त तेज है जो मानव-व्यक्तित्व में सदा ज्योतित रहता है।

उन्होंने हमें सिखाया कि हम स्वयं उस सत्ता को सीधा सम्बोधन करें—''हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव! आप सबके अन्तर्वासी हैं।'' ''स्वर्ग में निवास करने वाले हमारे पिता. . .स्वर्ग के समान ही आपकी इच्छा-पूर्ति धरती पर हो जाये!'' आपकी इच्छा को हमारी इस धरती पर आने दो और आ कर हमारी इन्द्रियों का मार्ग-दर्शन करने दो। हमारी इन्द्रियों को आपकी इच्छा का, आपके निर्देश का, आपकी आध्यात्मिक घोषणाओं का पालन करने दो। हमारा शरीर, इसकी आवश्यकताएँ और गतिविधियाँ और हमारा मन आपकी इच्छा के अनुरूप हो, आपके उपदेशों का पालन करे।

आपके इस साम्राज्य की यहाँ और अभी होने की यही उपयोगिता है। दिव्य शक्ति की इच्छा का धरती पर आ जाना, धरती पर मानव-व्यक्तित्व की प्रवृत्तियों का यही अर्थ है अपनी प्रवृत्तियों को तुच्छ क्षुद्र इच्छाओं के वश में नहीं, ईश्वर की इच्छा के मार्ग-दर्शन और दिशा-निर्देश में चलने दो। न ही हम उनसे मार्ग-दर्शन पायें जिनके हम किसी कारणवश मोहवश दास हो गये हैं और उनके हाथ का खिलौना बन जाते हैं। तब ईश्वर नहीं, हमारा अन्धा प्रेम ही

व्याप्त होता है। हमारी अपनी इच्छा ही अभिभूत रहती है, ईश्वर नहीं। व्यक्ति या तो स्वार्थवश पराजित होता है अथवा मोहवश, दूसरों की भौतिक इच्छाओं के मार्ग-दर्शन में दासता को प्राप्त होता है।

राजनीतिक नेता के पद, उसकी शक्ति और स्थिति के लिए समर्थन देने वाले के लिए वह राजनेता उनका दास हो कर अपनी आत्मनिष्ठा खो देता है। वह जानता है कि क्या उचित है; पर करता वह है जो अनुचित है। वह अपने समर्थकों, मतदाताओं और अपने दल का दास हो जाता है जो उसे उसकी शक्ति, सत्ता और उसके पद पर बनाये रखते हैं। वे जिस तरफ उसे खीचेंगे, वह उधर ही जायेगा। ऐसा लगता है कि वह स्वयं अपनी शक्ति को नियन्त्रित न करके किसी और की शक्ति से चलता है।

इसी प्रकार मठवासी, स्वामी, महामण्डलेश्वर अपनी ही संरचना के दास हो जाते हैं। वे अपने द्वारा संस्थापित अपने चारों ओर उठ खड़ी हुई संरचना में काम करते हैं। निश्चित रूप से लौकिक व्यक्तियों के लिए सांसारिक प्रभावों से अपने-आपको मुक्त कर पाना और भी कठिन है। इसी प्रकार राजनेताओं को अपने समर्थकों से और आध्यात्मिक व्यक्तियों, महामण्डलेश्वरों को अपने द्वारा संस्थापित संरचना से मुक्ति पाना अत्यन्त कठिन है। उनकी अपनी प्रतिष्ठा, उनकी शक्ति का स्थान, उनकी पहचान, उनके हृदय की सरलता, उनके संन्यास की सत्यनिष्ठा, उनकी अनासक्ति सबको बनाये रखना बहुत कठिन है।

केवल ईश्वर की कृपा से ही मठाधिपति संस्थागत संरचना के मध्य प्रामाणिक बना रह सकता है। केवल ईश्वर की ही कृपा से ही राजनेता के अन्दर वह साहस और शक्ति आती है कि वह उदात्त् नैतिक सिद्धान्तों, नैतिक आदर्शों पर टिके रह कर राजनीतिक जीवन और क्रियाओं में खरा उतरता है। और निश्चित रूप से जो व्यक्ति सांसारिक प्रभावों से बचना चाहते हैं तथा अपनी चेतना की आवाज सुन कर, उनके आन्तरिक विश्वासों के आधार पर तथा हमारे पूर्वजों द्वारा स्थापित उच्च आदर्शों पर कार्य करना चाहते हैं, उनके लिए यह कर पाना बड़ा कठिन है।

यही है जीवन का संघर्ष! इन्द्रियों की वासनाएँ, मनोकामनाएँ, स्वच्छन्द वृत्ति, कल्पनाएँ, स्पृहाएँ, तृष्णाएँ, आकांक्षाएँ और छल-कपट आदि जो मानवीय व्यक्तित्व में अतिरिक्त तत्त्व हैं, इनसे भिन्न मूल प्रकृति की यथार्थता को युक्तिसंगत बनाये रखना हमारे लिए एक चुनौती है, एक सच्चा अभ्यास है।

यही साधना है। यही सबसे बड़ा अभ्यास है कि दिव्यता में सुस्थिर रह कर दिव्यता के मार्ग-दर्शन में चलें। केवल दिव्यता के सत्य को पहचानें। दिव्यता से हट कर जो-कुछ है, उसे गौण स्थान पर रखें। इसी शक्ति को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करें। बुराइयों से हमें दूर रखो। हम इनके प्रभाव और इनके आकर्षण के वशीभूत न हों। जो आकर्षण दिव्यता और आदर्शों से हट कर है, लक्ष्य की ओर जाने वाली दिशा के विपरीत है, उस पर हमारा ध्यान न जाये।

दूसरी दिशा के अनेक प्रकार के आकर्षणों और बाधाओं के बीच ईश्वर तुम्हें किस प्रकार का मानव देखना चाहते हैं, ईसामसीह चाहते हैं कि तुम कैसे बनो, गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी तुम्हें जैसा मानव बनाना चाहते हैं, उन्होंने स्पष्ट रूप से हम सबसे वही बनने को कहा है। इससे क्या सिद्ध होता है कि हमारी प्रामाणिकता, विशुद्धता, हमारी आध्यात्मिकता, नैतिकता ही हमारी अग्नि-परीक्षा है। यही कसौटी है। वह कितना उनका सामना या कितना उसका विरोध करने के योग्य है तथा कितना उस पर विजय पा सकता है। पुनरपि अपने वास्तविक स्वरूप में रह सकता है—यही अग्नि-परीक्षा है।

ईसा की शिक्षाओं की प्रासंगिकता केवल चर्च और बाइबिल के शब्दों तक ही सीमित नहीं है। उनकी शिक्षाओं की प्रासंगिकता इस तथ्य पर आधारित है कि वे एक नित्य वर्तमान विद्यमानता हैं, वे शाश्वत साक्षी हैं; एक ऐसा साथी हैं जो सदा हमारे साथ चलता है, हमारे साथ रहता है और जो हमारी गति को, हर विचार को, अन्दर और बाहर से ध्यान से देखता है। उनके दिव्य व्यक्तित्व की इसी विद्यमानता ने उसके समकाल को अभी तक जीवित रखा है और शक्तिशाली रूप से विद्यमान है।

ईसामसीह मृत नहीं हैं। बुद्ध मृत नहीं हैं। जो महान् आत्माएँ ब्रह्मलीन होती हैं, वह मरती नहीं हैं। वे शरीर से बाहर निकल कर सदा वहीं रहती हैं,

सर्वव्याप्त रहती हैं। जो उनके साथ अपने सम्बन्ध की पहचान करते हैं तथा जिन्हें उनकी जहाँ-कहीं भी आवश्यकता होती है, वे सारी दिशाओं में उनके पास रहती हैं। गुरु शाश्वत हैं। दिव्य शिक्षक शाश्वत हैं। ईसा तथा उनके द्वारा चलाये गये धर्म तथा उनकी शिक्षाएँ सभी की प्रासंगिकता उनकी दैवी उपस्थिति में है। जगत् में उनकी उपस्थिति यहाँ, अभी तथा सब कहीं सदा रहेगी।

इस प्रकार जो शिष्य है, जो श्रद्धावान् है, जो अपने मन, वचन और कर्म से उनके आह्वान का उत्तर देता है "मेरा अनुगमन करो", जो अनुगामी है, वह इसी कसौटी पर अपना आचरण परखता रहता है —"यदि ईसा इस समय मेरे पास होते या मैं उनके साथ चल रहा होता, इस विशेष स्थिति में मैं क्या करता? वह उस समय, उस घड़ी, उस स्थिति में मुझसे किस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा रखते? तुम्हारा जीवन और तुम्हारे रहने का ढंग इस प्रश्न के उत्तर के रूप में होना चाहिए। इसी कसौटी के आधार पर व्यक्ति को अपने चरित्र, अपने आचरण और अपनी क्रियाओं को कसना चाहिए। ईसाई धर्म का यही सार है। सच्चे विश्वास का यही सार है। निश्चित रूप से अपनी हर साँस के साथ उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए।

क्रिसमस की पूर्व-सन्ध्या पर इसी सत्य का चिन्तन करें। ईश्वर करे, ईसा हमारी जीवन-पद्धति के जीवन्त स्वरूप हो जायें। तब निश्चित रूप से क्रिसमस हमारे नये जीवन के प्रकाश और समझदारी का अर्थपूर्ण केन्द्र-बिन्दु हो जायेगा। "उठो! मेरा अनुगमन करो।" **"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत"** (उठो, जागो, श्रेष्ठजनों के समीप जा कर बोध प्राप्त करो)।

६६

ईश्वर जहाँ, स्वर्ग वहाँ

पूजनीय ब्रह्माण्डीय सत्य जिनका विस्तार सारे अन्तरिक्ष में है, सारे अस्तित्व को अपने अन्दर समेटे हुए हैं तथा जो सारे प्राणियों में बसते हैं, जो नित्य होते हुए भी सदा अनित्य में निवास करते हैं, जो हैं अविनाशी पर नित्य विनाशी में बसते हैं, उनको हमारी श्रद्धांजलि। **"समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्। विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति"** (जो परमेश्वर को समान रूप से देखता है और विनाशी में अविनाशी को देखता है, उसी का देखना सार्थक है)।

हे स्वामी! हमें ऐसी दृष्टि प्रदान कीजिए जिससे हम इस योग्य हो जायें कि जो नित्य शाश्वत, सदा विद्यमान, जो छिपा हुआ, प्रच्छन्न, रहस्यमय, गूढ़ होते हुए भी अशाश्वत, अस्थायी, क्षणभंगुर में बसता है, उसे हम देख सकें। उस शाश्वत तत्त्व को हम काल के रूप में देखें, हम अप्रकट को प्रकट रूप में देखें, हम गुह्य को उसमें देखें जो दीख रहा है। **"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः"** (ईश्वर एक ही हैं, वह सारे प्राणियों में छिपे बैठे हैं)। हम निराकार को सब नाम-रूपों में देखें।

इस प्रकार उन्हें देख कर, पहचान कर सभी वस्तुओं में ईश्वर के हस्ताक्षर देख कर हम उनकी उपस्थिति को हर समय देखने की चेतना का विकास करें। हम इस भौतिक संसार में निहित दिव्यता के विस्तार को देखने का ज्ञान प्राप्त कर लें जिससे हम इस योग्य हो जायें कि हम अपने अस्तित्व को ईश्वर के साथ रहते हुए, उनके साथ चलते हुए अनुभव कर सकें। हमें अभी यहीं ईश्वर के साम्राज्य को पहचानने के योग्य बनने दो। "हो सकता है, मेरा शरीर भौतिक तत्त्वों से बना हुआ हो; पर मैं सदा यहीं अभी ईश्वर के साम्राज्य में, यहीं अभी स्वर्ग-साम्राज्य में रहूँगा।"

जागृत साधक की चेतना का आन्तरिक विकास इसी रूप में होने दो। यद्यपि वह ईश्वरानुभूति के लिए संघर्ष कर रहा है, पुनरपि उसने सत्य की चेतना का विकास करना प्रारम्भ कर दिया है। उसे धर्मोत्साह के भाव, श्रद्धा के साथ, भाव-विह्वल हो कर, दृढ़-निश्चय के साथ मन-बुद्धि-चित्त से उसको प्राप्त करना है—**''मामेवानुस्मर. . . मयीबुद्धिंनिवेशय. . .तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत''** (ओ अर्जुन! अपने मन और अपनी पूरी सत्ता के साथ मुझमें शरण लो, केवल मुझे ही याद करते हुए अपनी बुद्धि मुझमें लगाओ)। यही ईश्वर-प्रणिधान है (ईश्वर के प्रति भक्ति है)। पृथ्वी पर रहते हुए भी यह ईश्वर में रहने, स्वर्ग में रहने के समान है।

जहाँ स्वर्ग है, वहाँ ईश्वर है—यह सत्य नहीं है। सत्य यह है कि जहाँ ईश्वर रहते हैं, वहीं स्वर्ग होता है। इसीलिए तुम जागृत, बुद्धिमान् होने के कारण, तुम प्रत्यक्ष बोध-सम्पन्न, शास्त्रज्ञान-सम्पन्न, विवेक-सम्पन्न होने के कारण आसानी से इस तथ्य को समझ सकते हो कि ऐसा नहीं है कि जहाँ स्वर्ग है, वहीं ईश्वर है। तुम ईश्वर को किसी स्थान-विशेष पर सीमित नहीं रख सकते। इसके विपरीत ईश्वर जहाँ हैं, वहीं स्वर्ग है। और ईश्वर यहाँ हैं, ईश्वर सर्वव्यापक हैं तथा वे ही पूर्ण सत्य हैं। इसलिए हम सदा स्वर्ग में हैं, सदा ईश्वर में हैं, सदा उनके साम्राज्य में हैं। इस सत्य की जागरूकता की आवश्यकता है, उस तथ्य के लिए नहीं, जिसका अस्तित्व ही नहीं है।

''आपके साम्राज्य को आने दो।'' जब हम इस प्रकार से प्रार्थना करते हैं, यह प्रार्थना आन्तरिक जागृति के लिए है, नित्य उपस्थित सत्य के लिए है। यह प्रार्थना उसके लिए नहीं है जिसका अस्तित्व इस समय नहीं है। जब हम नहीं थे, सर्वव्यापक ब्रह्माण्ड की उपस्थिति के रूप में ईश्वर का अस्तित्व तब भी था। अब जब हम हैं, उसके समान सर्वव्यापक ब्रह्माण्डीय उपस्थिति के साथ ईश्वर भी इस महान् तथ्य के रूप में हैं, यहाँ तक कि यदि हम यहाँ न भी रहें, तब भी ब्रह्माण्डीय दैवी उपस्थिति के रूप में ईश्वर का अस्तित्व रहेगा। इस प्रकार हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि इस शाश्वत सत्य की हमारे अन्दर ऐसी पहचान आ जाये, कि वह हमारे अन्दर निवास करते हैं और हम उनमें स्थित हैं—ईश्वर

तुममें हैं और तुम ईश्वर में हो। हे ईश्वर! हमें इस सत्य को पहचानने की शक्ति दो!

गुरुदेव की आध्यात्मिक उपस्थिति में इस प्रात: वेला में प्रार्थनाओं के साथ सम्मिलन से नित्य उपस्थित ईश्वर की शान्ति तुम्हारे मन-मस्तिष्क में, तुम्हारे पूरे अस्तित्व में छायी रहती है। ईश्वर करे, शान्ति का प्रवाह तुम्हारी चेतना में छा जाये। ईश्वर करे, तुम शान्ति में निवास करो। ईश्वर करे, तुम शान्ति बाँटने के लिए शान्ति में जियो। ईश्वर करे, तुम शान्ति का महत्त्व समझ कर दूसरों के लिए शान्ति की प्रार्थना करो। दूसरों के लिए इसकी इच्छा करने से तुम्हारा मन आनन्द से भर उठेगा। जहाँ ईश्वर हैं, वहीं चिरस्थायी आनन्द है। ब्रह्म ही आनन्द है। आरम्भ में ब्रह्म था, अभी ब्रह्म है, ब्रह्म का अस्तित्व सदा रहेगा। इसलिए आरम्भ में परमानन्द था, अभी परमानन्द है, संसार के अन्त होने तक परमानन्द का अस्तित्व रहेगा।

आज के दिन सारा संसार बड़े दिन के लिए जागता है। मैं आप सबके लिए शान्ति की कामना करता हूँ। इस पावन उषाकाल में मेरी शुभकामनाएँ आप सबके लिए आनन्द-प्राप्ति की हैं। मेरी आप सभी से यह प्रार्थना है कि आप अपने जीवन में इस प्रकार से रहें कि आपके लिए ईश्वर की इस आनन्दमयी धरती पर शान्ति की अविरल धारा प्रवाहित होती रहे। ईश्वर करे, आप अपने सभी मित्रों, सम्बन्धियों के साथ शान्ति का आदान-प्रदान करें। सबके मन में यही शुभेच्छा हो कि सभी आनन्दमय रहें। **''सर्वेषां शान्तिर्भवतु''** (सभी प्राणियों में शान्ति हो)। तुम स्वयं तथा दूसरों को भी इस प्रार्थना के लिए जागरूक बनाओ। ईश्वर करे, नित्य उपस्थित स्वर्ग के साम्राज्य की अन्तर्निवसित शान्ति तुम्हारे अन्दर विकसित हो, उससे तुम्हारे चारों ओर का वातावरण शान्तिमय हो उठे, तुम दिन-प्रतिदिन अपने प्रत्येक विचार, भाव, शब्द और क्रिया से उन्हें उपहार-स्वरूप बाँटो। तुम्हारा जीवन और तुम्हारी प्रत्येक क्रिया इस संसार में तुम्हें शान्तिदूत, शान्ति का दूत बना दे। ईश्वर करे, इस संसार में तुम्हारे जीवन की गति सबके लिए आनन्द का स्रोत

बन जाये। मैं यह प्रार्थना आप सभी को आज बड़े दिन के उपहार-स्वरूप भेंट करता हूँ।

ईश्वर की उपस्थिति के इस सत्य को तथा स्वर्ग के साम्राज्य का अस्तित्व हमारे सबके चारों ओर अभी यहीं है, इसे सुना जा सकता है। इस पर विचार करना चाहिए तथा इस पर ध्यान करना चाहिए जिससे ईश्वर के आनन्द में तुम भी आनन्दित हो सको। तुम सबको शान्ति देने के लिये जी सको। जब तुम स्वयं शान्ति में स्थापित हो जाओगे, उससे तुम्हारा विवेक जाग्रत होगा। ईश्वर करे, परमात्मा और सारे सन्त और मध्य एशिया के देदीप्यमान गुरु पैगम्बर नज़रथ, वह बालक जिसने बैथलहम में दो हजार साल पहले जन्म लिया था, ज्ञानी गुरु जिन्होंने हमें 'पर्वत-प्रवचन' (Sermon on the Mount) दिये, ईश्वर करे वह अस्तित्व सदा तुम्हारे साथ-साथ चले। ईश्वर करे, उस सत्ता के ज्ञान की शिक्षाएँ तुम्हारे पथ को प्रकाशित करती रहें और ईश्वर करे, उनका प्रदीप्त जीवन, उदात्त आदर्श तुम्हारे लिए अनुकरणीय उदाहरण बन जाये तथा अब जो तुम्हारी स्थिति है, धीरे-धीरे एक-एक चरण उन्नति की ओर बढ़ कर तुम ऊपर उठते जाओ। वह तुम्हें पूर्ण, मुक्ति और प्रकाशित करने की पराकाष्ठा पर ले जायेंगी।

तुम सबको ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त हो। उनके सारे पैगम्बर, सन्देशवाहक तुम्हें आशीर्वाद दें। ईश्वर करे, तुम ऐसी शान्ति और आनन्द प्राप्त करो जिसे वे मानव-जाति को अपने जीवन, अपनी शिक्षाओं और अपने उदाहरणों से उन्हें ज्ञानवान् बनाने के लिए धरती पर आये थे। ईश्वर करे ईसामसीह का प्रेम और आशीर्वाद; ईश्वर करे प्रिय पावन गुरु, गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी का प्रेम और उनकी मंगलकामना तुम्हारे जीवन को दिव्य बना कर, कहीं दूर भविष्य में नहीं, किसी और दूसरे साम्राज्य में नहीं प्रत्युत अभी, यहीं तुम्हारे जीवन की हर घड़ी में तुम्हें शान्ति का अनुभव प्राप्त करायें।

६७

व्रत–उपवास का आध्यात्मिक महत्त्व

आज एकादशी है। आज के दिन मनुष्य उपवास करते हैं। क्यों? क्योंकि यह परम्परागत धार्मिक अवसरों में से एक है। ऐसे अवसर अनेक हैं। उनमें से कुछ उत्सवों के रूप में हैं; जैसे दीपावली जिसमें मनुष्य आनन्द मनाते हैं, नये वस्त्र पहनते हैं, विशेष प्रकार के भोज्य-पदार्थ बनाते हैं, आपस में मंगल-कामनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। उनमें से कुछ विशेष दिन के रूप में पूजे जाते हैं; जैसे शिवरात्रि, रामनवमी, जन्माष्टमी और नवरात्रि जिनकी मुख्य विशेषता किसी देवता के एक-न-एक पक्ष की पूजा करना होता है। उसके पश्चात् दूसरे विशेष धार्मिक अवसर होते हैं, उन्हें व्रत-उपवास के अवसर कहा जा सकता है।

व्रत एक ऐसी प्रतिज्ञा है जिसका पालन हम किसी धार्मिक अवसर पर विशेष रूप से करते हैं। सामान्यत: व्रत किसी एक वस्तु को छोड़ देना अथवा किसी इन्द्रिय-आवेग पर अंकुश रखने के लिए होता है। बहुधा यह उपवास के रूप में कभी-कभी रात्रि-जागरण करके भी होता है।

हम किसी विशेष दिन की पूजा को आसानी से समझ सकते हैं; क्योंकि पूजा हमें ईश्वर के साथ एक होने का अवसर प्रदान करती है। हम त्योहारों के विषय में भी आसानी से समझ सकते हैं। मनुष्य सदा आनन्द मनाने के अवसरों की चाह करता है। आनन्द मनाने के अन्य अवसर भी निकाल लेता है जैसे विवाह की वर्षगाँठ, जन्मदिन आदि। मनुष्य का स्वभाव ही आनन्द मनाने का है, पर व्रतों के बारे में जानना कठिन है जैसे एकादशी, यह मानव-स्वभाव के किसी प्राकृतिक आवेग पर नियन्त्रण करने के लिए बना है।

प्राकृतिक आवेगों पर वास्तव में किसी प्रकार का अंकुश हमारे उच्च पक्ष को प्रकट करने का अवसर दे कर सूक्ष्म और उच्च शक्ति का संकेत देता है। यह

हमारी संकल्प-शक्ति, इच्छा-शक्ति अथवा आध्यात्मिक शक्ति भी हो सकता है। निम्न आवेगों पर अंकुश रखने के लिए, उन्हें संयमित करने के लिए, उन्हें दबाने के लिए, उच्च शक्ति का यह अभ्यास रूप है।

एवंविध उच्चतर संकल्प और निष्ठा द्वारा स्व-चेतना को उच्चतर शक्तियों के साथ एकाकार होने के स्तर तक उन्नत करने का यह एक उपाय है। उच्चतर शक्ति के साथ तद्रूप होने के पश्चात् उस कालावधि में चेतना स्थूल शरीर, पंचकोष अथवा चेतना की सामान्य अवस्था के निम्न आवेगों और निम्न उत्तेजनाओं से तदाकार न हो कर उनसे परे रहती है।

चाहे हमें वेदान्त कण्ठस्थ हो, चाहे हम यह कहते हों कि 'मैं न मन हूँ, न बुद्धि; मैं तो अमर आत्मा हूँ।' हमारे ऐसा कहते हुए भी हम पूर्ण रूप से अपनी निम्न वृत्तियों से एकत्व बनाये रखने की अवस्था में हैं। हमारी चेतना का घनिष्ठ सम्बन्ध सदा हमारे शरीर से, हमारी इन्द्रियों की भूख से तथा उसकी उत्तेजनाओं से रहता है। हमारे मन के साथ उसका सम्बन्ध इच्छाओं, ललक, आकांक्षाओं, योजनाओं, कल्पनाओं के रूप में रहता है। जगद्गुरु आदि शंकराचार्य भी यही कहते हैं कि अनात्मा और उपाधियों से तुम्हारा एकत्व है।

तुमसे सदा कहा जाता रहा है कि तुम अनात्मा से भिन्न हो, तुम तीनों शरीरों से भिन्न हो, तुम पाँचों कोषों से भिन्न हो। तुम शास्त्र पढ़ते हो और प्रवचन सुनते हो, लगता है तुम्हारी चेतना में परिवर्तन आ गया है। पर जब तुम अन्य अनेकों व्यक्तियों के बीच जाते हो, अनेकों आकर्षक वस्तुओं के सम्पर्क में आते हो, तब वह सारे अनुभव क्षीण हो जाते हैं। तुम फिर से वहीं-के-वहीं आ जाते हो। तुम्हारी मूल प्रकृति तुम्हारी आत्मा से तद्रूप न हो करके वह ऐसी स्थिति में आ जाती है जिसमें सीमित निम्न से तुम एकाकार हो जाते हो।

साधकों को उनकी चेतना को उच्च स्तर पर लाने के लिए उन्हें समय-समय पर व्रतों के माध्यम से विशेष सुविधा दी गयी है जिससे चेतना को इसकी दासता से मुक्त करने के लिए, इस स्तर से ऊपर उठने के लिए अवसर प्राप्त हो सके। जब कि पतंजलि ऋषि के यम और नियम सदा से प्रचलित उपाय रहे हैं जिनसे चेतना को ऊपर उठाया जा सकता है। जिन यम-नियमों का पालन

पहले से होता रहा है, उसमें वृद्धि करने के लिए, उसे आगे बढ़ाने के लिए एकादशी का व्रत एक विशेष प्रक्रिया है।

चेतना के उन्नयन हेतु यम, नियम और योग-विज्ञान साधक को एक निश्चित और सफल साधन प्रदान करते हैं जिससे अन्ततोगत्वा यह (चेतना) ऊर्ध्वारोहण के क्रम में और उत्कृष्टतर स्तर पर पहुँच सके। यम और नियम चेतना को इन्द्रियों और इन्द्रिय-विषयों से एकरूपता की अवस्था से, मन, उसकी इच्छाओं और उसके आवेगों से एकरूपता की अवस्था से तथा मानवीय व्यक्तित्व के निम्न स्तर से एकरूपता की अवस्था से आध्यात्मिक आयाम, आध्यात्मिक स्तर तक उन्नत करते हैं जहाँ तुम स्वयं को निज सामान्य व्यक्तित्व से ऊपर, परे और श्रेष्ठतर रूप में जान सकते हो।

इस प्रकार व्रत के विषय में भी ज्ञान अनिवार्य है। यह केवल भोजन और नींद से वंचित रह कर शारीरिक प्रक्रिया मात्र नहीं रहेंगे; बल्कि इनका वास्तविक अर्थ आन्तरिक, उच्च, सूक्ष्म और आध्यात्मिक प्रक्रिया बन जायेंगे। इसलिए व्रतों का सम्बन्ध केवल इन्द्रियों और मन से ही नहीं है। इनका सम्बन्ध तुम्हारी चेतना से, जीवन के आदर्श से, तुम्हारे लक्ष्य ईश्वर से अर्थात् सर्वस्व-प्राप्ति से है।

६८

भगवान् विश्वनाथ की सच्ची अर्चना

पूजनीय सर्वोच्च शाश्वत अलौकिक सत्य जो विश्वनाथ मन्दिर में भगवान् विश्वनाथ के रूप में प्रकट हुए हैं, उन्हें श्रद्धांजलि। ईश्वर करे, भगवान् विश्वनाथ जिनकी प्राण-प्रतिष्ठा १९४३ में प्रिय पूज्यनीय पावन गुरु श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने की थी, उसके वार्षिक उत्सव पर भगवान् विश्वनाथ के प्रकट रूप की सर्वोच्च कृपा हम सबके ऊपर हो। उनका आशीर्वाद तुम्हें यह आभास कराने के योग्य बनाये कि तुम ईश्वर को अपने शरीर-रूपी मन्दिर में बाह्य मन्दिर के ईश्वर की पूजा के माध्यम से अनुभव कर सको। तभी बाह्य मन्दिर में पूजा की सार्थकता है।

यह शरीर भगवान् का पावन मन्दिर है। यह शरीर शाश्वत सत्ता का चलता-फिरता जीवन्त मन्दिर है। ईश्वर तुम्हारे सबके अन्तरतम में आत्म-सत्य के रूप में बैठे हुए हैं। अन्तर्निहित आत्म-तत्त्व के रूप में भगवान् तुम्हारे भीतर विराजमान हैं। तुम्हारा आत्म-तत्त्व लघु अनित्य व्यक्तित्व नहीं है जो 'मैं' उपाधि से युक्त नाम, रूप, शरीर और वेश वाला है और जो इच्छा-अनिच्छा, आसक्ति-अनासक्ति से जुड़ा हुआ है।

असत्य मिथ्या आत्म-तत्त्व पर जब तक मनुष्य सत्यारोपण का त्याग नहीं करता, इस अनात्म-तत्त्व के साथ तद्रूपता का विच्छेद नहीं करता, कठोर अभ्यास, अनवरत प्रतिज्ञा (दृढ़-निश्चय) और सतत सक्रिय दैनिक विवेक द्वारा 'अहं' भाव से ऊपर नहीं उठता, तो इस भौतिक जीवन में साक्षात्कार असम्भव है।

क्योंकि शरीर में सत्य का आभास अपने केन्द्र-बिन्दु से हटने के समान है। शरीर को सत्य मान कर हमारा मन पहले से ही बहिर्मुखी हो चुका है। बहिर्मुखी होने के लिए उसे तुम्हारे शरीर से परे बाह्य जगत् में जाने की

आवश्यकता नहीं है। अपने चारों ओर के जगत् के प्रति तुम्हारी विस्मृति होने पर भी यदि तुम्हारा मन बाहर जाता है, शरीर को देखता है और उसे सत्य मानता है, तो मन पूर्वत: ही बहिर्मुखी है; क्योंकि शरीर आपसे बाह्य है।

तुम शरीर के अत्यभ्यन्तर वासी हो। देह का विचार ही उस (आत्म-तत्त्व) से पृथक् है, बाहर है। जब तुम शरीर के प्रति जागृत हो जाते हो और तुम्हारी चेतना देहाध्यास की स्थिति में आ जाती, तब तुम आत्म-केन्द्रित, आत्मस्थ नहीं हो सकते। आप कुछ भी न सोच रहे हों; किन्तु चेतना यदि इस अवस्था में है कि 'मैं यह हूँ', तो तुम पहले ही बहिर्मुखी हो चुके हो। अत: तुम्हारी चेतना की समग्रता आभ्यन्तर सत्य में लीन होनी चाहिए।

विश्वनाथ मन्दिर भले ही तुम्हारे लिए बाहर हो; पर विश्वनाथ तुम्हारे अन्तर में निवास करते हैं। "**सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानि सहितं नमामि**"—मैं भगवान् शिव और उनकी ब्रह्माण्डीय आद्य शक्ति के प्रति नमित हूँ जो सदा मेरे हृदय में निवास करते हैं। इसीलिए विश्वनाथ, विश्वनाथ मन्दिर में नहीं बसते हैं। विश्वनाथ तुम्हारी अन्तरतम आत्मा के रूप में तुम्हारे अन्दर निवास करते हैं। "ओ अर्जुन; मैं सभी प्राणियों के हृदय में निवास करता हूँ।"

ईश्वर को अपने अन्दर बसने वाले सत्य के रूप में अनुभव करो। अनुभव करो कि तुम्हारा शरीर चलता-फिरता मन्दिर है और अपने शरीर-मन्दिर में बैठे हुए प्रभु की पूजा ध्यान, प्रार्थना, मौन, जप, प्रशान्त आन्तरिक ध्यान करो। तुम्हारे आन्तरिक केन्द्र जहाँ वे बैठे हैं, उस स्थान की गन्दगी को जो उनके अनुकूल नहीं है, उसे साफ कर दो, वास्तविक आत्मा को अपने से अलग न मान कर अपने-आपको पवित्रता के भाव से भर दो।

यह घोषित किया जा चुका है कि यह शरीर भगवान् का निवास स्थान है और निश्चित रूप से तुम उस अन्तरस्थ सत्य के तद्रूप हो। तुम उनका अनुभव नहीं कर पाते हो; क्योंकि तुम्हारे मन में बहुत-कुछ ऐसा है जो स्वच्छ, पावन और पवित्र नहीं है। उसे हटाने की आवश्यकता है, जो उनकी उपस्थिति के अनुकूल नहीं है। इसलिए अपवित्र को हटा कर उनकी पूजा करो। मन्दिर का

पुजारी भी प्रतिदिन यही करता है, जब वह मन्दिर में प्रवेश करता है तो पूर्व-दिवस के पूजा के अवशेष हटाता है।

इसीलिए गुरुदेव तथा अन्य अनेकों महान् आत्माओं ने ईश्वरोपलब्धि के पथ पर जाने के लिए कहा है—"पवित्रता, एकाग्रता, ध्यान द्वारा साक्षात्कार करो।" पवित्रीकरण के लिए शंकराचार्य ने कहा है—" पहले अपने मल को दूर करो, उसके बाद विक्षेप, फिर आवरण दूर करो।" उपवास, विभिन्न स्तरों पर आत्म-शुद्धि की प्रक्रिया में प्रार्थना, व्रत, मिताहार, सादगी, संयम, तप करने का यही महत्त्व है।

अपने-आपको शुद्ध करके, एकाग्र भाव से ध्यान करके उन्हें प्राप्त करो। अपनी सारी अपवित्रताओं को दूर करके उनके इस जीवित-जागृत मन्दिर में उनकी पूजा करो। उनकी उपस्थिति का अनुभव करो। उनका ध्यान करके सबसे उच्च प्रकार की पूजा करो। उनके नाम का जप करके, उनका स्मरण करके, मन-मन्दिर शुद्ध रख कर, उन्हें सभी नाम-रूपों में देख कर उन सबका समान रूप से आदर करो।

ईश्वर करे, आज के दिन की पूजा, वर्ष में एक बार होने पर भी तुम्हारे मन में यह भाव जगाती है, वह जागरूकता की ऐसी दृष्टि लाती है कि यह जागरूकता आने वाले वर्ष के बारहों महीने यह भाव तुम्हारे मन में बना रहे। वर्ष-भर तुम्हारा मन ईश्वर के प्रति जागरूक बना रहे। पूजनीय गुरु श्री स्वामी शिवानन्द जी के हाथों भगवान् की प्राण-प्रतिष्ठा के वार्षिक उत्सव में सम्मिलित होने का प्रभाव तुम पर पड़े।

हमें सदा इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि भीतर बैठे भगवान् की पूजा के लिए कोई समय, दिशा, प्रतिबन्ध तथा पूर्व-अनुकूलता की आवश्यकता नहीं है। इसलिए हर समय, सभी परिस्थितियों में, बिना किसी प्रतिबन्ध के उनकी पूजा कर सकते हो; क्योंकि जहाँ तुम हो, वह भी सदा वहाँ हैं। वह नित्य रूप से अनित्य शरीर में हैं। हर शरीर में अक्षर का निवास है।

उस जागृति में रहना मानो मन्दिर में रहना है जो सदा पावन स्थल है। ''आराध्य सर्वव्यापक देव! आशीर्वाद दो कि हम यहीं अभी आपकी विद्यमानता का आभास कर सकें। आपसे यही प्रार्थना है।''

६९

संकल्प करो

परमात्मा की दिव्य धन्य सन्तान! जन्म-मृत्यु-रूपी संसार में किसी भी कारणवश इस मनुष्य-रूप में अस्थायी रूप से आयी देदीप्यमान आत्माओ!

स्थूल, मर्त्य, भौतिक शरीर-रूपी वस्त्र धारण करके अमर्त्य (आत्मा) के इस पिंजरे में बन्द होने की अवस्था के विषय में विभिन्न आध्यात्मिक सिद्धान्तों और विचारधाराओं की चर्चा हम नहीं करेंगे। हमें तो 'क्यों' और 'कहाँ से' के चक्कर में न पड़ कर सत्य का सामना करना है और देखना है (विचारना है) कि इसको हम कैसे सुलझा सकते हैं।

यदि किसी को विषैला तीर लग गया है और कोई उसे विषहर औषधि देने के लिए आगे बढ़ता है, तो समझदार व्यक्ति अपनी जीवन-रक्षा के लिए पहले शीघ्र ही विषहर औषधि सेवन करेगा। वह इस प्रपंच में नहीं पड़ेगा कि यह औषधि कहाँ से आयी, कैसे बनी है। नहीं तो जब तक वह सारे प्रश्न सुलझायेगा, तब तक प्राण-रक्षा का समय ही निकल जायेगा।

इस प्रकार हमारी स्थिति ऐसी है कि जिस स्थिति में हम हैं, उसमें हम बँध गये हैं। हमें अपने-आपको उससे मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए। महत्त्व इसी बात का है। इसलिए हम सबको बुद्धिमान् होना चाहिए। कम-से-कम हमें यह संकल्प करना चाहिए कि कल की अपेक्षा आज हम और अधिक समझदार हो जायें। इस वर्ष की अपेक्षा आगे आने वाले वर्ष में और अधिक समझदार हो जायें। हमें अपने विवेक से काम लेना चाहिए।

हमारा मस्तिष्क विभिन्न जीवविज्ञान-सम्बन्धी तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के साथ कार्य करता है; किन्तु मन बुद्धि से परे है। शरीर और पाँच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से मन अपनी इच्छाओं, तृष्णाओं, आकांक्षाओं और

संकल्पों को कार्य-रूप देने के लिए बुद्धि को अपना स्रोत अथवा माध्यम बनाता है। पर उस मस्तिष्क के पीछे तुम्हारी आत्मा है।

आदि शंकराचार्य की अपेक्षा अन्य किसी ने इस पर इतनी अच्छी तरह से विचार नहीं किया है। उन्होंने छह श्लोकों में व्याख्या की है कि तुम क्या नहीं हो जिससे तुम अपने मस्तिष्क की भ्रान्ति, मोह और गलत विचार को बुरा-भला न कह सको और सबसे विपर्यस्त वह विचार है जिसमें मनुष्य समझता है कि वह सब जानता है, जब कि वह कुछ नहीं जानता है। हर श्लोक की अन्तिम पंक्ति में वे कहते हैं कि वास्तव में तुम्हारा स्वरूप क्या है—पूर्ण सौभाग्यशाली, आनन्दमय चेतना और पूर्ण भावातीत अवस्था वाले हो।

व्यक्ति के आध्यात्मिक जीवन के प्रति दृष्टिकोण उसकी साधना और लक्ष्य के प्रति उसकी मनोवृत्ति और संकल्प क्या होना चाहिए? हमारे आन्तरिक जीवन, हमारे वास्तविक जीवन, जीवन के तथ्य के प्रति मनुष्य की स्थिति कैसी होनी चाहिए? यद्यपि सत्य छिपा हुआ है, दिखायी नहीं देता है, फिर भी सत्य है। महर्षि पतंजलि ने इसके एक पक्ष के साररूप में, अपने योग-दर्शन के एक सूत्र में कहा है। मानव-मन के सारे अभाव और अपूर्णता होने पर भी, और यह जानते हुए भी कि इसकी विभिन्न गतियाँ हैं जो कुछ सकारात्मक हैं और कुछ नकारात्मक हैं, तुम्हें ऐसा संकल्प करना चाहिए कि तुम उनसे अप्रभावित रह सको। ब्रह्माण्डीय यात्रा में जब तुम्हें यह महान् अवसर प्राप्त हुआ है कि तुम आरोहण करके पूर्णता, अभय, मोक्ष और नितान्त पूर्णत्व प्राप्त कर सकते हो, तो इन प्रभावों से ठगे जा कर तुम अवरोहण नहीं कर सकते।

महान् गुरु का कथन है कि तुम्हें सर्वोच्च श्रेणी के प्रतिष्ठावान् व्यक्ति का सहारा लेना चाहिए। तुम्हें विशिष्ट होना चाहिए; क्योंकि यह एक अत्यन्त विशिष्ट क्षेत्र है। संसार की समस्त जनसंख्या में से अत्यल्प संख्या में ही मनुष्य आध्यात्मिक जीवन का महत्त्व समझ कर अपना सम्पूर्ण जीवन इसी के लिए समर्पित कर देते हैं। आप जीवन की किसी भी अवस्था में हों, कितने ही व्यस्त क्यों न हों, आप इसे नकार नहीं सकते—ऐसा साहस आप नहीं कर सकते। अतः सर्वोच्च श्रेणी को त्याग कर किसी और को मत अपनाओ।

जब हम स्कूल में पढ़ते थे, एक छोटी-सी कविता पढ़ी थी। रॉबर्ट ब्रूस नाम के स्कॉटलैण्ड के राजा के विषय में थी वह। वह आरम्भिक चौदहवीं शताब्दी के आस-पास रहा होगा। वह देवीमाहात्म्य के राजा सुरथ की तरह रहा होगा। शत्रुओं ने उसे परास्त कर दिया था। उसे जंगलों की ओर भागना पड़ा। वहाँ पर उसने एक गुफा में प्रवेश किया। थका-हारा, निढाल हो कर, निरुत्साहित-सा धरती पर लेट गया। उसने आराम करना चाहा; पर उसका मन भ्रान्ति की दशा में विचार-चक्र में घूम रहा था।

थका-हारा, निढाल, विषादपूर्ण हो कर उस स्थिति के उन क्षणों में उसके ध्यान को एक गति ने आकर्षित किया। वह एक मकड़ी थी। मकड़ी गुफा की छत पर चढ़ने का प्रयास कर रही थी। हर बार वह छत तक पहुँचते ही नीचे गिर जाती थी। बार-बार वह गिरती रही और ऊपर उठने का प्रयास करती रही। आठ बार उसने ऐसा प्रयास किया और आठ बार गिरी। इतनी बार रॉबर्ट ब्रूस भी अपने साम्राज्य को पुनः पाने का प्रयास कर हार चुका था। रॉबर्ट ब्रूस ने देखा कि नौवीं बार के प्रयास में मकड़ी ऊपर अपने लक्ष्य तक चढ़ चुकी थी।

अकस्मात् रॉबर्ट ब्रूस की मनोवृत्ति, निम्न नकारात्मक वृत्ति से सर्वोच्च सकारात्मक उच्च वृत्ति में अनायास बदल गयी। वह अपने-आपसे कहता है—"मैं एक राजपरिवार का वंशज हूँ, एक व्यक्ति जो राजसिंहासन पर बैठता है, मुकुट पहनने वाला है, जिसने युद्ध-क्षेत्र में कवच पहन कर अपनी सेना का नेतृत्व किया है और जीतता रहा है—मैं इस दीन-हीन अवस्था में? मूर्खता है! ऐसा कभी नहीं हो सकता। क्या मैं इस मकड़ी से भी गया-बीता हूँ? नहीं!" उसका मन नयी आशा से दृढ़ता के साथ भर उठा, उसके मन में साहस की लहर दौड़ पड़ी, वह कहने लगा—"मैं जा कर अपनी सेना को एकत्र करके पुनः युद्ध-क्षेत्र में उसका नेतृत्व करूँगा। मैं विजय-पताका फहराऊँगा। मैं अपने साम्राज्य को पुनः प्राप्त करूँगा।" और कवि कहता है—"उसने वह कर दिखाया!"

ऐसी मनोवृत्ति होनी चाहिए। शास्त्र भी हमसे ऐसा ही कहते हैं कि इसी प्रकार व्यक्ति को होना चाहिए। वे कहते हैं कि निम्न श्रेणी के व्यक्तियों में वैसी

शक्ति नहीं होती। वे किसी कार्य के प्रारम्भ करने के पहले ही सोच लेते हैं कि ऐसी बाधाएँ आयेंगी और निर्णय कर लेते हैं कि यह उनके लिए बड़ा कठिन है। मध्यम श्रेणी के व्यक्ति किसी कार्य को आरम्भ करते हैं, जब कोई बाधा मार्ग में आती है, वह उसे छोड़ देते हैं। पर वास्तविक शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति समझता है कि वह सर्वशक्तिमान् ईश्वर की छवि से युक्त है। वह एक बार जिस काम को अपने हाथ में लेता है चाहे बार-बार उसे कितनी ही असफलताओं, विपरीत स्थितियों का सामना क्यों न करना पड़े, वह पीछे नहीं हटता। हमें भी इसी प्रकार की सर्वोच्च श्रेणी का व्यक्ति होना चाहिए—सर्वोत्कृष्ट, हमारे अन्दर असीम शक्ति हो। नेपोलियन की तरह, जो कहता था कि 'असम्भव' शब्द हमारे शब्दकोष से निकाल देना चाहिए।

अँगरेजों के राज्य में हम कहा करते थे—'बुलडाग जैसी दृढ़ता' (bulldog tenacity) अर्थात् शिकारी कुत्ते-जैसी दृढ़ता उनमें थी। उसके लिए सादृश्य उपमा एक और भी है जो अधिक अच्छी तो नहीं, पर जोंक की दृढ़ता प्रसिद्ध है—किसी को चिपक जाये, तो छोड़ती नहीं। तुम्हें भी अपने लक्ष्य-प्राप्ति के प्रति ऐसा ही होना चाहिए। पराजय स्वीकार मत करो। मरने की बात मत करो, आगे बढ़ते रहो। मानव-जीवन-रूपी अमूल्य उपहार का पूर्ण लाभ उठाओ। यह परमामा की ओर से तुम्हें महानतम उपहार है।

इस उपहार की अवहेलना करना या इसे फेंक देना ठीक नहीं है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि किस कारण से उसे नकारा है। यह तो एक प्रकार से ईश्वर के मुँह पर तमाचा मारने के समान है। यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है, वह ईश्वर के प्रति भारी अपराध करता है। यह एक प्रकार से उनके उपहार की अवहेलना करने के समान है। जो स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ है, उसे नकारने के समान है यह। भारतीय धार्मिक ज्ञान के आधार पर आत्महत्या के अपराध से किसी प्रकार बच नहीं सकते। उससे तुम अपनी समस्या और बिगाड़ लेते हो। कैसे? सर्वव्याप्त नियम कर्म के कार्य-कारण-सम्बन्ध के कारण तथा कर्म-फल-प्राप्ति के परिणाम-स्वरूप तुम ईश्वर-प्रदत्त उपहार को ठुकरा कर अपने कर्म की संरचना कर लेते हो। ईश्वरोपलब्धि के अनुभव से ही उससे

मुक्ति पाने के अतिरिक्त समस्याओं से छुटकारा पाने का कोई और सरल उपाय नहीं है।

अन्यथा, जिससे तुम दूर भार रहे अथवा तुम सोचते हो तुम उससे बच जाओगे, तुम्हें उसका सामना करना पड़ेगा; क्योंकि उस कर्म का फल भोग लेने पर ही वह कर्म नष्ट होता है। यदि तुम बुद्धिमान् हो, तो तुम उस अनुभव से लाभ प्राप्त करने का प्रयास करोगे, उससे कुछ सीखने का यत्न करोगे। यदि उससे बचने का प्रयास करोगे, तो तुम्हें उससे बड़ी मुसीबत उठानी पड़ेगी।

इसके बदले में तुम कह सकते हो—"ठीक है! यह अनुभव आवश्यक है; पर कर्म-सिद्धान्त के हाथ की कठपुतली बनने के स्थान पर मैं इस पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करूँगा। उससे अपने लक्ष्य की पूर्ति करूँगा। कैसे? मैं अपने जीवन का अधिकारी हूँ। कोई नियम या अन्य दूसरे कारण मेरे अधिकारी नहीं हैं। मैं केन्द्रीय स्थान पर हूँ। यहाँ मैं अन्य दूसरे कारणों को, उस पर अधिकार करने का अवसर नहीं दूँगा। यह मेरा जीवन है।" इस प्रकार तुम कहते हो—"ईश्वर ने मुझे एक अवसर दिया है। यह वह क्षेत्र है जहाँ मैं सोद्देश्य क्रियात्मक कार्य कर सकता हूँ तथा सोद्देश्य क्रियात्मक कार्य से मैं अपने भविष्य का निर्माण स्वयं करूँगा।"

अब तुम देखोगे कि सब-कुछ बदल गया है। मैं ऐसा व्यक्ति हूँ जो अपने भविष्य का निर्माण कर सकता है। दो उक्तियाँ मुझे याद आ रही हैं—"मैं अपनी आत्मा का नायक हूँ। मैं अपना भाग्य विधाता हूँ।" इसलिए तुम कह सकते हो—"किसी प्रकार का पूर्व-नियोजित भाग्य स्वकामतः (स्वेच्छा से) कोई मेरे ऊपर प्रक्षिप्त नहीं कर सकता। यह मूर्खता है! यदि भूत ने मेरे वर्तमान का निर्माण किया है, इसने केवल अनुभवों का निर्माण किया है। यह मेरे वर्तमान का एक अंशमात्र है। मेरे वर्तमान का कर्म निर्मित नहीं किया है। मेरे जीवन के दो कारक हैं—एक रचनात्मक, दूसरा विध्वंसात्मक। अनुभव का भाग विध्वंसात्मक है। क्रियात्मक भाग रचनात्मक है।

"इसलिए जब मेरे शरीर और मन भूत कर्मों के अपरिहार्य अनुभवों में से गुजर रहे हैं, उससे क्या अन्तर पड़ता है? मैं शरीर और मन दोनों से उच्चतर हूँ।

मैं आत्मा हूँ। और मैं अपना अधिकारी हूँ। मैं अपने वर्तमान का लाभ उठा कर अपने अस्तित्व को ऐसे सर्जनात्मक, रचनात्मक, पवित्र और उच्च कामों में लगाऊँगा जिनसे मेरे पवित्र उत्कृष्ट देदीप्यमान भविष्य का निर्माण होगा।

"क्योंकि सारा महत्त्वपूर्ण कारण न भूत है, न भविष्य—केवल वर्तमान है। भूत तो समाप्त हो चुका है, भविष्य का अभी निर्माण नहीं हुआ है; पर मैं उसका निर्माण कर सकता हूँ। मैं किसी और को उसके निर्माण का अवसर क्यों दूँ? मैं अपने ही घर में अपना दास नहीं हूँ। मैं स्वामी हूँ। इसलिए मैं अपने वर्तमान से, स्वयं उसे निर्मित करने का लाभ उठाऊँगा। मैं मनसा, वाचा, कर्मणा ऐसे कार्य करूँगा जिनसे मुझे स्वयं पता चल जाये कि मेरा भविष्य कैसा बनने वाला है; क्योंकि मैं स्वयं उसका निर्माण कर रहा हूँ।

"मैं अपना भविष्य जैसा चाहूँ, जैसी मेरी इच्छा हो, कामना हो, वैसा बना सकता हूँ। केवल मैं ही उसका अधिकारी हो जाऊँगा। अपनी पूर्ण इच्छा और पूर्ण दृढ़ता के साथ पूर्ण रूप से मैं ही उसे निर्मित करने वाला हूँ। यदि मैं अपनी इन्द्रियों को इधर-उधर भटकने का अवसर दूँगा, यदि मैं अपनी इच्छाओं और ललक को बार-बार विषय बदल देने के लिए, उनके प्रति आकर्षण के कारण उस पथ से दूर हो जाऊँगा जो सीधे-सीधे मुझे वहाँ ले जायेगा जो उदात्त, प्रकाशित भविष्य की ओर जाता है, इससे मैं स्वयं अपना शत्रु बन जाऊँगा। मैं अपने विपरीत ही कार्य कर रहा हूँ।"

इसलिए हमें ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसने अपने मन को जीत लिया हो, अपनी इन्द्रियों को संयमित कर लिया हो। जब भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से यह कहते हैं, तो अर्जुन का उत्तर है—"उमड़ती हुई हवाओं को वश में किया जा सकता है; पर मन को संयम में रख पाना कठिन है।" भगवान् कृष्ण उससे सहमत होते हुए कहते हैं—"यद्यपि इसे संयत करना कठिन है; पर यह सम्भव है।" यही सार है। यह सम्भव है; पर इसके लिए निरन्तर अभ्यास करना है।

भगवान् कृष्ण उसके प्रभाव के विषय में यह भी कहते हैं—"अध्यवसाय कभी नहीं छोड़ना चाहिए, दृढ़प्रतिज्ञ हो कर यदि तुम अपना प्रयास करते रहते हो, तो मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम जो-कुछ प्राप्त करना चाहते हो, वह

प्राप्त कर लोगे, तुम जहाँ पहुँचना चाहते हो, वहाँ पहुँच जाओगे। पर एक बात के लिए सावधान रहना होगा। जब तुम इस दिशा में जा रहे हो, तो दृढ़-संकल्प के साथ, दृढ़-निश्चयी हो कर आगे बढ़ो। तुम्हारी इन्द्रियाँ तुम्हारी शत्रु हैं, और मन की ललक का तत्त्व ऐसा हठीला है, ऐसी गहराई से मन में बैठा हुआ है कि इसे सरलता से मन से निकाला नहीं जा सकता। यह तुम्हें सदा व्याकुल करता रहेगा, वह तृष्णा तुम्हें अपने सुख के लिए कभी इस दिशा में और कभी उस दिशा में, कभी कुछ प्राप्त करने के लिए, अथवा भोग की ओर या आसक्ति सुख की ओर ले जायेगी।

''तुम्हें बहुत बुद्धिमान् और बलवान् होना है। अपने मन से कहो—'मूर्ख मत बनो, ऐसा मत समझो कि मैं कोई अँगूठा चूसने वाला बालक हूँ। मैं जानता हूँ कि यह संसार कैसा है, मुझे प्रतीत है कि इन्द्रिय-विषय क्या हैं, मुझे ज्ञात है कि मनोरंजन क्या होता है। जिसे सुख कहते हो, अन्तत: उसका अन्त दु:ख, कष्ट, पीड़ा, रुदन में होता है। आरम्भ में भले ही वह मधुर लगे; पर अन्तत: इसका अनुभव कटु होता है।'

''इसलिए मैंने स्वयं जिस संसार की रचना की है, मैं तुमसे कहता हूँ, जागते रहो, सक्रिय हो कर परिप्रश्न करो। सदा तुलना करो कि तुम्हारी प्रसन्नता के लिए क्या उत्कृष्ट, उत्तम, सर्वाधिक सहायक और क्या देखने में आकर्षक होते हुए भी अन्दर से कष्टदायक और दु:खमय है। सुख के पीछे दु:ख छिपा हुआ है। यह मुखौटा लगा कर तुम्हारी हँसी उड़ाता है, तुम्हारा पतन हो जाता है। नहीं! मूर्ख मत बनो, धोखा मत खाओ।''

इसलिए भगवान् अर्जुन के माध्यम से हमसे कहते हैं, यदि तुम आत्म-परीक्षण करते हो, निरन्तर विवेकी हो, यदि इस प्रकार प्रश्न पूछ कर तुम्हारे अन्दर तटस्थता आ जाती है, विवेक जागृत हो जाता है, तो घबराने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे लिए भय की कोई बात नहीं है। इस जीवन में तुम पूरी तरह से संरक्षित सैनिक के रूप में हो जाओगे, पूर्णरूपेण कवच से संरक्षित सैनिक। सारे बरछे, सारी गोलियाँ तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। बिना किसी

प्रकार की हानि उठाये तुम अपना लक्ष्य पूरा करके सुरक्षित रह कर विजित हो कर आ जाओगे।

अभ्यास और वैराग्य—श्रीमद्भगवद्गीता के बौद्धिक उपदेश में छठे अध्याय में भगवान् ने तुम्हें आदेश दिया है कि तुम्हें एक ही दिशा में निरन्तर अभ्यास करना है और साथ-ही-साथ पूरी तरह से वैराग्य-वृत्ति विकसित करनी है, जिससे निश्चित रूप से किसी में भी तुम्हें अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति नहीं होगी। तुम इस प्रकार दृढ़-निश्चयी बने रहोगे।

७०

सच्ची आध्यात्मिकता द्वारा रूपान्तरण

पूजनीय अद्वैत सत्ता को प्रणाम! वह सत्य सारे विश्वासों और धारणाओं के सारे सिद्धान्तों से परे है, शास्त्रों में इसके विषय में कही गयी उक्तियों से परे है। जब संसार का अस्तित्व नहीं था, तब केवल यही एक सत्य था। वही सर्वत्र व्याप्त था। चिन्तन से परे उस असीम, शाश्वत सत्ता के प्रति हमारा विनीत वन्दन!

आदरणीय और प्रिय पावन गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी महाराज को प्रेम और श्रद्धा के साथ प्रणाम है। जैसे-जैसे हम नव-वर्ष की ओर पहुँच रहे हैं, उनके पवित्र आश्रम के इस समाधि हाल में हम सभी जन उनकी आध्यात्मिक उपस्थिति में यहाँ एकत्रित हुए हैं। उस महान् सत्ता को आदर और प्रेम के साथ श्रद्धांजलि, जिन्होंने हम सबके जीवन में नये जीवन का संचार किया, जिन्होंने हमारे दैनिक जीवन में गतिशील दिव्य जीवन का विकास किया! उन्होंने हमें बताया कि हमारा जन्म केवल मरने के लिए नहीं हुआ है। हमारा जन्म यह जानने के लिए हुआ है कि न हमारा जन्म होता है न मृत्यु, हम अमर्त्य आध्यात्मिक प्राणी हैं, हमारा न आदि है न अन्त, न हमारा नाम है न रूप, हमारा अस्तित्व निरन्तर रहता है । हम उस शाश्वत सत्ता के विशाल सागर की एक बूँद हैं। ये केवल शिक्षाएँ ही नहीं हैं, बल्कि अनुभवजन्य सत्य हैं तथा इस सम्बन्ध में विचारों का आदान-प्रदान हो चुका है; क्योंकि ये ब्रह्मज्ञानी की शिक्षाएँ हैं।

इस सत्य को पहचानने के लिए, बाधक तत्त्व क्या है? कौन तुम्हें यह जानने से रोक रहा है कि तुम अमर्त्य आत्मा हो, तुम असीम आनन्द के स्रोत हो, तुम आनन्द के सागर हो, दिखायी देने वाले तुम्हारे मानवीय नाम, रूप और व्यक्तित्व के आवरण से ढका हुआ एक ईश्वर-तत्त्व छिपा हुआ है? अमरत्व ही

सत्य है, इसे जानने में बाधक तत्त्व क्या है? मृत्यु एक कल्पना है, दिव्यता ही तुम्हारी वास्तविकता है। मानवीय स्थिति एक अस्थायी उपादान है, यह तुम्हें इसलिए मिला है कि इससे तुम अपनी भूली हुई दिव्यता को पहचान सको।

इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें विश्वविद्यालय में जा कर दर्शनशास्त्रों का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं है। हमें ब्रह्मविज्ञान में खोज करने की आवश्यकता नहीं है, हमें तत्त्वमीमांसा का पठन करने की आवश्यकता नहीं है। सत्य को जानना सदा सरल है। यदि तुम इस पर अपना मन केन्द्रित करो, तो इसे शीघ्र ही जाना जा सकता है। यदि तुम अपना मन और बुद्धि, अपनी पूरी सत्ता इस पर केन्द्रित करना चाहते हो, तो यह स्वयं अपने अस्तित्व की जानकारी तुम्हें दे देगा।

यह बहुत सरल है। दर्शन, तत्त्वमीमांसा, ब्रह्मविज्ञान की पुस्तकें और भाषण सुनने और पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। सबसे सरल तथ्य यह है कि तुम्हारा बाधक तत्त्व क्या है? कौन तुम्हारे जन्मसिद्ध अधिकार का हनन कर रहा है? कौन तुम्हारे रास्ते को रोक कर खड़ा है? उत्तर है केवल तुम्हारा अपना आत्म-तत्त्व।

यह तुम्हारे बहुत निकट है। जब वस्तुएँ अति-निकट होती हैं, तो दिखायी नहीं पड़तीं, किसी दूसरे को उन्हें दिखाना पड़ता है। यदि तुम्हारी नाक के अन्तिम भाग में कालिख लगी हो, तो तुम उसे देख नहीं पाते। तुम्हारा ध्यान आकर्षित करने के लिए किसी दूसरे को कहना पड़ेगा। ऐसी तो मनुष्य की स्थिति है। कोई अन्य बाधक नहीं है, कोई वस्तु बाधक नहीं है, कोई तात्त्विक सत्ता नहीं है, कोई कलि, माया, मार (कामदेव), राक्षस और शैतान नहीं है। यदि तुम शास्त्रों के ब्रह्मविज्ञान का खण्डन नहीं करना चाहते, तो हम कह सकते हैं शैतान है; पर यह शैतान 'मैं, मैं, मैं' के रूप में है। शैतान, जो असत्य है उसके चिपके रहने के रूप में है, उससे छुटकारा न पाने के रूप में है। यह कथित छोटा 'मैं' हेय है, अयोग्य है, उसे महान् महत्त्व का मान कर उसे महान् सत्य का पद दे रखा है।

हम 'मैं' के पुजारी हैं और पुजारी हैं झूठे अहं-सिद्धान्त के, झूठे व्यक्तित्व के। वास्तव में वही एक ऐसी चीज है जिससे हमें छुटकारा पाना है। उसे मिथ्या, जालसाज़, चोर मानना चाहिए। सबसे पहले इस सत्य की पहचान करनी चाहिए कि हम अपने मिथ्या अहं के चंगुल में फँस गये हैं, वही हमें उस कोष को पाने से रोक रहा है जो सदा हमारे पास ही रहता है।

इस स्थिति में आध्यात्मिकता का अर्थ है—स्वयं पर कार्य प्रारम्भ करना अर्थात् जहाँ तुम हो, वहीं से आगे बढ़ो। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि प्राणभूत तथ्य की उपेक्षा करके हम यह सोचें कि समस्या कहीं और है और उसे खोजने और सुलझाने में लग जायें। बृहत् रूप से यह शक्ति का ह्रास होगा, अमूल्य जीवन का समय अनावश्यक रूप से व्यर्थ होगा, ध्यान हटेगा और तेज (सामर्थ्य) का नाश होगा।

सही विषय से आरम्भ करो। सीधे उसी केन्द्र में प्रवेश करो—"मैं अपनी आध्यात्मिक प्रगति का स्वयं ही बहुत बड़ा बाधक हूँ।"

आप सभी जानते हैं कि एक पुराणकथित वस्तु है जिसे स्पर्शमणि (पारस पत्थर) कहते हैं। यदि कोई लौह धातु इससे छू जाती है, तो तुरन्त ही वह धातु शुद्ध सोने में परिणत हो जाती है। वास्तविक आध्यात्मिकता इस पारस पत्थर के समान है। इसमें रूपान्तरण की शक्ति होती है। कुछ भी तथा सर्वस्व आध्यात्मिकता के इस पारस पत्थर के सम्पर्क में आने पर वह रूपान्तरित हो जाता है। उसमें सकारात्मक परिवर्तन की शक्ति होती है।

यदि तुम आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हो, आध्यात्मिक अभ्यास में व्यस्त हो, आध्यात्मिक साधना कर रहे हो, तब उसके मूल्यांकन का एक ही उपाय है कि उससे व्यक्तिगत रूप से तुम्हारे भीतर कितना परिवर्तन हो रहा है? सब-कुछ प्रातः से ले कर सायं तक तुम्हारे अन्दर जो-कुछ घटित हो रहा है, तुम्हारे विचार, तुम्हारी भावनाओं, प्रयोजनों, भावों, धारणाओं, इच्छाओं, कल्पनाओं, भावुकता में कितना सकारात्मक परिवर्तन आया है। क्या वे पूर्ण रूप से परिवर्तित हो चुके हैं? नये हो गये हैं? अपनी पूरी ऊँचाइयों पर ऊपर उठ कर, परिष्कृत हो कर ऊपर उठने की प्रक्रिया में रत हैं? ईश्वर की ओर जाने की

पूर्णता में प्रकाशित हो कर ज्ञानोदय तथा अच्छाई, ईश्वरत्व, और अधिक समझदारी, विवेक, अधिक जागरूकता, बुद्धिमानी, और अधिक दया तथा करुणा के भाव की स्थिति प्राप्त कर ली है? क्या धीरे-धीरे ऐसा रूपान्तरण तुम्हारे अन्दर आ रहा है कि वह आन्तरिक रूपान्तरण तुम्हारे बाह्य रूप में प्रकट हो रहा है? दृढ़ता के साथ अपरिहार्य रूप से स्वयं प्रकट हो रहा है?

इसी प्रकार के रूपान्तरण की कहानी है। एक धर्म सभा के मुख्य अतिथि को पता चला कि रसोइये में कुछ परिवर्तन हो रहा है। वह रसोइया सारे आश्रमवासियों के लिए भोजन पकाया करता था। वह अतिथि अक्सर मठ में आता था। साल-भर के अन्दर उसने अनुभव किया कि धीरे-धीरे इस व्यक्ति में कुछ विशेष घट रहा है। उसके आचरण में असाधारण मान-मर्यादा, मुख पर शान्ति, उसके व्यवहार में अन्तराकर्षण और साथ-ही-साथ उसकी आँखों में कुछ चमक थी। उसने रसोइये से पूछा। वह उत्तर देना नहीं चाहता था। पर उसने हठ की। यदि उसने हठ न किया होता, तो इस छोटी-सी पुस्तक के रूप में हमें जो कोष प्राप्त हुआ है, "Practice of the presence of God " (ईश्वर की विद्यमानता का अभ्यास), रचनाकार ब्रदर लारेंस—तो संसार ने उस रहस्यमय खजाने को खो दिया होता।

यदि तुम सौ प्रतिशत इस रूपान्तरण के लिए अपना अदम्य साहस, बिना रुकावट के दिखाते हो तो निश्चित रूप से तुम्हारे अन्दर परिवर्तन आ कर वह बाहर प्रकट होगा ही। संसार में कहीं भी कोई व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर रहा है, आध्यात्मिकता के वास्तविक स्वभाव की विशुद्धता की प्रामाणिकता के लिए यही परीक्षा है। यदि मुख्य धातु को पारस पत्थर के सम्पर्क में लाया जाता है, यदि वह फिर भी धातु बना रहता है, पक्का सोना नहीं बना है, तब हम कहते हैं कि पारस पत्थर अच्छा नहीं है। यह विशुद्ध नहीं है। नकली पत्थर से तुम छले गये हो।

सच्ची आध्यात्मिकता स्पर्शमणि की भाँति रूपान्तरण लाती है। उस रूपान्तरण के आने पर प्रकाश, मोक्ष, आनन्द-स्रोत के अनुभव, निहित परमात्मा, अमर आत्मा, आनन्द-स्रोत के रास्ते में आने वाली सारी बाधाएँ

स्वत: नष्ट हो जाती हैं। अब पूर्ण परिवर्तन की स्थिति हो जाती है। बाधाएँ दूर हो जाती हैं। तुम जागरूक हो जाते हो। अन्त:करण में निहित परमात्मा की ज्योतिर्मयी जागृति तुममें आ जाती है। तुम एक देदीप्यमान जागृत आत्मस्वरूप हो जाते हो जिसके लिए मृत्यु का कोई अर्थ नहीं। तुम जाग गये हो। तुम आनन्द के सागर के अमृत का पान करते हो—और भी बहुत कुछ अवर्णनीय, अनिर्वचनीय तुम प्राप्त करते हो। ये तो मात्र संकेत हैं।

इसलिए साधना ऐसी होनी चाहिए जिससे परिवर्तन आये। योग परिवर्तन लाये। जप और ध्यान परिवर्तन लाये। कीर्तन, भजन, ईश्वर के नाम का गान करके अवश्य तुममें परिवर्तन आना चाहिए। शास्त्रों का पठन, कर्मयोग यह सब तुममें परिवर्तन लाने के साधन होने चाहिए। यही कुंजी है।

आवश्यक रूप से बिना भूल किये यह हमारी आध्यात्मिक प्रकृति का संकेत देता है कि आध्यात्मिक जीवन का अभ्यास करने का व्रत लेने वाले संसार में कहीं भी हों, उनकी प्रकृति इसी प्रकार की होगी। तुम अपने आध्यात्मिक जीवन के नाम पर जो-कुछ भी करते हो, तुम्हारा आत्म-त्यागी जीवन रूपान्तरित होना चाहिए। तुम्हें इसे तेजस्वी व्यक्ति बनाना चाहिए। तुम्हें इसे ईश्वर का दिव्य बालक बनाना चाहिए। तुम्हें शुद्ध सोना बनना है। सच्चा आध्यात्मिक रूपान्तरण लाना चाहिए। तुम्हारी सत्ता का सकारात्मक परिवर्तन होना चाहिए।

७१

अपने आध्यात्मिक जीवन को पूर्ण बनाना

यहाँ इसी क्षण विद्यमान शाश्वत, असीम, परम सत्ता को सादर नमन! वह निहित सत्य विश्व-धरा की नित्य-परिर्तनशील रंगभूमि के दृश्य में सूक्ष्मतया अपनी असीमता, सर्वातिरिक्तता, सर्वव्यापकता, सर्वत्र विद्यमानता और शाश्वत प्रकृति के कारण सर्व कालों में विद्यमान होने के कारण यहाँ और अभी भी विद्यमान है। उस दिव्य सत्ता को सादर प्रणाम। उसकी अहेतुकी दिव्य कृपा आप सब पर बनी रहे!

आज वह दिन है जब उपहार-स्वरूप ईश्वर-प्रदत्त हमारा मित्र, पुराना वर्ष अपनी पूर्ण भव्यता के साथ अपने उत्तराधिकारी, आने वाले वर्ष के प्रवेश के लिए, उसे स्थान देने के लिए पीछे हट रहा है। यह वह दिन है जब पुराना वर्ष हमसे कहता है—"तुम सबके साथ रह कर अच्छा लगा, अब तुमसे विदा लेते हैं। ईश्वर तुम्हें शीघ्र ही नव-वर्ष में प्रवेश करायेंगे।"

पुराना साल हमारे लिए अच्छा रहा, इसलिए हम भी पूछ सकते हैं—"हम इसके साथ कैसे रहें?" क्योंकि जैसे पावन गुरुदेव प्रायः कहा करते थे—"आज का दिन मूलधन ग्रहण दिवस आगामी साधना की सूची तैयार करने का दिवस है।" यह वह दिन है जब हम विहंगम दृष्टि से, पीछे मुड़ कर देखें कि हम वर्ष के प्रत्येक माह किस प्रकार का जीवन व्यतीत करते रहे। वह लाभकारी था या हानिकारक, समझदारी का था या मूर्खता का, सुधारपरक था या त्रुटियों से भरा हुआ था। मानव-समाज में अच्छा नागरिक बनने के लिए हमारे लिए यह प्रक्रिया सहायक हो सकती है।

हमारा प्रयास ऐसा होना चाहिए कि सदा अच्छाई की ओर जायें। हमारे समसामयिक सामाजिक परिदृश्य को समृद्ध बनाते हुए अतिरिक्त सहयोग से हम उसे और अच्छा बनायें। "समाज में रहने के नाते आज मैंने समाज के लिए क्या

किया है? क्या मैं ऐसा कर सकता हूँ कि मैं अपने अच्छे स्वभाव के कारण ऐसा व्यक्ति बन जाऊँ जो सबके साथ मित्रवत्, मधुरभाषी, दयामय, प्रफुल्ल-वदन और सहायक रहे। सबको सुख देने के लिए सबको सुविधा प्रदान करता रहे? क्या मैं दूसरों की अच्छाई, बुराई और दुर्बलताओं को सह कर उनकी भलाई के लिए तैयार रहता हूँ? क्या मैं पूरी गरिमा के साथ दान और परोपकार की वृत्ति रखता हूँ? क्योंकि मैं जानता हूँ कि ईश्वर ने ही उन्हें इस स्थिति में रखा है।''

सभी मनुष्य एक से नहीं होते; वे जैसे भी हैं, वह उनकी नियति है। दूसरों की दुर्बलताओं को मनोवैज्ञानिक रूप से, बुद्धि से नहीं बल्कि दयामय हो कर बड़े सभ्य आध्यात्मिक ढंग से पहचान कर, व्यवहार करना चाहिए। यदि तुम मनुष्यों को मनोवैज्ञानिक आधार पर समझने का प्रयास करोगे, तो तुम उनके विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकोगे; पर वह ज्ञान आध्यात्मिक गुणों जैसे सहानुभूति, सहनशक्ति, बुद्धिमत्ता, मित्रभाव, सदा सहायक रहने के लिए आवश्यक नहीं है। ''यह भाई अथवा बहन भ्रान्ति है; मैं स्वयं इस प्रकार की भ्रान्ति में रहता हूँ।'' यदि इस प्रकार अपना मूल्यांकन आध्यात्मिक मन से, मनोवैज्ञानिक रूप से आध्यात्मिक भाव के साथ करोगे, तो यह पूर्ण रूप से भिन्न हो जायेगा।

इस प्रकार अपने समकालीन घटनाओं के लिए तुम्हें अपने-आपको गुण-सम्पन्न बनाना है। तुम्हें स्वयं आगे बढ़ कर अपने-आप अकेले आदर्श मानव-प्राणी बनने की कोशिश करनी है। आध्यात्मिक जीवन के लिए यह अनिवार्य साधना है। हम भले ही एकाग्र चित्त हो कर अपनी दार्शनिक बुद्धिमत्ता के साथ ध्यान, जप, प्रार्थनाएँ, ईश्वर का स्मरण, भक्ति, गहराई से करते हों; पर साथ-ही-साथ हमें स्पष्ट रूप से यह भी देखना है कि अपनी सकारात्मक प्रगतिशीलता की यह स्थिति जो हमारे साथ घट रही है, उसके साथ-साथ हमारी मानवीय सभ्यता निरन्तर अधिक-से-अधिक पूर्णता के साथ, अखण्डता और आदर्श के साथ विकसित होती हुई उसके साथ कदम मिला कर चलती रहे। हमें यह नहीं भुला देना है कि जिस प्रकार हमने आध्यात्मिक आयामों में विकास किया है, उसके साथ-ही-साथ हमें मानवीय आयामों में भी विकास करना है।

आध्यात्मिकता हमें अच्छा व्यक्ति बना दे। आध्यात्मिकता हमें एक आदर्श मानव-प्राणी बना दे। आध्यात्मिकता हमें अपने समाज में उपकारी बनने में सहायक हो। आध्यात्मिकता हमें दूसरों को धन्यता प्रदान करने का केन्द्र बना दे। दूसरों की सहायता का केन्द्र, मैत्री का केन्द्र, उस सब-कुछ का केन्द्र बना दे जो मनुष्यों की भलाई में सहायक हो व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से भी।

मैं कल्पना कर सकता हूँ कि मध्य एशिया के महान् गुरु का, ऐसे प्रश्न का उत्तर देते समय क्या आशय रहा होगा—"ईश्वरीय आदेश में सबसे महान् आदेश कौन-सा है?" उन्होंने कहा—"तुम जानते हो कि यह सबसे महान् ईश्वरीय आदेश है—स्वयं को पूर्ण रूप से ईश्वर के प्रति, पूर्ण रूप से पूर्ण प्रेम और भक्ति के प्रति समर्पित कर दो, ईश्वर को समर्पण कर दो।" पर सबसे महत्त्व का अंश अन्त में आया। निष्कर्ष रूप में उन्होंने कहा—"तुम्हें अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करना होगा।"

प्रत्येक मानव-प्राणी चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, उसका आत्म-तत्त्व ही संसार में सबसे अधिक महत्त्व का है। प्रत्येक व्यक्ति इस स्वयंसिद्ध मान्यता से जीता है जिसके प्रति वह जागरूक तक नहीं है; क्योंकि यह किसी अर्थपूर्ण चेतना की प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त नहीं होता। वह तो बस वही है। प्रकृति ने इस रूप में उसे निर्मित किया है—केन्द्र में एक ही है, और सब पदार्थ उसके चारों ओर ही हैं और यह तत्त्व उस व्यक्ति के लिए प्रत्येक वस्तु को उसके अनुरूप परिवर्तित करता है—प्रत्येक कार्य जो मनुष्य करता है, देखता है, वह सब उस आत्म-तत्त्व से सम्बद्ध है। विस्तृत रूप से यह तत्त्व मनुष्य का पूर्ण जीवन परिवर्तित कर देता है। इसलिए यह कहा है—"तुम इसको इस प्रकार जानते हो। तुम स्वयं के लिए स्वयं महत्त्वपूर्ण हो। किसी दूसरे की अपेक्षा तुम अपने लिए सबसे अधिक सावधान (विचारशील) हो। तुम्हारे लिए अपना महत्त्व ही सबसे मुख्य है। इसलिए इस प्रकार का महत्त्व अपने पड़ोसी को भी दो।"

तुम्हारा पड़ोसी कौन है, जिसके साथ तुम्हें विशेष प्रकार की मनोवृत्ति, व्यवहार और सम्बन्ध स्थापित करना है। उत्तर है—'सारा संसार'। कोई भी व्यक्ति जिस समय जिस स्थान पर जो भी तुम्हारे निकट है वही तुम्हारा पड़ोसी है और इस सारे संसार में जो तुम्हारा समकालीन हो उसके लिए इस सामान्य नियम को रूप देना है, वही तुम्हारा पड़ोसी है।

इसलिए अपने पड़ोसी को अपने समान प्रेम करने का अर्थ है—सबके साथ प्रेम का व्यवहार करो। सबको प्रेम करने का अर्थ है—प्रत्येक प्राणी के साथ प्रेम करना चाहे वह भारत में रहता हो या जापान में या अमेरिका, आस्ट्रेलिया या अर्जेन्टीना में कहीं भी रहता हो। कोई इस ग्रह पर, धरती पर तुम्हारे साथ रहता हो, वह तुम्हारा पड़ोसी है। दूरी कोई अर्थ नहीं रखती। दिक्-काल का कोई महत्त्व नहीं है। आध्यात्मिक पड़ोस, आध्यात्मिक सम्बन्ध, आध्यात्मिक सद्भावना में निकटता के लिए देश का कोई औचित्य नहीं है।

आध्यात्मिक दृष्टि इससे एक कदम आगे का जानती है। वहाँ पड़ोसी के रूप में दूसरा कोई नहीं है। इस दृष्टिकोण से तुम्हारा पड़ोसी तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है। इसलिए सारे प्राणियों में अपना अस्तित्व देखो और उनके प्रति विशेष ध्यान दे कर, उनकी छोटी-छोटी बातों को क्षमा करके, उनकी कमजोरियों को सहन करते हुए बेकार की बातों पर ध्यान नहीं देना। ऐसा व्यवहार करो जैसा कि तुम अपने साथ करते हो। उनके प्रति भिन्नता की भावना न रखते हुए ऐसा अनुभव करो कि वे सब तुमसे पृथक् नहीं हैं।

विश्वगुरु भगवान् श्री कृष्ण के अनुसार जो व्यक्ति सर्वभूतों में स्वयं को देखता है और उन सबको उतना ही सम्मान देता है जितना वह स्वयं को (अपने आत्म-तत्त्व) को देता है, जो हर स्थिति में दूसरों के साथ आत्मवत् व्यवहार करता है, ऐसा व्यक्ति अमृतत्व और मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

इस प्रकार एकाग्रता, ध्यान, वेदान्त के उच्च ज्ञान, उत्तरोत्तर बढ़ती हुई भक्ति और प्रार्थनाओं, नि:स्वार्थ भाव की क्रियाएँ, निरन्तर दृढ़ता के साथ अपने मानवीय स्वभाव में उत्तरोत्तर विकास करते हुए प्रगति करो। तुम्हें कभी

यह नहीं सोचना चाहिए कि तुम कुछ भिन्न कर रहो हो—मुझे इसकी चिन्ता नहीं करनी है। यह मनोवृत्ति ठीक नहीं है; मानवीय विकास आध्यात्मिकता के साथ-साथ चलना चाहिए।

तुम्हारे मानवीय व्यक्ति-विशेष के स्वभाव का यह वह विकास है जो योग-जीवन को सफल बनाता है। हितकर, प्रभावशाली, आध्यात्मिक होना तुम्हारी आध्यात्मिक सफलता के लिए बहुत बड़ा सहायक है। आदर्श मानवीय व्यक्ति के रूप में उन्नति करने के लिए कृपालु, दयालु, सहनशील, अच्छा, सबके साथ न्याय करने वाला, एक सिद्धान्तवादी, एक अच्छा पड़ोसी, सबका मित्र जो सबके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तुम्हें ऐसा व्यक्ति बनना चाहिए। यह साधना का अंग है। यह योग का भाग है। यह वेदान्त का अंग है। यही आध्यात्मिक जीवन का अंग है।

इसलिए यदि तुम्हारा आध्यात्मिक जीवन और उसकी साधना पूर्ण होनी चाहिए, तो तुम्हें स्पष्ट रूप से अपने व्यक्तिगत जीवन और व्यक्तित्व को भी सुन्दर बनाने का ध्यान करना चाहिए। तुम्हें अपने व्यक्तिगत जीवन और व्यक्तित्व की उत्तरोत्तर विकासमूलक प्रक्रिया अपनानी चाहिए और साथ ही योग-वेदान्त-साधना, ध्यान के तरीके तथा आध्यात्मिक जीवन को पूर्णत्व देने के उपाय करने चाहिए।

महान् व्यक्तियों की यही शिक्षा है—"जिस भाई को तुमने देखा है, यदि तुम उससे प्रेम नहीं कर सकते, तो तुम ईश्वर से कैसे प्रेम करोगे जिसे तुमने देखा नहीं है?" क्षमाशीलता के लिए तुम ऐसा कैसे कर सकते हो कि किसी को क्षमा करो, किसी को नहीं। तुम्हारी सहनशीलता में, तुम्हारे दया करने में तुम चयन करके दया-क्षमा नहीं कर सकते। इन गुणों के विकास करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि किसी ऐसे को चुनो जो सबसे गया-बीता हो, तब अच्छा मित्र, भाई और पड़ोसी बनना सरल हो जायेगा। उन्हें, जो उससे भी कम है, यदि तुम अपने दानी स्वभाव को और आगे बढ़ा कर ऐसे अशक्य व्यक्ति को दोगे, तब तुम जान जाओगे कि इसे किसी को भी दिया जा सकता है; क्योंकि तुमने गये-बीतों पर परीक्षण करके देख लिया है और उसे सम्भव बना दिया है।

ईश्वर का आशीर्वाद तुम्हें प्राप्त हो ! तुम माल की सूची की तैयारी के साथ गतवर्ष को विदा करने की तैयारी करो और नव-वर्ष में प्रवेश के लिए जो अपेक्षित है, उसे करो। समय की इस कगार तक पहुँचने के लिए जिस-जिससे तुम्हें सहायता मिली, उसके प्रति कृतज्ञ बनो और गत वर्ष के ज्ञान के प्रकाश में नव-वर्ष को सक्रिय और दूरदर्शिता से पूर्ण बनाओ।

७२

तुम्हारा जीवन—वास्तविक दिव्यता का साक्षी

अद्वितीय, अद्वैत, सर्वव्यापक, आभ्यन्तर सत्य को सादर प्रणाम जो मन और बुद्धि से परे सबके हृदयों में साक्षी चेतना के रूप में ज्योतित है। वह सर्वानन्दपूर्ण परमात्मा जिज्ञासु आत्माओं में आनन्दप्रद जागृति के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करे—यही प्रार्थना है। ईश्वर करे, उस परम सत्ता के दिव्य गुण तुम्हारे हृदय, मन और बुद्धि में प्रकट हों और उसका देवत्व (दिव्यता, तेज) तुम्हारे मन, वचन, कर्म में दृष्टिगत हो, आभासित हो। इस प्रकार तुम्हारे शरीर-रूपी मन्दिर में विराजित परम तत्त्व की अभिव्यक्ति से तुम्हारा जीवन सच्चे अर्थों में दिव्य हो जाये!

दिव्यता मेरा आत्यन्तिक स्रोत और उद्‌गम है। दिव्यता मेरा वर्तमान कालिक अदृष्ट आश्रय और आधार है। दिव्यता ऐसा परम लक्ष्य है जिसकी ओर मैं अपने जीवन को लगाना चाहता हूँ, जिससे मेरा जीवन दिव्यता-प्राप्ति की चरम सीमा पर पहुँच जाये।" इस प्रकार से अनुभव करके, इसे जान कर, इस प्रकार अपने अन्दर से अपने-आप दृढ़निश्चय करने पर ईश्वर करे तुम अपने जीवन को दिव्य गुणों से पूर्ण करने का प्रयास करो। ईश्वर तुम्हारे अन्दर ऐसी मनोवृत्ति, ऐसी जागरूकता भर दें।

"मैं दिव्य स्रोत से उत्पन्न हुआ हूँ, जो सर्वोच्च, शाश्वत, असीम, पूर्ण-परिपूर्ण दिव्य उद्‌गम है। सारे प्राणी ब्रह्म से प्रकट होते हैं, वे सभी ब्रह्म में ही स्थित रहते हैं और ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं।" तुम्हारे प्राचीन ज्ञान-सम्पन्न प्रकाशित पूर्वजों के घोषित अनुभव इसी प्रकार के हैं।

ईश्वर करे, तुम अपने अस्तित्व के आधार, इस सत्य को पहचानो। ईश्वर करे, तुम इस अनुभवजन्य सत्य को, इस महान् तथ्य को, इस प्रेरणा-शक्ति को सजीव बना लो। इसलिए यह संकल्प कि—"मैं दिव्य हूँ। मेरा जीवन भी दिव्य

होगा। मैं दिव्यता का चिन्तन और अनुभव करूँगा। मेरा आचरण दिव्य होगा। मेरी वाणी दिव्य होगी। मेरी क्रिया दिव्य होगी। मेरा यह जीवन सर्वोच्च ब्रह्माण्डीय दैवी पूर्णता के अस्तित्व का जीवित प्रमाण हो जायेगा।

''ईश्वर करे, मैं इस महान् सत्य का साक्षी बन जाऊँ— **'ब्रह्म सत्यं'**, **'सर्वं विष्णुमयं जगत्'** (सारे संसार में सर्वोच्च सत्ता की व्याप्ति है)। दैनिक जीवन में बार-बार पूरी तरह से इस तथ्य को सिद्ध कर सकूँ कि पूर्ण दैवी (अलौकिक) सत्य का अस्तित्व सबमें है। ईश्वर करे, मेरे जीवन को देख कर सभी इस बात को सत्य मान लें कि अवश्य ही, महान् अलौकिक पूर्णता का अस्तित्व है।''

अपने स्वभाव, अपने दैनिक व्यवहार, अपनी योग्यता और कार्य-कुशलता के माध्यम से अपने व्यक्तित्व की दिव्यता की अभिव्यक्ति दूसरों को होने दो। तुम्हारे सम्पूर्ण अस्तित्व में यह अलौकिक दिव्यता का गुण व्याप्त हो और पूर्ण रूप से तुम्हारे समस्त क्रियाओं में प्रभासित हो। तुम्हारे जीवन का यही महान् लक्ष्य होना चाहिए।

इस प्रकार यह जान कर कि तुम जगत् में केवल जीने, खाने-पीने, सोने, लड़ने-झगड़ने, हँसने-मुस्कराने-रोनें और मरने तथा सच्चे जीवन की हँसी उड़ाते हुए तुच्छ, उबाऊ, आवृत्तीय विधि-विधान में पड़ने के लिए नहीं आये हो। अच्छी तरह से जान लो कि तुम अपने उच्च सत्य के गरिमामय रूप को प्रकट करने के लिए यहाँ आये हो। इस प्रकार धरती पर अपने अस्तित्व के सर्वोच्च, उदात्त उद्देश्य के प्रति जागरूक हो कर ईश्वर करे तुम अपने वर्तमान को ऐसा बना दो जिसमें नये ज्ञान के प्रति नयी दृढ़ता के साथ आन्तरिक जागरूकता को स्वीकार कर सको। ईश्वर करे, अगला वर्ष ऐसे भव्य और महान् रूप से जिया जाये जिसमें इस जागरूकता में जीने के लिए तुम्हें ऐसे अवसर और सुयोग प्राप्त हों।

अपने जीवन को बस एक ऐसी प्रक्रिया मत बनाओ कि तुम्हें जो जीवनावधि मिली है, उसका और एक वर्ष समाप्त हो गया; पर ऐसी प्रक्रिया होनी चाहिए कि उसे आगे बढ़ाते हुए, समृद्ध करते हुए, विकसित करते हुए

तुम्हारा जीवन हर तरह से दिव्यता के भव्य गुणों से भर जाये। आगामी वर्ष उपलब्धियों से भरा हो, उत्कृष्ट, नित्य पूर्ण, नित्य मुक्त प्रकृति में लीन होने के लिए आत्मोत्कर्ष, आत्मोत्थान में प्रकृति का का वर्ष हो। आगामी वर्ष आत्मा के आभ्यन्तर उत्थान का वर्ष हो जहाँ तुम्हें यह बोध हो जाये कि तुम नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्त, नित्य परिपूर्ण आत्मा हो।

एक नीरस, मूढ़धीः, कोलाहलपूर्ण, घृणास्पद भौतिक जीवन की अनन्तकाल पर्यन्त पुनरावृत्ति करने की अपेक्षा जीवन के अलौकिक महत्त्व को जान कर और अधिक उपलब्धियों के साथ तुम इस (जीवन) को अर्थपूर्ण ढंग से जियो। इसमें अकिंचन कुछ भी न हो। नव-वर्ष के इस महान् अवसर को दोनों हाथों से ग्रहण करो और जीवन को दिव्यता की सुगन्ध से परिपूर्ण कर दो। इसे सुन्दर बना लो। सत्यं, शिवं, सुन्दरम्।

दिव्यता तुम्हारी वास्तविक प्रकृति है। इसीलिए दिव्यता तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इसके विपरीत जीवन यापन करना मूल प्रकृति का मानो प्रतिवाद करना है। अपने जीवन को दिव्य बनाने के लिए अपने जन्मसिद्ध अधिकार के लिए प्रार्थना करनी होगी और साथ ही, वही बनना होगा जो तुम हो।

तुम वही हो। वही बनो। अपने जीवन को ऐसा बनने दो जिससे तुम्हारा जीवन उसे प्रकट करे, अभिव्यक्त करे, प्रदर्शित करे और सिद्ध करे!

परिशिष्ट १

विशेष अवसरों की सूची

सहस्राब्दि काल	:	प्रवचन १
नव-वर्ष	:	प्रवचन २, ३, ४, ५, ६, ७
महाशिवरात्रि	:	प्रवचन ८ (रात्रि पर्यन्त भगवान् शिव की आराधना, फरवरी तथा आरम्भिक मार्च में)
श्री गौरांग महाप्रभु जयन्ती	:	प्रवचन ९, १०, ११ (श्री कृष्ण चैतन्य का जन्मदिन, पूर्णिमा, मार्च माह)
चान्द्र नव-वर्ष	:	प्रवचन १२, १३ (मध्य मार्च से मध्य अप्रैल तक)
श्री राम नवमी	:	प्रवचन १४ (भगवान् राम का जन्म-दिवस, मार्च के अन्त तथा अप्रैल के आरम्भ में)
श्री हनुमान् जयन्ती	:	प्रवचन १५ (हनुमान् जी का जन्म-दिवस, मार्च अन्त तथा अप्रैल के आरम्भ में)
बुद्ध जयन्ती	:	प्रवचन १६ (भगवान् बुद्ध का जन्म-दिवस, पूर्णिमा)
आदि शंकराचार्य जयन्ती	:	प्रवचन १७ (अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक शंकराचार्य का जन्म-दिवस)
परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी की संन्यास-दीक्षा की वर्षगाँठ	:	प्रवचन १८ (१ जून)
गुरुपूर्णिमा	:	प्रवचन १९, २०, २१ (गुरु-पूजा, जुलाई मास की पूर्णिमा)
साधना-सप्ताह	:	प्रवचन २२ (गुरुपूर्णिमा के बाद)

परम पूज्य श्री शिवानन्द जी महाराज की पुण्यतिथि-आराधना	: प्रवचन २३, २४, २५ (दिव्य जीवन संघ के महायशस्वी संस्थापक परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी की पुण्यतिथि पर पूजा सामान्यत: गुरुपूर्णिमा के ८ दिन बाद)
गुरुवार—साप्ताहिक गुरु-पूजा	: प्रवचन २६, २७, २८, २९
भारत का स्वतन्त्रता दिवस	: प्रवचन ३० (१५ अगस्त)
रक्षाबन्धन	: प्रवचन ३१ (अगस्त की पूर्णिमा पर)
श्री कृष्ण जयन्ती	: प्रवचन ३२ (भगवान् श्री कृष्ण के जन्म-दिवस, अगस्त की पूर्णिमा के आठ दिन बाद)
श्री गणेश चतुर्थी	: प्रवचन ३३ (भगवान् गणेश की पूजा, अमावास्या के बाद चतुर्थी, अगस्त के अन्त या सितम्बर के प्रारम्भ में)
शिवानन्द आश्रम में राष्ट्रपति के आगमन पर	: प्रवचन ३४, ३५
महात्मा गान्धी जयन्ती	: प्रवचन ३६ (महात्मा गान्धी के जन्म-दिन पर, अक्तूबर २ को)
श्री नवरात्र पूजा	: प्रवचन ३७, ३८, ३९, ४२ (दैविक माँ की नौ दिन की पूजा, सितम्बर के अन्त तथा अक्तूबर के आरम्भ में)
शुक्रवार—साप्ताहिक देवी माँ की पूजा	: प्रवचन ४०, ४१
विजयादशमी	: प्रवचन ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८ (नवरात्र के बाद विजयादशमी को)
दीपावली	: प्रवचन ४९, ५०, ५१ (दीपों का उत्सव, अमावास्या के दिन, अक्तूबर के अन्त या नवम्बर के आरम्भ में)
बलि-पूजा	: प्रवचन ५२ (दीपावली के दूसरे दिन)

श्री स्कन्द षष्ठी	: प्रवचन ५४, ५५, ५६, ५७ (भगवान् स्कन्द या कार्तिकेय की पूजा के छह दिन)
भगवद्गीता जयन्ती	: प्रवचन ५८, ५९ (भगवद्गीता की वार्षिकी, नवम्बर के अन्त या दिसम्बर के आरम्भ में)
श्री दत्तात्रेय जयन्ती	: प्रवचन ६० (भगवान् दत्तात्रेय का जन्म-दिवस, दिसम्बर माह की पूर्णिमा)
दिसम्बर आराधना	: प्रवचन ६१, ६२ (भगवद्गीता, दत्तात्रेय और ईसामसीह के सन्देश)
क्रिसमस	: प्रवचन ६३, ६४, ६५, ६६ (ईसामसीह का जन्म-दिवस)
एकादशी	: प्रवचन ६७ (चान्द्र पक्ष का ग्यारहवाँ दिन, सामान्यतः व्रत-उपवास का दिन)
श्री विश्वनाथ मन्दिर का प्रतिष्ठा महोत्सव	: प्रवचन ६८ (विश्वनाथ मन्दिर में मूर्तियों के प्राण-प्रतिष्ठा दिवस की वार्षिकी, दिसम्बर ३१, १९४३)
वर्ष का अन्तिम दिन	: प्रवचन ६९, ७०, ७१, ७२

परिशिष्ट २

श्री स्वामी चिदानन्द सरस्वती

दिव्य जीवन संघ के वर्तमान परमाध्यक्ष

श्री स्वामी चिदानन्द जी अपने पूर्वाश्रम में श्रीधर राव के नाम से ज्ञात थे। उनका जन्म २४ सितम्बर १९१६ को हुआ। उनके पिता का नाम श्रीनिवास राव तथा माता का नाम सरोजिनी था। उनके पिता एक समृद्ध जमींदार थे। वह दक्षिण भारत के कई ग्रामों, बड़े-बड़े भूमि-खण्डों तथा भव्य भवनों के स्वामी थे।

स्वामी जी एक मेधावी छात्र थे। प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा पूर्ण कर लेने के पश्चात् सन् १९३६ में उन्होंने लोयोला कालेज में प्रवेश लिया। इस विद्यालय के द्वार केवल मेधावी छात्रों के लिए खुले हुए थे। सन् १९३८ में उन्होंने स्नातक-उपाधि प्राप्त की। इस विद्यालय में ईसाइयत का वातावरण था। इस वातावरण में व्यतीत हुआ उनका अध्ययन-काल उनके लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। हिन्दू-संस्कृति के सर्वोत्तम तथा सर्वोत्कृष्ट तत्त्वों के साथ समन्वित हो कर प्रभु यीशु, उनके पट्टशिष्यों तथा अन्य ईसाई सन्तों के जीवनादर्शों ने उनके हृदय में स्थान बना लिया। स्वामी जी के लिए बाइबिल का पाठ उनकी दिनचर्या का मात्र एक अंग नहीं था; बाइबिल उनके लिए जीवन्त ईश्वर ही थी—वेदों, उपनिषदों तथा भगवद्गीता के उपदेशों के समान सजीव तथा वास्तविक। अपने सहज, विशाल दृष्टि-क्षेत्र के कारण वह कृष्ण में ही यीशु का दर्शन (न कि कृष्ण के स्थान पर यीशु का दर्शन) करने लगे। वह जितना विष्णु-भक्त थे, उतना ही यीशु-भक्त भी।

कुष्ठियों की सेवा उनका जीवनादर्श बन गयी। अपने आवास के बड़े-बड़े लानों में वह उनके लिए झोपड़ियाँ बनवा देते थे और उन्हें देव-तुल्य समझ कर

उनकी सेवा करते थे। कुछ समय तक स्वामी शिवानन्द जी के साथ पत्र-व्यवहार के माध्यम से सम्पर्क रख कर वह सन् १९४३ में आश्रम-परिवार में सम्मिलित हो गये।

यह स्वाभाविक था कि अन्तेवासी के रूप में उन्होंने सर्व-प्रथम आश्रम के शिवानन्द चैरिटेबल हास्पिटल का कार्यभार सँभाला। उनके हाथ में रोग-हरण की दिव्य-क्षमता उत्पन्न हो गयी। इस कारण रोगियों की भीड़ बढ़ने लगी।

आश्रम में उनके आने के बाद जल्दी ही उनकी कुशाग्र बुद्धि का पर्याप्त परिचय मिलने लगा। वह भाषण देने लगे, पत्रिकाओं के लिए लेख लिखने लगे तथा दर्शनार्थियों को उपदेशों से लाभान्वित करने लगे। जब सन् १९४८ में योग-वेदान्त फारेस्ट यूनिवर्सिटी (अब योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी) की स्थापना हुई, तब पूज्य गुरुदेव ने उन्हें उसके कुलपति तथा राजयोग के प्राचार्य के रूप में नियुक्त करके उन्हें सर्वथोचित सम्मान प्रदान किया। सन् १९४८ में परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने उन्हें दिव्य जीवन संघ के महासचिव के रूप में मनोनीत किया। अब संस्था का महान् उत्तरदायित्व उनके कन्धों पर आ पड़ा।

गुरुपूर्णिमा-दिवस, १० जुलाई १९४७ को परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने उन्हें संन्यास-परम्परा में दीक्षित किया। इसके बाद से वह 'स्वामी चिदानन्द' कहलाये। इस नाम का अर्थ है—जो सर्वोच्च चेतना तथा परमानन्द में संस्थित हो।

गुरुदेव के व्यक्तिगत प्रतिनिधि के रूप में नयी दुनिया (अमरीका) में दिव्य जीवन का सन्देश प्रसारित करने के उद्देश्य से सन् १९५९ के नवम्बर माह में श्री स्वामी चिदानन्द जी वहाँ की यात्रा करने के लिए निकल पड़े। मार्च १९६२ में वह वापस लौटे।

अगस्त १९६३ में, पूज्य गुरुदेव की महासमाधि के पश्चात्, वह दिव्य जीवन संघ के परमाध्यक्ष के रूप में चुने गये। इसके बाद वह दिव्य जीवन संघ के सुविस्तृत कार्यक्षेत्र में ही नहीं, वरन् संसार-भर के अगणित जिज्ञासुओं के

हृदयों में भी त्याग, सेवा, प्रेम तथा आध्यात्मिक आदर्शवाद की पताका को ऊँचा उठाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहे।

सन् १९६८ में पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के शिष्यों तथा भक्तों के अनुरोध पर श्री स्वामी चिदानन्द जी ने संसार के अनेक देशों की दोबारा यात्रा की।

श्री स्वामी चिदानन्द जी प्रारम्भ से ही श्री गुरुदेव के मिशन का कार्य अथक रूप से कर रहे हैं तथा देश-विदेश में दिव्य जीवन का सन्देश पहुँचा रहे हैं। एक उत्कृष्ट संन्यासी के रूप में आध्यात्मिक चुम्बकत्व के गुण के धनी स्वामी जी अनगिनत व्यक्तियों के प्रियपात्र बन गये हैं तथा संसार-भर में दिव्य जीवन के महान् आदर्शों के पुनरुज्जीवन के लिए सभी दिशाओं में कठिन परिश्रम कर रहे हैं।

जागो,

अपनी आँखें खोलो

और इस दृश्यमान प्रकृति में,

ईश्वर के दर्शन करो।

वे महान् व्यक्ति से ले कर क्षुद्र कीट तक

सभी प्राणियों के रूप में जीवन जी रहे हैं

और विचरण कर रहे हैं। आपका

यह जीवन सभी प्राणियों में स्थित

दिव्यता की गत्यात्मक पूजा बने।

—स्वामी चिदानन्द



दिव्य जीवन संघ प्रकाशन

मूल्य २००५ रु. १००/-